बेचैन ख्यालात

BOOKS CLINIC

India's Fastest Growing Self Publishing House

Booksclinic Publishing

-----------------------------Contact Us At-----------------------------

Call or Whatapp @ 8965949968 or Mail @ publish@booksclinic.com

Website: - **www.booksclinic.com**

B.D. Complex, Near Tifra Over Bridge, Bilaspur, Chhattisgarh, India, 495001

This book has been published with all reasonable efforts taken to make the material error-free after the consent of the author.

All rights reserved, no part of this book may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted, in any form by any means, electronic, mechanical, magnetic, optical, chemical, manual photocopying, recording or otherwise, without the prior written consent of its writer.

Publisher: Booksclinic Publishing
Edition: First
ISBN:
Copyright ©2021
Genre:
₹:
$:

Printed in Ind

बेचैन ख्यालात

प्रफुल्ल सिंह

अनुक्रमाणिका
****

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	हम सब इस पृथ्वी के ऋणी हैं	
2.	मातृभाषा एवं देवभाषा को पहले हमें सम्मान देना होगा	
3.	सात्विक प्रेम _	
4.	रिश्तों के चार पायदान	
5.	परिणय सूत्र	
6.	मातापिता	
7.	पहचानें अपनी सीमा	
8.	प्रेम आत्मा की सच्ची अभिव्यक्ति	
9.	अर्थ से अनर्थ तक	
10.	मेरी कुछ बातें शायद अभी भी क़ैद में हैं	
11.	युवा अर्थात वायु	
12.	सच की मानवीयता	
13.	सकारात्मक या नकारात्मक नजरिया	
14.	भारतीय संस्कृति :आधुनिकता एवं प्राचीनता दोनों संग लेकर चलें	
15.	महिला लेखन : स्त्री-अस्मिता का साहित्य	
16.	समाज सार्थक संचार से दूर भौतिकता की गोद में \	
17.	गरीबी शिक्षा में बाधक नहीं है	
18.	भक्ति का पहला मार्ग सादगी	
19.	मैं" स्वाभिमान या अभिमान	
20.	माँ शब्द में निहित संपूर्ण सृष्टि	
21.	ज़िन्दगी धूप छाँव सी	
22.	रोने की कोशिश	
23.	संस्कृति समाज की जननी	
24.	पिंजरा	
25.	एक भावनात्मक रिश्ता : सूखा पेड़ और मैं	
26.	आपका बुरा वक़्त	
27.	अध्यात्म मंजिल नहीं बल्कि यात्रा है	
28.	निद्रा से स्वप्न तक की यात्रा	
29.	सभी भाषाओं की जननी है देवभाषा संस्कृत	
30.	सत्कर्म का आचरण	

31. बादलों को भी धरती का आसरा है
32. लेखन मात्र कमाई का जरिया नहीं
33. अतीत और भविष्य के बीच वर्तमान का उपहार
34. अंतर्मन चेतना को पहचानें
35. वर्तमान साहित्य में राष्ट्रीय सृजन
36. मेरा दोहरा व्यक्तित्व
37. परिवार का पतन होने से बचाएं
38. अत्यधिक कल्पनाओं से स्वयं को वंचित रखें
39. बुजुर्गों के जीवन में प्रकाश का द्वीप जलाएं
40. जीवन में हमारी अभिलाषा
41. हम पर्यावरण का ख्याल रखें, पर्यावरण हमारा ख्याल रखेगा
42. प्रेम अपरिभाषित है
43. प्रकृति स्वभाव:सात्विक,राजसी और तामसी
44. वृद्धि और विकास की प्रमाणिकता
45. लिखने की ललक
46. जीवन परिधि : जहाँ से शुरू वहीं पर अंत
47. कर्म अपने कर्ता को पहचान लेता है
48. प्यार और स्नेह
49. सकारात्मक दृष्टिकोण अंधेरे में भी प्रकाश पाते हैं
50. संकल्प
51. मानवता
52. सृष्टिकर्ता तो एक ही है
53. चापलूसी का बदलता स्वरूप
54. सुख की प्रतीक्षा
55. विवाद विनाश को आमंत्रित करता है
56. आकर्षण की शक्ति एवं क्षमता
57. झूठ चलने के साथ दौड़ता भी है
58. परम सुख
59. पुरुष समन्दर तो स्त्री समर्पण
60. क्रोध मानव जीवन की मजबूरी और समस्या दोनों
61. ईश्वर एक विश्वास
62. दूसरे के भले से खुद का भला
63. हम सबसे ही है इतिहास
64. सम्पूर्ण कौन है
65. सच की मानवीयता
66. संस्कृत हमारी संस्कृति

67. सपनो की क़द्र करने वाला लायक और अपनों की क़द्र करने वाला नालायक
68. अपनी ही तलाश में
69. समय की महत्ता
70. गुरुकुल शिक्षा ही हमारी पहचान
71. लेखन बाजारीकरण नहीं
72. कहानियों का महत्व एवं उपयोगिता
73. मेरी प्रार्थनाओं का स्पर्श तुम्हें सदा सुरक्षित रखेगा
74. युवा वर्ग साहित्य से मीलों दूर
75. जिंदगी धूप छाँव सी
76. विश्वास
77. व्यक्तित्व
78. सार्थक मृत्यु
79. उम्मीद पर सब कायम
80. कैद में पड़ी बातें
81. किस्मत की सौदेबाजी
82. बारिश की पहली बूंद
83. ज्ञान की बेड़ियां
84. प्रेम प्रकृति का अमूल्य उपहार
85. भौतिक प्रेम और अध्यात्मिक प्रेम
86. रिश्तों में उलझन या कशमकश
87. खुशियों को गले लगाएँ
88. अंजान शख़्स
89. अवसर को पहचानें और इतिहास रचें
90. मोबाइल, मैसेज और डिप्रेशन की शिकार युवापीढ़ी
91. मानवीय संवेदनाओं का मापदंड
92. मानव जीवन में अध्यात्म का गूढ़ रहस्य
93. अध्ययन से अध्यात्म तक की यात्रा
94. जीवन अपना है
95. महिला सशक्तिकरण
96. विफलता से ही सफलता की राह
97. भारतीय संस्कृति की मान्यताएं एवं नैतिक मूल्य
98. उचित मार्गदर्शन और प्रोत्साहन प्रतिभा को निखारता है
99. अपेक्षा से उत्पन्न होता है दुःख
100. आत्मा का अस्तित्व एवं रहस्य
101. आलस्य एक अभिशाप

102. पतंग से सीखें अनुशासन
103. एक अकेले में भी है दम
104. सकारात्मक या नकारात्मक
105. मन को समझो तो जाने
106. इंसान की वैल्यू
107. प्रवचन से व्यक्तित्व का विकास
108. झूठ सिर्फ झूठ हो सकता है
109. भावनात्मक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति

प्रफुल्ल सिंह

हम सब इस पृथ्वी के ऋणी हैं

हमारे सौरमंडल में केवल धरती ही ऐसा ग्रह है, जहां जीवन है, जहां नदी, झरने, पहाड़, वन, अनेक जंतु प्रजातियां हैं और जहां हम सब मनुष्य भी हैं। लेकिन हम सब की लालच और लापरवाही ने ना केवल दूसरी जीव प्रजातियों के लिए बल्कि खुद अपने लिए और संपूर्ण धरती के लिए संकट पैदा कर दिया है। ऐसे में पृथ्वी दिवस जैसे आयोजन हमें जागरूक करने के लिए जरूरी हैं। आइए इस पृथ्वी दिवस पर हम धरती की पुकार सुनें और इसे स्वच्छ-सुरक्षित बनाए रखने में अपना भरपूर योगदान दें। पृथ्वी दिवस की परिकल्पना में हम उस दुनिया का ख्वाब साकार होना देखते हैं, जिसमें दुनिया भर की हवा और पानी प्रदूषणमुक्त होगा। नदियां अपने बदहाल पर आंसू नहीं बहाएंगी। मिट्टी, बीमारियां नहीं वरन सोना उगलेगी। धरती रहने के काबिल होगी। इस तरह समाज स्वस्थ और खुशहाल होगा। तभी ऐसे दिनों को मनाने की सार्थकता है।

भारतीय पौराणिक ग्रंथों में पृथ्वी को मां के समतुल्य माना गया है। यह हम सबकी आश्रयदाता है। इसकी रक्षा करना हमारा कर्तव्य है। इस पर मौजूद बेशुमार संसाधन, उपहार के रूप में हम सबको मिले हैं। प्रकृति ने इस पर जल, नदियां, पहाड़, हरे-भरे वन और धरती के नीचे छिपी हुई खनिज संपदा धरोहर के रूप में हमारे जीवन को सहज बनाने के लिए प्रदान किए हैं। हम अपनी मेहनत से धन तो कमा सकते हैं लेकिन प्रकृति की इन धरोहरों को अथक प्रयास करने के पश्चात भी बढ़ा नहीं सकते। इसलिए हम सबको इन धरोहरों को संजोने का हर संभव प्रयास करना चाहिए। हमारी धरती बहुत ही सुंदर है। इसका एक बड़ा भाग पानी से ढंका हुआ है। पानी की अधिकता के कारण ही इसे ब्ल्यू प्लेनेट के नाम से भी जाना जाता है। लेकिन हम सबकी ही लापरवाही के चलते ग्लोबल वार्मिंग और पॉल्यूशन की वजह से यह सुंदर ग्रह अब खतरे में नजर आ रहा है। इसको बचाने के लिए पृथ्वी दिवस जैसे जागरुकता बढ़ाने वाले आयोजनों और अभियानों की आवश्यकता है।

वैसे तो ऐसे कई तरीके हैं जिससे हम अकेले और सामूहिक रूप से धरती को बचाने में योगदान दे सकते हैं। वैसे तो हमें हर दिन को पृथ्वी दिवस मानकर उसके संरक्षण के लिए कुछ न कुछ करते रहना चाहिए। लेकिन, अपनी व्यस्तता में व्यस्त इंसान यदि विश्व पृथ्वी दिवस के दिन ही थोड़ा बहुत योगदान दे तो धरती के कर्ज को उतारा जा सकता है।

पृथ्वी बहुत व्यापक शब्द है जिसमें जल, हरियाली, वन्यप्राणी, प्रदूषण और इससे जुड़े अन्य कारक भी हैं। धरती को बचाने का आशय है इसकी रक्षा के लिए पहल करना। न तो इसे लेकर कभी सामाजिक जागरूकता दिखाई गई और न राजनीतिक स्तर पर कभी कोई ठोस पहल की गई। दरअसल पृथ्वी एक बहुत व्यापक शब्द है, इसमें जल, हरियाली, वन्यप्राणी, प्रदूषण और इससे जुड़े अन्य कारक भी शामिल हैं।

धरती को बचाने का आशय है इन सभी की रक्षा के लिए पहल करना। लेकिन इसके लिए किसी एक दिन को ही माध्यम बनाया जाए, क्या यह उचित है? हमें हर दिन को पृथ्वी दिवस मानकर उसके बचाव के लिए कुछ न कुछ उपाय करते रहना चाहिए। पृथ्वी दिवस का महत्व मानवता के संरक्षण के लिए बढ़ जाता है, यह हमें जीवाश्म ईंधन के उत्कृष्ट उपयोग के लिए प्रेरित करता है। इसको मनाने से ग्लोबल वार्मिंग के प्रति जागरुकता के प्रचार पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जो हमारे जीवन स्तर में सुधार के लिए प्रेरित करता है। ऐसे आयोजन ऊर्जा के भंडारण और उसके महत्व को बताते हुए उसके अनावश्यक उपयोग के लिए भी हमें सावधान करता है।

पृथ्वी के पर्यावरण को बचाने के लिए हम ज्यादा कुछ नहीं कर सकते, तो कम से कम इतना तो करें कि पॉलिथीन के उपयोग को नकारें, कागज का इस्तेमाल कम करें और रिसाइकल प्रक्रिया को बढ़ावा दें.. क्योंकि जितनी ज्यादा खराब सामग्री रिसाइकल होगी, उतना ही पृथ्वी का कचरा कम होगा।

इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि पृथ्वी दिवस को लेकर देश और दुनिया में जागरूकता का भारी अभाव है! सामाजिक या राजनीतिक दोनों ही स्तर पर इस दिशा में कोई कदम नहीं उठाए जाते। कुछ पर्यावरण प्रेमी अपने स्तर पर कोशिश करते रहे हैं, किंतु यह किसी एक व्यक्ति, संस्था या

समाज की चिंता तक सीमित विषय नहीं होना चाहिए! सभी को इसमें कुछ न कुछ आहुति देना पड़ेगी तभी बात बनेगी।

मातृभाषा एवं देवभाषा को पहले हमें सम्मान देना होगा

विश्व में केवल संस्कृत ही ऐसी भाषा है जिसमें सिर्फ "एक अक्षर, दो अक्षर या केवल तीन ही अक्षरों" से पूरा वाक्य बनाया जा सकता है। यह विश्व की अकेली ऐसी भाषा है, जिसमें "अभिधान-सार्थकता" मिलती है। यानी किसी वस्तु की संज्ञा या नाम क्यों पड़ा यह विस्तार से बताती है। जैसे इस विश्व का नाम संसार इसलिये है क्यूँकि वह चलता रहता है, परिवर्तित होता रहता है ! पर विडंबना है कि ऐसी सरल और समृद्ध भाषा को अपने ही देश में अपने ही लोगों में अपने अस्तित्व की लड़ाई लडनी पड़ रही है।

भाषा अभिव्यक्ति का वह सर्वाधिक विश्वसनीय माध्यम या जरिया है, जिसके द्वारा हम आपस में अपने मनोभावों को, विचारों को व्यक्त करते हैं, एक-दूसरे से जुड़ पाते हैं। यह हमारे समाज के निर्माण, विकास, अस्मिता, सामाजिक व सांस्कृतिक पहचान का भी महत्वपूर्ण साधन है। इसके लिये हमारी वाचिक ध्वनियां सहायक होती हैं, जो शब्दों और वाक्यों का समूह बन एक-दूसरे को अपने मन की बात बताती-समझाती हैं। इसके बिना मनुष्य व समाज सर्वथा अपूर्ण हैं !

हमारे शोषण के साथ-साथ हमारी धरोहरों, हमारी संस्कृति, हमारे शिक्षण संस्थानों, हमारे इतिहास के अलावा हमारी प्राचीनतम व समृद्धतम भाषा को, भी कमतर आंकने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई

जाहिर है समय, परिवेश, स्थितियों के अनुसार अलग-अलग स्थानों पर विभिन्न तरह की भाषाओं का उद्भव हुआ। मानव के उत्थान के साथ-साथ उसका आरंभिक "नाद" विकास करते हुए संपन्न भाषाओं में बदलता चला गया। इस समय सारे संसार में हजारों (अनुमानत: 6809) प्रकार की भाषाएँ, वर्षों से अपनी-अपनी जरुरत के अनुसार बोली जाती रही हैं। इनमें से कई तो हजारों-हजार साल से अपना अस्तित्व बनाए रखे हुए हैं। बहुतेरे देशों ने सिर्फ

अपनी भाषा का उपयोग करते हुए भी ज्ञान-विज्ञान, पठन-पाठन में असाधारण प्रगति की है। उन्हें अपनी वाक्संपदा पर नाज है। थोड़ी-बहुत कमी-त्रुटि तो हर चीज में होती ही है, पर इसका मतलब यह नहीं कि दूसरी बोलियां हेय हैं, दोयम हैं !

हमारे देश पर सैंकड़ों सालों तक गैरों ने राज किया ! सालों-साल गुलाम रहने का असर हमारे दिलो-दिमाग पर भी पड़ना ही था ! हम अपना सुनहरा अतीत बिसारते चले गए ! हमें शासक और उनके कारिंदों की बातों में ही सच्चाई नजर आने लगी ! इस कुचक्र में कुछ हमारे अपने मतलबपरस्त लोगों का भी योगदान रहा है ! हमार शोषण के साथ-साथ हमारी धरोहरों, हमारी संस्कृति, हमारे शिक्षण संस्थानों, हमारे इतिहास के अलावा हमारी उस प्राचीनतम व समृद्धतम भाषा को, जिसमें हजारों साल पहले हमारे ऋषि-मुनियों ने ज्ञान-विज्ञान तथा जीवन के सार को लिपिबद्ध कर दिया था, उसे भी कमतर आंकने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई !

हम शुरू से ही सहिष्णु रहे हैं। हमने दुनिया को ही अपना परिवार माना है! हर अच्छी चीज का स्वागत किया है। दूसरे धर्मों, संस्कृतियों, मान्यताओं को भी अपने में सहर्ष समो लिया है। हमारे इसी विवेक, सहनशीलता, सामंजस्य को कमजोरी मान लिया गया ! अच्छाइयों के साथ बुराइयां भी थोपी जाने लगीं। सबसे ज्यादा नुक्सान अंग्रेजी हुकूमत के दौरान हुआ, जब उन्होंने अंग्रेजी को कुछ ऐसा आभामंडित कर दिया जैसे वह विश्व की सर्वोपरि भाषा हो ! उसके बिना कोई भी उपलब्धि हासिल ना की जा सकती हो ! देश में उसे रोजगार हासिल करने का मुख्य जरिया बना दिया गया। वर्षों-वर्ष यह गलतफहमी पलती रही ! पर फिर समय आ ही गया जब उन्हें बताना जरुरी हो गया कि समृद्ध भाषा कैसी होती है !

संस्कृत में श्लोक सुनिए, मंत्र सुनिए, भजन सुनिए ! इसके उच्चारणों में वह शक्ति है जो किसी को भी मंत्रमुग्ध कर सकती है ! एकाकार कर सकती है! सम्मोहित कर किसी और लोक में पहुंचा सकती है। यही अकेली ऐसी भाषा है, जिसमें केवल "एक अक्षर" से ही पूरा वाक्य लिखा जा सकता है।

सैंकड़ों उदहारण मिल जाएंगें जो निर्विवाद रूप से संस्कृत को विश्व की सर्वश्रेष्ठ, व्याकरणिक, तर्कसंगत, वैज्ञानिक, त्रुटिहीन भाषा सिद्ध कर सकते हों।

इसीलिए जब संस्कृत को सर्वोपरि कहा जाता है तो उसके पीछे इस तरह के अद्भुत साक्ष्य होते हैं। यह विश्व की अकेली ऐसी भाषा है, जिसमें "अभिधान-सार्थकता" मिलती है। यानी किसी वस्तु की संज्ञा या नाम क्यों पड़ा यह विस्तार से बताती है। जैसे इस विश्व का नाम संसार इसलिये है क्यूँकि वह चलता रहता है, परिवर्तित होता रहता है ! पर विडंबना है कि ऐसी सरल और समृद्ध भाषा को अपने ही देश में अपने ही लोगों में अपने अस्तित्व की लड़ाई लडनी पड़ रही है !

सात्विक प्रेम _

प्रेम अनुभूति का विषय है। जहाँ तक प्रेम पाने का संबंध है, तो यह अत्यंत कठिन है, क्योंकि हम कोई भी वस्तु दे तो सकते हैं आसानी से, लेकिन लेना अपने वश में नहीं। प्रेम में भी कुछ ऐसा ही है। लेकिन देना भी कम महत्वपूर्ण नहीं, यदि हम प्रेम कर सकते हैं तो इस देने में भी जो प्राप्ति होती है वह अनिर्वचनीय है। प्रेम पाने का अर्थ प्रेम करना ही है। प्रेम एक मानसिक स्थिति है। जाहिर है वह स्थिति संतुष्टिदायक ही होगी। यदि किसी प्रक्रिया से संतुष्टि नहीं मिलती तो वह प्रेम जैसी उदात्त स्थिति नहीं हो सकती। फिर भी इसका कोई एक निश्चित स्वरूप हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। प्रेम की अनुभूति सब के लिए अलग-अलग तरह की हो सकती है। सब को अलग-अलग तरह की क्रियाओं और मनोभावों में प्रेम का अनुभव हो सकता है। यह भी कहा जाता है कि प्रेम प्रतिदान या बदला नहीं चाहता। मात्र देने का नाम प्रेम है।

कोई भी कार्य करो, नि:स्वार्थ भाव से करो- प्रेम भी। प्रेम निष्काम कर्म का ही एक रूप हुआ। गीता में कहा गया है कि कर्म करो, फल की इच्छा मत करो। ऐसा कर्म ही सात्विक कर्म है। प्रेम भी सात्विक कर्म तभी होगा जब फल की इच्छा के बिना किया जाएगा। पर ऐसा कौन सा कर्म है जो फल की इच्छा के बिना संभव हो सके? जिसको जो कार्य पसन्द हो उसकी खुशी के लिए बिना अपने लाभ-हानि का आकलन किए वह काम कर देना प्रेम का एक रूप हो सकता है। कर्म के अभाव में प्रेम संभव ही नहीं। आप कुछ करेंगे तभी पता चलेगा कि आप प्रेममय हैं अथवा नहीं। इस करने में कोई शारीरिक कार्य हो सकता है। मात्र देखना भी एक क्रिया हो सकती है। यह ठीक है कि प्रेम करने से प्रेम मिलता है, लेकिन प्रेम पाने से भी कम संतुष्टि नहीं मिलती। कोई आपको अपने किसी भी कार्य के माध्यम से तृप्त करना चाहता है, तो उसमें भी प्रेम का आदान-प्रदान ही होता है। यदि आप उसे स्वीकार नहीं करेंगे तो आपके मन में प्रेम नामक तत्व का संचार है ही नहीं। जहाँ आपने किसी को किसी भी रूप में तुष्ट कर दिया, वहाँ प्रेम का संचार होने लगा। अब यहाँ एक

सवाल आ खड़ा हुआ है। सबकी संतुष्टि का स्वरूप अलग-अलग है। किसी की संतुष्टि पैसे से होती है, किसी की वस्तुओं से और किसी की बातों से। कोई आप से व्यवस्था के विरुद्ध कार्य कराना चाहता है तो कोई धर्म अथवा नैतिकता के विरुद्ध- और ऐसा करने में उसे कोई दोष दिखलाई नहीं पड़ता। हमें भी अनेक कार्य सामान्य दिखाई पड़ते हैं, लेकिन वास्तव में वे सामान्य नहीं होते। प्रेम के वशीभूत होकर हम न जाने क्या-क्या कर गुजरते हैं।

अपने प्रियजनों के प्रति हमारा प्रेम ही है जो हमें उनके दुर्गुण भी सद्गुण नजर आते हैं। आप कहेंगे, ये प्रेम नहीं मोह है। मैं भी यही मानता हूँ, लेकिन मोह के बिना प्रेम कैसे संभव है। हाँ, मोह के अनेक रूप हैं। मोह में सात्विक भाव है, तो सात्विक प्रेम और तामसिक भाव है तो तामसिक प्रेम। यदि मैं कहूँ कि मन की सकारात्मक वृत्ति से उत्पन्न भाव ही सही प्रेम है तो आप असहमत नहीं होंगे। प्रेम एक सकारात्मक भाव है। सकारात्मकता का अपना प्रभाव है। उसी तरह प्रेम का भी अपना प्रभाव है। नकारात्मक भावों की समाप्ति के बाद जब हम निष्काम भाव से कोई कार्य करते हैं तभी प्रेम का उदय होता है। इसी प्रेम के फलस्वरूप स्वांत: सुखाय हम अनेक कार्य करते हैं। किसी को साहित्य से प्रेम है तो किसी को कला से, किसी को संगीत में प्रेम की अनुभूति होती है तो किसी को नृत्य में। किसी को सुनने में आनंद आता है तो किसी को सुनाने में। ये सब क्रियाएं आनंद का माध्यम हैं।जहाँ आनंद की प्राप्ति हो, वहीं प्रेम है। यहाँ आनंद का संबंध भौतिक सुख से नहीं, मानसिक संतुष्टि से है

।

रिश्तों के चार पायदान

जीवन में आमतौर पर चार चीजें यानि विश्वास, रिश्ता, हृदय और वचन बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रखतें हैं, क्योंकि यह चारों सीढ़ी के पायदान हैं....

पहला विश्वास :, किसी भी रिश्ते को बनने के लिए जरूरी है विश्वास।

दूसरा रिश्ता : जब आपसी विश्वास पैदा हो जाए तभी हम उसको रिश्ते से जोड़ने का प्रयत्न करते हैं। यह रिश्ता चाहे दोस्ती का हो या सामाजिक हो

तीसरा हृदय : जब कोई रिश्ता बनता है और पनपता है तो उसकी जड़े हृदय से जाकर जुड़ती हैं दोनों तरफ से। और जिसकी जड़ें हृदय से जुड़ती हैं वह रिश्ता बहुत मजबूत और अटूट रहता है।

और चौथा आखिरी पायदान वचन : यह एक ऐसा पायदान है जिस पर हर कोई नहीं चढ़ सकता क्योंकि इस पायदान पर चढ़ने के बाद संतुलन बनाना बहुत आवश्यक है। क्योंकि वचन दोनों तरफ से बनाया और निभाया जाता है जहां पर दोनों पक्षों को संतुलित रूप से व्यवहार करना होता है अपने साथ-साथ अन्य सभी बातों को ध्यान रखते हुए।

परिणय सूत्र

जब एक स्त्री पुरूष परिणय सूत्र मे बंधते है तो पुरूष का कुछ नही बदलता वही स्त्री का सबकुछ बदल जाता है यहा तक कि उसका अपना नाम भी उसकी अब तक की पहचान खो जाती है। आपसे जुड़ते ही एक नयी पहचान बनती है एक नया नाम मिलता है जिससे वो जानी और पहचानी जायेगी जीवन भर... नया नाम मिलते ही उसका अस्तित्व ही मिट जाता है जैसे पानी मे घुलकर चीनी विलीन हो जाती है पर मिठास छोड़ देती है वैसे ही स्त्री अपना वजूद खोकर आपमे घुल जाती है आपके पानी रूपी जीवन को मिठास से भर देती है।

जब एक स्त्री बेटी से माँ बनने का सफर तय करती है तो कदम कदम पर उसे त्याग ही करना पड़ता है कभी बेटी या बहन के रुप मे कभी बहू या पत्नी के रुप मे और कभी माँ के रुप मे त्याग ही त्याग...जब लड़की बहू बनकर एक नयी दुनिया मे प्रवेश करती है तो अनेको जिम्मेदारियां होती है जिसका निर्वाह उसे सफलता पूर्वक करना होता है।

जिस घर मे आजीवन उसे रहना है वहा के हर कोने से वो अंजानी होती है सारे चेहरे अजनबी होते है जिसे अपना बनाना होता है। यहा तक जिसकी वो अर्धांगिनी बनकर आयी है वो भी पराया होता है उससे बिल्कुल अंजाना होता है। कितनी मुश्किलें होती है उसके नये जीवन मे कितनी कठिन परीक्षा लेती है जिन्दगी पर वह डरती नही है हाँ थोड़ी घबरा जाती है पर उसकी सहनशीलता और उसका धैर्य सदा उसके हौसलों को बढ़ाते रहते है उसका मनोबल बढ़ते जाता है।

धीरे धीरे अपने कुशल व मधुर व्यवहार से सारे अजनबी लोगो को अपना बना लेती है विविध रंगो के मोतियों को अपने प्यार और विश्वास के धागें मे पिरोती जाती है।सब एक साथ गूँथते जाते है सुंदर सी रिश्तों की माला बनने लगती है पर इस रिश्तों की माला का सबसे अहम हिस्सा कड़ी होता है जो दोनो सिरो को जोड़े रखता है और वो मजबूत कड़ी आप बनते है।

ये दायित्व आपका होता है आप की भी जिम्मेदारी उतनी ही होती है जितना की आपकी पत्नी की क्यूकि उसका पूरा जीवन धागें की तरह छुपा ही रह जाता है सामने आप दिखते है उसकी महत्ता को समझे उसने तो पूरी दुनिया अपनी आप मे समेट ली है आप उसे खुद मे समेट ले इतनी सी उसकी चाहत होती है।

जब वह माँ बनती है अपने ज़िस्म मे एक नन्ही सी जान को पालती है अपने लहू से सींचती है अपने अंश को हर पल स्वयं मे महसूस करती है माँ बनने के सुखद अहसास को जीती है उसे लगता है उसका नारी जीवन सार्थक हो गया उसने अपना दायित्व परिपूर्ण कर लिया मौत से लड़कर जब अपने अंश को इस दुनिया मे लाती है कितनी संतुष्ट होती है उसे निहारते आघाती नही उसकी इस खुशी मे भी नियति का स्वांग होता है यहा भी उसे त्याग ही करना है कोख उसकी, अंश उसका, दर्द उसने सहा , तड़पी वो, जन्म उसने दिया पर उसका तो कही नाम ही नही उस बच्चें को पहचान तो उसके पिता के नाम से मिलना है माँ का नाम तो कही नही माँ तो माँ है त्याग और ममता की मूरत इतने सारे त्याग करने के बाद भी वह खुश रहती है अपनी खुशियां आप सबमे तलाशती रहती है आप खुश तो वो भी खुश हो जाती है।

सरल भाषा मे कहूँ तो स्त्री जीवन बहुत जटिल है पर एक सुलझी और समझदार स्त्री सहजता से अपने सारे कर्तव्यों का निर्वाह कर लेती है क्यूकि उसके परिवार का साथ होता है। अपने साथी को सदा सम्मान और प्यार दे हर क्षेत्र मे एक दूसरे के सहभागी बने पति पत्नी दो शरीर एक आत्मा होते है क्यूकि दो जब एक होते है तभी सृजन होता है इस पवित्र रिश्तें की मर्यादा को समझे और विश्वास से निष्ठा पूर्वक निर्वाह करे कभी उसके वजूद को खोनें न दे क्यूकि वो आप मे खो चुकी है आपकी हो चुकी है।

मातापिता

माता पिता भी तो इंसान हैं हमारे सपनों को पूरा करने के लिए न जाने अपने कितने अरमानों को अधूरें सपनों को त्याग दिये होंगे बिना पूरा किये। उनके सपने चाहें पूरे हुए या नहीं वो उसे भूल नहीं पाते उन अधूरे सपनों की एक पोटली बनाकर रख देते हैं। और हमारा भविष्य संवारने में जुट जाते हैं स्वयं को भूल जाते हैं।

और हम बच्चें बस उनसे मांगते ही रहते हैं कभी ये नहीं सोंच पाते कि हमें भी उनके लिये कुछ करना चाहिए ।

हमारे सपनों को पूरा करते करतें वो खुद खो जाते हैं ।

समय अपनी गति से चलते रहता है और एक वक़्त ऐसा आता है जब हम उनकी जगह स्वयं को पाते हैं जब हम माता पिता बनते हैं और अपने सपनों को अपने बच्चों के लिए त्यागते है। पर तब भी हमारा स्वार्थी मन अपने माता पिता के बारे में नहीं सोच पाता एक पुराना सामान समझकर या तो फेंक देते हैं या घर के किसी कोने में निरर्थक सा रख देते हैं हमें ये तक याद नहीं रहता कि आज हम जो भी हैं ये उनकी देन हैं अपने सुख सुविधाओं के मद में खोये रहतें हैं मिटा देते हैं उनके त्याग और प्यार को ।

जितना प्यार और दुलार हम अपने बच्चों से करते हैं हमारें माता पिता ने भी हमें उतने ही प्यार दुलार से पाला पोषा था। जितनी सुख सुविधाएं हम अपने बच्चों को देते हैं वो भी हमें दिये थें। हाँ ये जरूर हो सकता हैं कि कुछ अभावों के चलतें वो हमें सबकुछ नहीं दे पाये होंगे परंतु हमारी ज़रूरतें और जिम्मेदारियां बखूबी निभाये और पूरे कियें। ये उनके सफलतापूर्वक निर्वहन किये गये जिम्मेदारियों का ही प्रतिफल है कि आज हम सफल हैं।

हमसे वो चाहते ही क्या हैं बस थोड़ा सा प्यार और सम्मान क्या हम इतना भी नहीं दे सकते उन्हें जिन्होनें हमें जीवन दिया जीना सिखाया ,हमारे डगमगाते क़दमों को चलना सिखाया तो क्या हम उनके लड़खड़ाते क़दमों को अपनी मजबूत बांहों का सहारा नहीं दे सकते ??

क्या सही और क्या ग़लत सोचिएगा जरूर मेरी सोंच तो यही कहती हैं जो काम करने से पहले सोचना न पड़े वो सही। और जो करने से पहले और करने के बाद सोचना पड़े वो गलत। सही का मार्ग मुश्किल जरूर होता है किन्तु सही होता है जबकि गलत का रास्ता बहुत आसान होता है फिर भी गलत ही होता है।

माता पिता बनने में और होने में बहुत अंतर होता है मां बाप कोई भी बन सकता हैं किंतु माता पिता वो होते हैं जो अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाते हैं सिर्फ हमें जीवन ही नहीं देते अपितु जीने योग्य जिन्दगी देते हैं।

आज हम जो भी हैं इसलिए हैं कि हमें इतने अच्छे माता पिता मिले जिन्होंने अपनी खुशियों की परवाह किये बिना हमें कामयाब बनाया जिसका ऋण हम जीवन भर नही उतार सकते।

जो हमें दिन रात अनमोल दुआएं देते रहते हैं बिना किसी स्वार्थ के हमारी सारी बलाएं स्वयं के लिए मागते रहते हैं ईश्वर से और हमारे लिए सिर्फ दुआएं, कितने अनमोल होते हैं हमारे माता पिता। अब ये हम पर निर्भर हैं हम अपना कल कैसा चाहते हैं हमारा कल उतना ही सुखद होगा जितना उनका आज।

"आदर एक निवेश हैं"

पहचानें अपनी सीमा

मानव सभ्यता के इतिहास में पहली बार ऐसा अवसर आया है कि मनुष्य अपनी वास्तविकता को समझ सके। धर्म दर्शन के लिए यह कोई नई बात नहीं है। धर्म जगत में सदा से ही मनुष्य को माटी का पुतला माना जाता रहा है पर अपनी सीमा का नहीं पहचान चाहता है। उसका स्वयं का कुछ नहीं है। जिन पांच तत्वों से मिल कर वह बना है वह भी प्रकृति से उधार लिए गए हैं जो अंतत: लौटाए जाने हैं। वह जन्म के समय कुछ भी लेकर नहीं आया था। वह जीवन समाप्त होने के बाद साथ लेकर भी कुछ नहीं जाएगा। इसके बाद भी मनुष्य जीवन भर अर्जित कर लेने और संग्रह करने में व्यस्त रहता है। वह स्वयं को भाग्यविधाता मानने लगा था, किंतु आज एक छोटे से वायरस ने उसका सारा अभिमान ध्वस्त कर दिया है। आज से पहले मनुष्य को सर्वाधिक भय परमाणु अस्त्रों के कारण तीसरे विश्वयुद्ध से लगता था। उसे लगता था कि यदि युद्ध हुआ तो संसार नहीं बचेगा। आज का भय ऐसे वायरस से है जो स्वत: सृजित हुआ है और जिससे निपटने की कोई ठोस योजना मनुष्य के पास नहीं है। पहचानें अपनी सीमा जिससे की आपकी अहमियत को दुसरे कोई समझ सके।

यह समय है हर तरह के अभिमान से मुक्ति पाने का और जीवन का सच देखने का। आज घर की सीमाओं में बंदी मनुष्य के लिए वह सब कुछ व्यर्थ हो गया है जिसे पाने के लिए वह दिन रात एक करता रहा है। उसके पास कितना भी धन हो, धन का उपयोग सीमित हो गया है। आज जीवन अधिक महत्वपूर्ण लगने लगा है। पहले छोटे-मोटे रोगों में भी मनुष्य की दिनचर्या बाधित नहीं होती थी। आज साधारण जुकाम भी आत्मविश्वास को हिला रहा है। भय का बड़ा वातावरण बना हुआ है। निर्भय मात्र वह है जो परमात्मा से जुड़ा हुआ है। संसार में जो भी घट रहा है उसमें परमात्मा की इच्छा निहित है। परमात्मा की इच्छा और आज्ञा में रहकर उससे दया और कृपा की प्रार्थना करना ही मनुष्य

के वश में है। दीन-हीन ही मनुष्य की वास्तविकता है जिसे सदा के लिए स्वीकार कर लेना चाहिए।

प्रेम आत्मा की सच्ची अभिव्यक्ति

प्रेम आत्मा की सच्ची अभिव्यक्ति है। नारद भक्ति सूत्र में स: हि अनिर्वचनीयो प्रेम रूप: कहकर परमेश्वर को पे्रम रूप घोषित किया है। यही परमतत्व है। इसी का बोध होने में ज्ञान की सार्थकता है। प्रेम आत्मा की विशेषता है। कबीर कहते हैं, ढाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय। अर्थात् ढाई अक्षरों में ही निहित प्रेम के इस तत्व को प्राप्त कर लेने में ही पांडित्य की सार्थकता है। इसमें ऐसा कौन सा तत्व निहित है, जिसे जानने से सब कुछ जान लिया जाता है? इस विषय पर चिंतन करने से ज्ञात होता है कि पत्नी-बच्चों से किया जाने वाला प्रेम, प्रेम नहीं मोह होता है। इस प्रेम और मोह में विरोधाभास जैसी स्थिति है। प्रेम चेतन से होता है और मोह जड़ से। पत्नी आदि से किया जाने वाला तथाकथित पे्रम उसके जड़ शरीर से होता है, न कि चेतन स्वरूप आत्मा से, अत: यह मोह ही है। इसकी जड़ की ओर उन्मुखता मात्र हाड़-मांस वाले शरीरधारियों तक ही सीमित नहीं रहती, वरन लकड़ी, पत्थर व चूने के बने भवन से लेकर विभिन्न प्रकार के सामानों तक बढ़ जाती है, पर इसके विस्तार का क्षेत्र जड़ ही है।

महर्षि याज्ञवल्क्य स्पष्ट करते हैं कि कोई भी आत्मा के कारण प्रिय हो, यही प्रेम की सच्ची परिभाषा है। मोह जहां विभेद उत्पन्न करता है, पे्रम वहीं अभेद की स्थिति पैदा करता है, पे्रम व्यापक तत्व है, जबकि मोह सीमित-परिमित। पे्रम का प्रारंभ संभव है किसी एक व्यक्ति से हो, पर उस तक सीमित नहीं रह सकता। यदि यह सीमित रह जाता है, कुछ पाने की कामना रखता है तो समझना चाहिए कि यह मोह है। प्रेम वस्तुओं से जुड़कर सदुपयोग की, मनुष्यों से जुड़कर उनके कल्याण की और विश्व से जुड़कर परमार्थ की बात सोचता है। मोह में मनुष्य, पदार्थ, विश्व से किसी न किसी प्रकार के स्वार्थ सिद्धि की अभिलाषा रहती है। प्रेम की ज्योति सामान्य दीपक की ज्योति नहीं, जिसमें अनुताप हो, अपितु यह दिव्य चिंतामणि की शीतल स्निग्ध ज्योति है,

जिससे शरीर, मन, बुद्धि, अंत:करण प्रकाशित होते व समस्त संताप शांत होते हैं।

अर्थ से अनर्थ तक

आप 'अर्थ' का अर्थ निश्चय ही जानते होंगे। दुनिया अर्थ के पीछे ही भागती रहती हैं। सारी गतिविधियों की धुरी अर्थ ही है।भगवान न करे हमारे मुँह से कभी उल्टी-सीधी बातें निकल जाए और सुननेवाला कुछ ज़्यादा ही समझ लें। वह अपना ही 'अर्थ' निकाल ले तो बड़ा अनर्थ हो जाता है। कई बार तो बात इतनी बिगड़ जाती है कि संभाले नहीं संभलती है। रुपये-पैसे भी तो 'अर्थ' ही हैं।यही रुपये आदमी को समर्थ भी बनाते हैं। इसके बिना जीवन व्यर्थ हो जाता है। अर्थ का प्रभाव होता ही है बड़ा विस्मयकारी। उलझे रहते हैं इसके माया-जाल में सारे संसारी।

हम सब सुनते आए हैं-"बाप बड़ा न भैया,सबसे बड़ा रुपैया।"आपके पास रुपये हैं तो नाते-रिश्ते बनते चले जाते हैं। जेब खाली है तो यार-दोस्त भी मुँह मोड़ लेते हैं।पैसे में है बड़ा दम,पास नहीं फटकने देगा कभी कोई ग़म। पैसे के न होते हैं हाथ और न ही होते हैं पैर। मगर पैसा ही करता है सकल काम और फिर पैसा ही चलता है सर्वत्र।

अक्सर देखा गया है,जब दो दोस्तों के मध्य पैसों का 'आयात-निर्यात' होने लगता है तो संबंधों का समीकरण असंतुलित हो जाता है। कहा जाता है कि 'करो मित्र की मदद हमेशा तन से मन से खुश होकर' एक बात मैं भी जोड़ देता हूँ इसमें। आप बुरा न मानना।कभी भी मित्र की मदद धन से मत करिये। आप अपने मित्र को सदा ही मित्र बनाए रखना चाहते हैं न ? इसलिए जब कभी वह पैसा माँगें तो अपने दोनों हाथों को जोड़ लेना।ज़्यादा से ज़्यादा आपका मित्र आपको खुदगर्ज ही समझेगा न। यारी तो बनी रहेगी।

हमारे महान देश के कार्यालयों में 'उत्कोच' का अच्छा-खासा प्रचलन है। कुछ लोग इसे 'सेवा-शुल्क' भी कहते हैं।कोई आपको 'सेवा' दे रहा है तो बदले में 'मेवा' लेगा ही ।लोग कहते हैं कि कर्मचारियों को तनख़ा मिलती है।हाँ भाई! इसलिए तो वे सरकार के हुक्म बजाते हैं।वे आपका नहीं हैं

ग़ुलाम।जब आप अपना काम उनसे निकलना चाह रहे हैं तब आपको अपनी जेब ढीली करनी ही पड़ेगी।

संतों का कहना है -"जो जल बाढ़े नाव में घर में बाढ़े दाम/दोनों हाथ उलीचिए यही सयानों काम।"अर्थात् जैसे बाढ़ के समय नाव में पानी भर जाने पर उसे दोनों हाथों से बाहर फेंकते हैं उसी तरह घर में पैसा बढ़ जाने पर दान करते चाहिए।मगर यह होता है कहाँ ?हाय पैसा! हाय पैसा!! इसी में सारी ज़िंदगी गुजर जाती है।कुछ लोगों को तो जान से प्यारी लगती है दमड़ी ।तब न यह कहावत बनी है कि चमड़ी जाए तो जाए मगर दमड़ी न जाए।

हम जानते हैं, पैसा ही पैसा बनाता है।पैसे-पैसे आपस में जुड़कर रुपये बनते हैं। फिर दहाई ,सैकड़ा,हजार लाख,करोड़ और आगे जहाँ तक आप चाहें इस पैसे को खींचकर ले जा सकते हैं।इसकी कोई सीमा रेखा नहीं है।कामना अनंत है।जो सहस्रों-सहस्र मुखों की अतृप्त क्षुधा के समान है। इसलिए भगवान न करें आपको पैसे बनाने की लत लग जाए।फिर आप पैसों के पीछे पागल हो जाएँगे। आप 'टका' को ही टक-टकी लगाए देखते रहेंगे। फिर आप प्रेत से पाए 'स्वर्ण-कलश' को भरने का निरर्थक प्रयत्न करते रहेंगे। सारे नाते-रिश्ते धरे के धरे रह जाएँगे।

मेरी कुछ बातें शायद अभी भी क़ैद में हैं

जी हां कुछ बातें हमेशा कैद में पड़ी रहती है। वे जन्म लेती है हृदय में भावों की गहराई से और वहीं अपना जीवन गुजार देती है। उन्हें मिली कैद का भी कारण होता है, उन्हें शांति बिगाड़ने की शंका में मिलती है कैद। क्योंकि हृदय भयभीत होता है, कि यदि इन्हें आज़ाद कर दिया तो सब बदल जाएगा। हो सकता है कि बदलाव सकारात्मक हो परन्तु नकारात्मक का संदेह सदैव अधिक ही रहता है। इसलिए हृदय बचता है जोखिम मोल लेने से और ये बातें कैद में पड़ी रहती है। पर ये बातें सदैव चाहती है स्वतंत्रता ,चाहती है होंठों में घूमते हुए बाहर जाना,हवा में बहना, जहां कोई इन्हें सुन सकें। और कभी कभी ये आज़ादी इसे नसीब भी हो जाती है। परंतु इसके भी केवल दो मार्ग हैं पहला हृदय को सकारात्मक बदलाव का आश्वासन या कम से कम जोखिम का वादा, हालांकि इसके लिए लंबी पेशी होती है हृदय व मस्तिष्क के बीच, पर यह तब भी बेहतर मार्ग होता है पूरी तरह वैधानिक और वैधानिक प्रक्रियाओं की ही तरह अत्यंत धीमा। और दुसरा मार्ग होता है जो अचानक खुलता है भावनाओं के अत्यधिक दबाव के बीच जब होंठों के सारे ताले टूट जाते हैं , मस्तिष्क का नियंत्रण छूट जाता है तब ये बातें हो जाती है आज़ाद, पूर्णतः अनियंत्रित और भयावह रूप से।

पर मैं इन बातों को ना तो पेशी में जीता पाया ना कभी मस्तिष्क का कड़ा पहरा कमजोर हुआ। इसलिए मैंने एक सुरंग बनाई जो हाथों की मदद से इन्हें कागज पर उतार देती है। जहां ये प्रतीक्षा में रहते हैं कि कोई इन्हें पढ़कर आजाद कर दें।

प्रफुल्ल सिंह

युवा अर्थात वायु

युवा का उल्टा होता है "वायु"-अर्थात जो वायु के वेग से चल सके, जिसके मन में उत्साह हो, उमंग हो, जो जीवन का कोई लक्ष्य निर्धारण किया हो और लक्ष्य प्राप्ति के लिये दृढ़ संकल्प हो वह युवा है, युवा वर्तमान है, जो खुद को बेहतर बनाने के लिये जो सोचता और करता है वह युवा है, आंखों में उम्मीद के सपने, नयी उड़ान भरता हुआ मन, कुछ कर दिखाने का ज़ज्बा और दुनिया को अपनी मुट्ठी में करने का साहस रखने वाला युवा है।

युवा सम्राट स्वामी विवेकानन्द जी कहा है - युवा वह जो जोश से भरा हुआ है, जो सदैव क्रियाशील रहता है, जिसमें शेर जैसा आत्मत्व है, जिसकी दृष्टि सदा लक्ष्य पर होती है, जिसकी शिराओं में गर्म रक्त बहता है, जो विश्व में कुछ अनुठा करना चाहता है, जो भाग्य पर नहीं कर्म पर विश्वास रखता है, जो परिस्थितियों का दास नहीं उसका निर्माता, नियंत्रणकत्र्ता और स्वामी है।

उम्र का यही वह दौर है जब न केवल उस युवा के बल्कि उसके राष्ट्र का भविष्य तय किया जा सकता है। आज के भारत को युवा भारत कहा जाता है क्योंकि हमारे देश में असम्भव को संभव में बदलने वाले युवाओं की संख्या सर्वाधिक है। आंकड़ों के अनुसार भारत की 65 प्रतिशत जनसंख्या 35 वर्ष आयु तक के युवकों की और 25 साल उम्र के नौजवानों की संख्या 50 प्रतिशत से भी अधिक है। ऐसे में यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि युवा शक्ति वरदान है या चुनौती? महत्वपूर्ण इसलिए भी यदि युवा शक्ति का सही दिशा में उपयोग न किया जाए तो इनका जरा सा भी भटकाव राष्ट्र और समाज के भविष्य को अनिश्चित कर सकता है।

युवा आत्मविश्वास का धनी होता है, वह ऊर्जा से ओत-प्रोत रहता है। यदि युवा ऊर्जा के बिखराव को रोक सके तो जिस तरह सूर्य की किरणों को सुनियोजित कर बिजली पैदा की जाती है वैसे ही युवा वर्ग अपनी ऊर्जा को सुनियोजित कर किसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होंगे तो कामयाबी निश्चित है।

युवा कठिन चुनौतियों से कभी पीछे नहीं हटता बल्कि संघर्ष करते हुए रास्ता बनाकर मंजिल तक पहुँचता है।

वर्तमान में देश जिस उथल-पुथल के दौर से गुजर रहा है, आशंकित है आगे क्या होगा? पर्यावरण प्रदूषण, भ्रष्टाचार का दावानल, सूखते जल स्त्रोत, बढ़ती बेरोजगारी, नशाखोरी, आराजकता की भयावह दृश्य को केवल और केवल युवाशक्ति ही मिटा सकती है। पूर्व में हुई क्रांतियों की ही भांति आज के युग एक क्रांति की आवश्यकता है। सारे देश की निगाहें आज युवा शक्ति पर टिकी हुई है। अत: युग निर्माण के मंच से ऐसे युवाओं का आह्वान किया जाना चाहिये, जिनके दिल में देश और समाज के लिये कुछ करने की ललक हो, ऐसे युवाओ को मुख्य धारा से जोड़ना होगा।

उम्मीदों की पतंगों ने भरी उड़ाने होसलों की।
चलो अब देखते उचाइयां इन आसमानों की।।

सच की मानवीयता

मन में सदा अच्छे विचारों को स्थान दीजिए। दूसरे के लिए अच्छा सोचने वाले का अपना भी सब कुछ अच्छा होता ।यदि किसी के मन में दुर्भावनाएँ स्थायी रूप से अपना घर बना लेती हैं तो उस व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को बिगाड़कर रख देती है।

कहा भी गया है कोई किसी के लिए गड्डा खोदता है,उसके लिए खाई तैयार हो जाती है।इसलिए मन में हमें शुभ विचारों को प्रश्रय देना चाहिए। आप किसी की भलाई करते हैं तो मन में संतुष्टि का भाव उठता है और शुभकामनाओं के निकले शब्दों से हृदय शीतल हो जाता है।आत्मिक शांति मिलती है।

सत्य की अपनी प्रतिष्ठा है।सत्य बोलने वाले सबके प्रिय पात्र होते हैं।यह भी देखा गया है कि कुछ लोग अक्सर झूठ की खेती करते हैं मगर दूसरे से उनकी अपेक्षा रहती है कि वह सत्य को साथ लेकर उनके सामने आए।ऐसा इसलिए कि झूठा व्यक्ति को भी सत्य ही प्रिय होता है।झूठ का सहारा लेने वाले को भी आप सच का कद्र करते देख सकते हैं।अक्सर हमें किसी एक झूठ को छिपाने के लिए हजार झूठों का सहारा लेना पड़ता है।तब फिर सत्य बोलकर आप-हम निश्चिंत क्यों न रहें?हाँ,जब किसी के प्राण बचाने हों या जहाँ किसी की भावना या प्रतिष्ठा आहट हो रही हो या प्रेम-सौहार्द्र को बनाए रखना हो,वहाँ झूठ बोलना चलता है।लेकिन बात-बात में झूठ का सहारा लेने वाले व्यक्ति को कोई भी नहीं पसंद करता है।लोग उनकी बातों पर विश्वास नहीं करते और समाज की नज़रों में जरा भी उसकी इज्ज़त नहीं होती है।

शब्द को ब्रह्म कहा गया है। इसके दुरुपयोग से हमें बचना चाहिए।कहा भी गया है कि धनुष से छुटे बाण और मुख से निकले शब्द कभी वापस नहीं आते हैं।वाणी-संयम का अपना महत्व है।हमें व्यवहार में सोच -समझ कर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।शरीर के घाव भर जाते हैं परंतु वाणी से आहट

हृदय सदा दग्ध रहता है।अक्सर देखा जाता है कि किसी भी दो व्यक्तियों के बीच का मनमुटाव की शुरुआत 'बात' से ही होती है।
इसलिए हमारी कोशिश रहनी चाहिए कि किसी के दिल को अपनी बातों से न दुखाएँ। यदि किसी के हृदय को आपकी बातों से दुःख पहुँचा हो और संयोग से पता चल जाए तो क्षमा माँगने में जरा भी देर मत कीजिए।

ज़िंदगी दो दिनों का मेला है।दुनिया से कूच करने के बाद सब कुछ यहीं छुट जाता है। आप अपना व्यवहार अच्छा रखिए।अच्छा बनकर किसी से भी मिलिए,सब कुछ अच्छा ही होगा।आप प्यार बाँटिए चलिए निश्चय ही बदले में आपको प्यार ही मिलेगा।

सकारात्मक या नकारात्मक नजरिया

हमारी जिंदगी में नजरिया (attitude) बहुत ज्यादा मायने रखता है। हमारा नजरिया बचपन में ही बन जाता है। हम कैसे विचार करते हैं ये हमारे नजरिए पर निर्भर करता है। अगर हमारी सोच अक्सर सकारात्मक होती है तो हमारा नजरिया सकारात्मक होता है। अन्यथा हमारा नजरिया नकारात्मक होता है। कुछ लोग जरा सी परेशानी आयी और घबराने लगते हैं । उन्हें हमेशा लगता है कि यह मुसीबत हमारा पीछा नहीं छोड़ेगी। एक के बाद दूसरी मुसीबत खड़ी हो जाएगी। इनका कोई अंत नहीं है। यह सोचकर वे ज्यादा परेशान हो जाते हैं। उनका नजरिया ही नकारात्मक बन जाता है। वे हर सफल व्यक्ति में केवल बुराइयाँ ही तलाशते हैं। उन्हें लोगों की अच्छाइयां कभी दिखाई नहीं देती हैं। वे लोगों में केवल नकारात्मक विचारों को फैलाते हैं। न कभी खुश रहते हैं और ना किसी को रहने देते हैं। हमेशा नकारात्मक बातों को करते रहते हैं। जीवनभर अपना नजरिया बदल नहीं पाते हैं।

इस वजह से जीवन में सदा असफल रहते हैं। अपनी असफलता का कारण दूसरों को मानते हैं। वे यह समझ नहीं पाते हैं कि उनकी असफलता की असली वजह उनका नकारात्मक नजरिया है। वे अपने आपमें कभी सुधार नहीं करते हैं। सदा दुखी और असन्तुष्ट रहते हैं। इन लोगों से मिलकर लोग अप्रसन्न हो जाते हैं। ये लोग दूसरों की परवाह नहीं करते हैं।

दूसरी तरफ सकारात्मक नजरिया वाले लोग आत्मविश्वास से भरे रहते हैं। वे जो काम करते हैं उसमें उन्हें सफलता मिलती है। अगर कभी असफल भी होते हैं तो उसका कारण तलाशते हैं और उस कमी को दूर करते हैं। वे दूसरों पर दोषारोपण नहीं करते हैं। ऐसे लोगों से मिलकर लोग खुश हो जाते हैं क्योंकि वे अच्छे विचार फैलाते हैं। ऐसे लोग बुराई में अच्छाई तलाशते हैं। उनका यह नजरिया ही उन्हें सफलता के करीब ले जाता है। वे दूसरों की अच्छाइयों की तारीफ करते हैं। ऐसे लोगों के बहुत मित्र बन जाते हैं। वे दूसरों

में आशा की किरण जगाते हैं तथा लोगों को सदा प्रोत्साहित करते रहते हैं। स्वयं भी सकारात्मक रहते हैं और सकारात्मक ऊर्जा लोगों में फैलाते हैं। जीवन में सकारात्मक औऱ नकारात्मक विचारों का अपना ही महत्व है। सकारात्मक सोच आगे बढ़ने में सहायता करती है तो नकारात्मक सोच किसी काम में आनेवाली चुनोतियों का एहसास कराती है । हमें दोनों का उचित संतुलन बनाकर अपना काम करना चाहिए। जैसे–सकारात्मक सोच वालों ने हवाई जहाज बनाया लेकिन नकारात्मक सोच वालों ने पैराशूट बनाया। हवाई जहाज बनाने वाले ने सोचा लोग हवा में उड़ सकेंगे तो नकारात्मक विचारों वालों ने सोचा अगर हवाई जहाज गिर गया तो लोग कैसे बचेंगे इसलिए उन्होंने पैराशूट बनाया जिससे लोग बच सकें।

आप इस एक उदाहरण से समझ सकते हैं कि एक हद तक नकारात्मकता सही है।

भारतीय संस्कृति :आधुनिकता एवं प्राचीनता दोनों संग लेकर चलें

सत्य, शिव और सुंदर के विवेचन कठिन हैं। गतिशील समाज वर्तमान से संतुष्ट नहीं रहते, और अतीत से विचलित रहते हैं। सभी संस्कृतियों में प्राचीन के साथ संवाद की परंपरा है। सारा पुराना कूड़ा करकट नहीं होता। वह पूरा का पूरा बदली परिस्थितियों में उपयोगी भी नहीं होता। पुराने के गर्भ से ही नया निकलता है। वास्तविक आधुनिकता विचारणीय है। यहां प्रश्न उठता है कि आधुनिकता के पहले वास्तविक विशेषण की आवश्यकता क्यों है? इसका सीधा उत्तर है कि आधुनिकता स्वयं में कोई निरपेक्ष आदर्श या व्यवहार नहीं है। इसका सीधा अर्थ ही प्राचीनता का अनुवर्ती है। आधुनिकता प्राचीनता के बाद ही आती है। हरेक आधुनिकता की एक सुनिश्चित प्राचीनता होती है। इसी तरह प्राचीनता की भी और प्राचीनता होती है।

आधुनिकता को और आधुनिक कहने के लिए उत्तर आधुनिकता शब्द का चलन बढ़ा है। सच बात तो यही है कि प्राचीनता और आधुनिकता के विभाजन ही कृत्रिम हैं। काल अखण्ड सत्ता है। काल में न कुछ प्राचीन है और न ही आधुनिक। हम मनुष्य ही काल संगति में प्राचीनता या नवीनता के विवेचन करते हैं। प्राचीनता ही अपने अद्यतन विस्तार में नवीनता और आधुनिकता है। हम आधुनिक मनुष्य अपने पूर्वजों का ही विस्तार हैं। वे भी अपनी विषम परिस्थितियों में अपने पूर्वजों से प्राप्त जीवन मूल्यों को झाड़ पोछकर अपने समय की आधुनिकता गढ़ रहे थे। ऐसा कार्य सतत् प्रवाही रहता है।

विज्ञान और दर्शन के विकास ने देखने और सोचने की नई दृष्टि दी है। इससे प्राचीनता को नूतन परिधान मिले हैं। ऋग्वेद प्राचीनतम ज्ञान कोष है। हम ऋग्वेद के समाज को प्राचीन कहते हैं। ऐसा उचित भी है लेकिन ऋग्वेद में उसके भी पहले के समाज का वर्णन है। ऋग्वेद जैसा मनोरम दर्शन और काव्य

अचानक नहीं उगा। निश्चित ही उसके पहले भी दर्शन और विज्ञान के तमाम सूत्र थे। वैदिक पूर्वजों ने अपने पूर्वजों से प्राप्त परंपरा का विकास किया। ऋग्वेद की कविता वैदिक काल की आधुनिकता का दर्शन-दिग्दर्शन है। यही बात उपनिषद् और महाकाव्य काल पर भी लागू होती है। सांस्कृतिक निरंतरता पर ध्यान देना बहुत जरूरी है।

वैदिक काल की निरंतरता का ही विकास हड़प्पा सभ्यता है। इसे स्वतंत्र सभ्यता बताने वाले गल्ती पर हैं। कोई भी सभ्यता या संस्कृति शून्य से नहीं उगती। हड़प्पा की सभ्यता नगरीय सभ्यता है। नगरीय जीवन खाद्यान्न सहित तमाम मूलभूत आवश्यकताओं के लिए ग्रामीण अर्थव्यवस्था पर निर्भर होते हैं। आधुनिक भारत का समाज प्राचीन भारत के पूर्वजों के सचेत या अचेत परिश्रम का परिणाम है। आधुनिकता में प्राचीनता की चेतना होनी चाहिए लेकिन अंग्रेजी राज के दीर्घकाल में प्राचीनता को अंधविश्वास और पिछड़ापन बताया गया।

भारतीय सम्पर्क से विश्व का भी ज्ञानवर्द्धन भी हुआ लेकिन भारत में लोकमत के संस्कार का काम संतोषजनक नहीं है। हम भारत के लोग बहुधा दुनिया के अन्य देशों की जीवनशैली की प्रशंसा करते हैं। यहां विदेशी सभ्यता को अपनी सभ्यता से श्रेष्ठ बताने वाले भी हैं। संप्रति भारतीय आधुनिकता भारतीय नहीं जान पड़ती। यह प्राचीनता का स्वाभाविक विस्तार नहीं है। इस आधुनिकता में विदेशी जीवनमूल्यों का घटिया प्रवाह है। यह भारत के स्वयं को आत्महीन बना रही है। इसलिए मूल परंपरा से संवाद जरूरी है। उसके पक्ष में लोकमत बनाना और भी जरूरी है।

आधुनिकता भारतीय प्राचीनता की ही पुत्री है। प्राचीनता मां है और आधुनिकता पुत्री। माता पूज्य है और पुत्री आदरणीय। दोनो स्वतंत्र सत्ता नहीं हैं। आधुनिकता को यथासंभव मां के सद्गुणों का अवलम्बन करना चाहिए और देश काल परिस्थिति के अनुसार स्वयं का पुनर्सृजन व विकास भी करना चाहिए। प्राचीनता पिछड़ापन नहीं है। प्राचीनता का विवेचन जरूरी है। प्राचीनता की गतिशीलता में ही हम आधुनिक होते हैं। गति के साथ अनुकूलन करना और अनुकूलन व अनुसरण में ही प्रगतिशील होते जाना काल का आह्वान है।

वर्तमान समाज व्यवस्था व जीवन शैली संतोषजनक नहीं है। इसका मुख्य कारण प्राचीनता से अलगाव है। आयातित आधुनिकता ने हमारी स्वाभाविक संस्थाएं भी तोड़ी हैं। परिवार, प्रीति और आत्मीयता के बंधन टूट रहे हैं। असंतोष विषाद बन रहा है और विषाद अवसाद। इसलिए लोकमत निर्माण में लगे सभी विद्वानों, पत्रकारों, साहित्यकारों, सामाजिक कार्यकर्ता और मूल्यनिष्ठ राजनेताओं को ध्येयनिष्ठ, स्वाभाविक आधुनिकता के सृजन में जुटना चाहिए।

महिला लेखन : स्त्री-अस्मिता का साहित्य

पिछले कुछ दशक में हिंदी साहित्य में स्त्री लेखन का व्यापक प्रस्फुटन एक अनूठी और ऐतिहासिक घटना है। यहां स्त्री लेखन एक सामाजिक सच्चाई और अस्मिता के संघर्ष की चुनौती के रूप में सामने आता है। यह स्त्री के अपने नजरिए से स्त्री लेखन का नया पाठ है। इस साहित्य में स्त्री विमर्श अस्मिता का वह आंदोलन है, जो हाशिए पर छोड़ दिए गए नारी अस्तित्व को फिर से केंद्र में लाने और उसकी मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करने का अभियान है। यह साहित्य स्त्री को सामाजिक संरचना में दूसरे दर्जे पर रखने का मुखर विरोध और स्त्री को एक जीवंत मानवीय ईकाई के रूप में स्वीकार करने का प्रयास है।

दुनिया के सभी समुदायों, सभ्यता, धर्म, वर्ग और जाति में पितृसत्ता किसी न किसी रूप में मौजूद रही है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, आर्थिक व्यवस्था और मूल्यों ,मर्यादाओं, आदर्शों और संस्कारों के विभिन्न रूपों के जरिए बड़े बारीक ढंग से इसे समाज की संरचना में बुना गया है। इसके माध्यम से पुरुष को स्त्री की तुलना में श्रेष्ठ स्थापित करने का जो षड्यंत्र रचा गया उसमें स्त्री शोषण को सहज और स्वाभाविक मान्यता के रूप में समाज के मन-मस्तिष्क में बैठाने की निरंतर कोशिश की गई। समय-समय पर विभिन्न शक्तियों से गठजोड़ करके इसने अपना रूप भी बदला, पर इसकी मौजूदगी सामंतवादी व्यवस्था से लेकर पूंजीवादी और अब बाजारवादी व्यवस्था की आतंरिक संरचना में भी अनेक स्तरों पर बनी हुई है। इसका उद्देश्य स्त्री के वास्तविक अस्तित्व और स्वप्नों का सदा के लिए दमन करना और पौरुषपूर्ण वर्चस्ववादी समाज में स्त्री के लिए समानता और न्याय की संभावनाओं को समाप्त करना रहा है।

इन सभी रूढ़िवादी व्यवस्थाओं और सदियों से चल रहे सुनियोजित शोषण-उत्पीड़न के विरुद्ध विश्व भर के वैचारिक चिंतन में नारीवादी विमर्श ने एक नया आयाम और परिप्रेक्ष्य निर्मित किया। 1975 अंतरराष्ट्रीय महिला वर्ष

घोषित हुआ। भारत के संदर्भ में भी इसे ऐतिहासिक काल कहा जा सकता है। स्त्री शिक्षा का सभी क्षेत्रों में विकास हुआ, अधिकारों की मांग बढ़ी और आत्माभिव्यक्ति के लिए क्षुब्ध और छटपटाते हृदय ने साहित्य को माध्यम बनाया। राजनीति और समाज के सभी क्षेत्रों में जब महिला सशक्तीकरण का दौर शुरू हुआ तो साहित्य की दुनिया में भी यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। महिला-लेखन के केंद्र में स्त्री अस्मिता का संघर्ष, अदम्य जिजीविषा, स्त्री स्वतंत्र, देह और यौन उत्पीड़न के प्रति विद्रोह और स्वयं की पहचान के प्रति जागरूकता के साथ सामाजिक पहलुओं से जुड़े यथार्थ को भी देखा गया। मानवीय संवेदना की गहरी पड़ताल करते हुए सभी वर्ग, वर्ण और जाति की स्त्रियों की अंतरात्मा का अवलोकन करके ये स्त्री रचनाएं पाठकों को स्तब्ध और उद्वेलित कर देती हैं। यह स्त्री-लेखन नारी-शोषण के विरुद्ध परिवर्तन और क्रांति के साथ समकालीन साहित्य में सशक्त हस्तक्षेप भी करता है।

वर्तमान स्त्री लेखन में स्वतंत्रता, समानता और न्याय जैसे मूलभूत अधिकारों के लिए संघर्षरत और सक्रिय स्त्री रचनाकार स्त्री-हितों की चर्चा स्वयं करने लगी है और अपनी अस्मिता को पहचान रही है। स्त्री साहित्य अपनी मूल चेतना में उसे पराधीन बनाने वाली इस पितृसत्तात्मक व्यवस्था में निहित विवाह संस्था, धर्म, जाति, वर्ग आदि की स्त्री-विरोधी भूमिका को प्रकाश में लाता है। स्त्री को शक्तिहीन करने की यह प्रक्रिया बेहद सूक्ष्म, जटिल और संश्लिष्ट है, जिसमें स्त्री को कभी किसी संवाद या विवाद का अवसर नहीं दिया गया। स्त्री लेखन इन्हीं प्रश्नों से सीधी मुठभेड़ करके समाज की संकीर्ण मानसिकता से टकराने का जोखिम उठाता है। वह पुरुष को बेहतर सत्ता का मनुष्य मानने वाले समाज से प्रश्न करता है कि स्त्री आधी आबादी है, तो फिर उसे मानवीय गरिमा से वंचित क्यों रखा गया है। आज हिंदी में स्त्री लेखन का साहित्य समृद्ध और पहले की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है। स्त्री रचनाकार एक बड़े बदलाव के साथ आत्मविश्वास से अपने सुख-दुख, आक्रोश और असहमति को व्यक्त कर रही है। वह समान नागरिक के रूप में पुरुष से किसी अतिरिक्त दया या सहानुभूति की अपेक्षा नहीं रखती। मात्र देह मुक्ति को विमर्श न मान कर वह बौद्धिक रूप से अधिक सक्षम, सामाजिक रूप से ज्यादा सचेत और परिपक्व है। स्त्री साहित्य में आज की स्त्री के जीवन की वास्तविकताएं,

संभावनाएं और दासता की दारुण स्थितियों से मुक्ति की दिशाओं का उद्घाटन हुआ है। स्त्री की अपनी पहचान को स्थापित करते हुए इन रचनाकारों ने यह सिद्ध किया कि समाज मे हर तरह के शोषण और अत्याचार का उपभोक्ता प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से अधिकतर स्त्री ही होती है, चाहे वह धार्मिक कुरीतियां हों, यौन हिंसा या आर्थिक पराधीनता, युद्ध हो या जातिगत दंगे-विवाद, इन सभी का सबसे बुरा प्रभाव स्त्री पर ही पड़ा है।

स्त्रीवाद की वैचारिकी साहित्य में अत्यंत विश्वसनीय रूप से एक सतत संघर्ष यात्रा और आंदोलन के रूप में निरतंर समृद्ध हो रही है। स्त्री-लेखन सामाजिकता और दैहिकता के प्रश्नों को समांतर लेकर चलते हुए पितृसत्ता पर ठीक उन्ही तर्कों से प्रहार कर रहा है, जो उसके लिए भी अपनी पहचान के सवाल हैं। हिंदी का स्त्रीवादी साहित्य स्त्री को व्यवस्था की गुलामी से मुक्त करके उसे एक आत्मनिर्णायक स्वतंत्र व्यक्ति की अस्मिता के रूप मे स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण और सार्थक प्रयास है।

समाज सार्थक संचार से दूर भौतिकता की गोद में

समाज सार्थक संचार से दूर, एक लोकतांत्रिक समाज संवाद पर आधारित है और विचारों के आदान-प्रदान से विकसित होता है। वह तर्क और तर्क के आधार पर मतभेदों को समाप्त करता है और एक निर्णय पर आता है और इसे निष्पादित करता है। वैदिक सभा की समितियों से लेकर भारत की संविधान सभा तक, ऐसे सैकड़ों बिखरे हुए उदाहरण हैं जिनमें चर्चा, तार्किक बहस होती है, लेकिन एक महत्वपूर्ण निर्णय पर भी पहुँचा जा सकता है जबकि विरोध को कम किया जाता है। वास्तव में, भारतीय समाज द्वारा तथ्यों और ज्ञान के पर्दा को तोड़ने के लिए तर्क का उपयोग किया जाता है। भ्रम और अज्ञान का आवरण टूट गया है, इसके लिए केवल तर्क की आवश्यकता है। बहस, परिष्कार, अवांछनीय अश्लीलता के नाम पर चरित्र हनन को कभी भी उचित नहीं ठहराया जा सकता। तार्किक आधारों पर निष्पादित होने पर ही संवाद योग्य होता है। हमें भारत की संसद में छंदों के अर्थ को हमेशा याद रखना चाहिए। उस श्लोक का अर्थ किसी सभा में प्रवेश करना भी नहीं है। यदि आप करते हैं, तो समन्वित और उचित तरीके से बोलें। एक व्यक्ति जो एक बैठक में चुपचाप या अनुचित तरीके से बोल रहा है वह पापी है।

भारतीय इतिहास बताता है कि जब भी तर्कवाद अपने चरम पर होता है, तो थोड़ी-सी बौद्धिकता पर आधारित ज्ञान प्रणाली समाज का आधार बन जाती है। श्रेष्ठ समाज भी इससे पराजित हो गया है। इसलिए, लोकतांत्रिक व्यवस्था में मूल्य के रूप में संवाद को लिया जाना चाहिए। हमें विश्वास से भी संवाद से निकाले गए निष्कर्ष को स्वीकार करना चाहिए। इसके लिए, भारत में प्रचलित प्रक्रिया भी शंकराचार्य जैसे तर्कवादियों को स्वीकार करती है। शंकराचार्य कहते थे कि धर्म कोई असभ्य बात नहीं है, बल्कि बहुत ही सूक्ष्म विचार है। इसलिए, उनकी उत्पत्ति को समझने के लिए चर्चा सत्र होना चाहिए,

लेकिन चर्चा भीड़ में नहीं बल्कि समूहों में होती है। भीड़ में अराजकता हो सकती है, सच्चाई की भावना नहीं। सच्चाई को समझना भी हमारे विचारों के साथ स्थिरता की मांग करता है। गांधीजी इसका एक उदाहरण हैं। वह अपने विचारों को खारिज करने में भी संकोच नहीं करता था। उस दिशा में किया गया निर्णय लोगों के सामने, उनके सामने, लोगों के लिए फायदेमंद होता है। भारत के भीतर कई ऐसे अवसर आए हैं जिनमें जीवन के व्यवहार के स्तर में, सरकार के स्तर में मतभेद रहे हैं। वोट को विभाजित किया गया है, लेकिन एक बड़े पैमाने पर आम सहमति की ओर बढ़ने और देश के महानतम हितों के सामने हमारे स्वार्थ का त्याग करते हुए निर्मित प्रणाली को स्वीकार करते हुए, परिष्कार के बौद्धिक परिश्रम के उदाहरण भी हैं। भारत के लोग आपदा में भी यही करते रहे हैं। एक विभाजित दिमाग किसी भी राष्ट्र की समूह चेतना को नष्ट कर सकता है। विरोध होना जरूरी है, लेकिन विरोध होना खतरनाक है। विरोध को कम करने का एक तरीका अनुरोध के रूप में स्थापित प्रणाली के खिलाफ रखी गई बाधाओं को खत्म करना है। विभाजित लोगों को भड़काने और उत्तेजित समूहों को अराजकता में धकेलने के लिए देश में एक सामूहिक प्रयास है। ऐसा लगता है कि भारत फिर से शहर-शहर में विखंडन के कगार पर है।

भारतीय समाज की ताकत यह है कि यह मतभेदों को खत्म करता है और एक बनने के लक्ष्य की ओर बढ़ता है, लेकिन आज यह सार्वजनिक रूप से स्वीकृत प्रणाली गायब हो रही है। नतीजतन, छोटे अंतर भयावह रूप ले रहे हैं। छोटे-छोटे मतभेद टुकड़ों का समाज बना रहे हैं। ऐसी स्थिति में, हमें याद रखना चाहिए कि किसी भी समूह की भाषा और उसकी विचार प्रणाली, अर्थात् मिलना, बैठना, विचार व्यक्त करना, वैचारिक भिन्नताओं पर चर्चा करना और चर्चा के दौरान स्पर्श, बोध के आधार पर पूर्ण संवेदनशीलता और संवेदनशीलता के साथ। दूसरे का अपनाना प्रगतिशील होना है। यह भारत के इतिहास में गार्गी और याज्ञवल्क्य के संदर्भ में जनक और अष्टावक्र के संदर्भ में देखा जा सकता है। यह भेद कुमारिल और शंकराचार्य के संवादों में, शंकराचार्य और मंडन मिश्र के संवादों में भी परिलक्षित होता है। यह सावरकर और गांधी के संवाद, सुभाष और गांधी के संवाद में भी गूंजता है।

शास्त्रार्थ केवल आधार भूमि में है। भारत के लिए, यह संविधान, संवैधानिक कानूनों का आधार है, जिसमें सभी उपचार संभावनाएं शामिल हैं। यदि भारत के शरीर में कोई बीमारी है, तो इसका अहिंसक उपचार संभव है। इसीलिए बुद्ध ने खुद को सर्वश्रेष्ठ चिकित्सक कहा, क्योंकि उन्होंने एक ऐसी सोच विकसित की जो समाज की पीड़ा को दूर करने के लिए करुणा और नैतिकता पर आधारित हो। आज का शोरगुल वाला माहौल संगीत को विभिन्न स्वरों के बीच सामंजस्य बनाने की उम्मीद करता है और यह संगीत केवल भारत के लोगों द्वारा ही बजाया जा सकता है।

गरीबी शिक्षा में बाधक नहीं है

हम जिस युग में जी रहे हैं उसमे आधुनिक तकनीकी हमारे जीवन का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गया है जिसे सिखने या इस्तेमाल करने के लिए शिक्षा की अहमियत होती है. शिक्षा हम सभी के उज्जवल भविष्य के लिए एक बहुत ही आवश्यक साधन है. हम अपने जीवन में शिक्षा के इस साधन का उपयोग करके कुछ भी अच्छा प्राप्त कर सकते हैं. ये तो हम हमेसा से सुनते आये हैं की शिक्षा पर दुनिया के हर एक बच्चे का अधिकार है. देश के विकास के लिए प्रत्येक बच्चे का शिक्षित होना बेहद जरुरी है। लेकिन हमारे देश भारत में क्या इन बातों पर अमल किया जाता है? सभी इस बात से वाकिफ हैं की भारत में गरीब लोगों की संख्या मध्यवर्गीय और अमीर लोगों की तुलना में कई ज्यादा है. इस गरीबी के कारण ऐसे कई लाख बच्चे हैं जिन्हें प्राथमिक शिक्षा भी नसीब नहीं होती और बचपन से ही उन्हें बाल श्रम के दलदल में ढकेल कर उनका मासूम सा बचपन छीन लिया जाता है।

गरीबी के कारण केवल एक परिवार को ही नहीं बल्कि उस देश को भी इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है. अशिक्षित लोगों की संख्या बढ़ने से देश के उन्नति पर इसका गहरा प्रभाव पड़ता है। हमारे देश की हालत को सुधारने का एक मात्र रास्ता है शिक्षा. शिक्षा लोगों की सोच को सकारात्मक बनाती है और नकारात्मक विचारों को दूर भगाती है. आज मै आपके लिए एक अनोखा विषय लेकर आई हूँ जिसके बारे में आपको जानना जरुरी है ताकि जब भी आप किसी गरीब बच्चे को शिक्षा प्राप्त ना करते हुए देखें तो आप उसे सही सलाह दे सकते हैं. उस विषय का नाम है गरीबी शिक्षा में बाधक नहीं है पर निबंध. ये निबंध अपने बच्चों के साथ भी शेयर कीजिये ताकि उन्हें भी इस निबंध के माध्यम से शिक्षा के महत्व के बारे में पता चल सके।

गरीबी एक ऐसी समस्या है जो हमारे पुरे जीवन को प्रभावित करने का कार्य करती है. गरीबी एक सामाजिक समस्या है जो इंसान को हर तरीके से परेशान करती है. इसके कारण एक व्यक्ति का अच्छा जीवन, शारीरिक

स्वास्थ्य, शिक्षा स्तर आदि जैसी सारी चीजें ख़राब हो जाती है. आज के समय में गरीबी को दुनिया के सबसे बड़ी समस्याओं में से एक माना जाता है। गरीबी में जीवन जीने वाले व्यक्तियों को ना तो अच्छी शिक्षा की प्राप्ति होती है ना ही उन्हें अच्छी सेहत मिलती है. भारत में गरीबी देखना बहुत आम सा हो गया है क्योंकि ज्यादातर लोग अपने जीवन की मुलभुत आवश्यकताओं को भी पूरा नहीं कर सकते हैं।

गरीबी का मुख्य कारण अशिक्षा है और अशिक्षा से अज्ञानता पनपती है. गरीब परिवार के बच्चे उच्च शिक्षा तो छोडिये सामान्य शिक्षा भी ग्रहण नहीं कर पाते हैं. शिक्षा का अधिकार सभी लोगों को है लेकिन गरीबी के कारण ऐसा नहीं हो पाता है. हमारी भारत सरकार गरीब लोगों के लिए कई सारे अभीयान चलाती है लेकिन अशिक्षित होने के कारण गरीबों तक उस अभियान की जानकारी नहीं पहुँच पाती है। गरीब लोगों में जागरूकता और जानकारी का अभाव तथा उनका गैर प्रगतिशील नज़रिया एक ऐसा मुलभुत कारण है जिसे गरीबी के लिए जिम्मेदार माना जाता है. जानकारी तथा जागरूकता की कमी के कारण गरीब लोग सरकारी कार्यक्रमों का लाभ उठाने में असमर्थ रहते हैं. इसलिए प्राथमिक शिक्षा भी गरीबों के लिए बहुत ही जरुरी होता है।

बेहतर शिक्षा सभी के लिए जीवन में आगे बढ़ने और सफलता प्राप्त करने के लिए बहुत आवश्यक है. यह हममें आत्मविश्वास विकसित करने के साथ ही हमारे व्यक्तित्व निर्माण में भी सहायता करती है. आधुनिक युग में शिक्षा का महत्व क्या है ये गरीब परिवार और पिछड़ी जाती के लोगों को बताना अति आवश्यक है तभी वो अपने बच्चों को शिक्षा के लिए प्रोत्साहित करेंगे।

शिक्षा प्रणाली को बढ़ावा देने के लिए बहुत सी सरकारी योजनाएं चलायी जा रही है ताकि सभी की शिक्षा तक पहुँच संभव हो. ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को शिक्षा के महत्व और लाभों को दिखाने के लिए टीवी और अखबारों में बहुत से विज्ञापनों को दिखाया जाता है क्योंकि पिछड़े ग्रामीण क्षेत्रों में लोग गरीबी और शिक्षा की ओर अधूरी जानकारी के कारण पढाई करना नहीं चाहते हैं।

सर्व शिक्षा अभियान का उद्देश्य सभी को शिक्षित करके उन्हें अपने पैर पर खड़ा करना है जिससे समाज का कल्याण हो सके. इसके अलावा बालक बालिका का अंतर समाप्त करना, देश के हर गांव शहर में प्राथमिक स्कूल खोलना और मुफ्त शिक्षा प्रदान करना, निशुल्क पाठ्य पुस्तकें, स्कूल ड्रेस देना, शिक्षकों का चयन करना, उन्हें लगातार प्रशिक्षण देते रहना, स्कूलों में अतिरिक्त कक्षा का निर्माण करना आदि सर्व शिक्षा अभियान के उद्देश्य में शामिल हैं।

बालिका छात्रों तथा कमजोरवर्गों के बच्चों पर विशेष ध्यान दिया गया है. डिजिटल दुनिया के साथ कदम से कदम मिलाने के लिए सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में कम्प्यूटर शिक्षा भी प्रदान की जाएगी।

स्कूली शिक्षा बिना अमीरी गरीबी का भेदभाव किये सभी बच्चों को मिलनी चाहिए क्योंको ये सभी के जीवन में एक महान भूमिका निभाती है. शिक्षा को प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा जैसे तिन प्रभागों में विभाजित किया गया है. शिक्षा के सभी भागों का अपना महत्व और लाभ है. प्राथमिक शिक्षा आधार तैयार करती है जो जीवन भर मदद करती है।

माध्यमिक शिक्षा आगे के अध्ययन के लिए रास्ता तैयार करती है और उच्चतर माध्यमिक शिक्षा भविष्य और पुरे जीवन का अंतिम रास्ता तैयार करती है. उचित शिक्षा भविष्य में आगे बढ़ने के बहुत सारे रास्ते बनाती है. यह हमारे ज्ञान स्तर, तकनिकी कौशल और नौकरी में अच्छी स्थिति को बढाकर हमें मानसिक, सामाजिक और बौद्धिक रूप से मजबूत बनाता है।

पहले भारत की शिक्षा प्रणाली बहुत सख्त थी और सभी वर्गों के लोग अपनी इच्छा के अनुसार शिक्षा प्राप्त करने में सक्षम नहीं थे. ज्यादा पैसे लगने की वजह से विश्वविद्यालयों में प्रवेश लेना बहुत कठिन था. लेकिन अब शिक्षा प्रणाली में बदलाव किये गए हैं जिससे शिक्षा में आगे बढ़ना सरल और आसान हो गया है।

सबसे महत्वपूर्ण बात यह है की दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों ने उच्च अध्ययन को इतना सरल और सस्ता बना दिया है की पिछड़े क्षेत्रों के लोग भविष्य में शिक्षा और सफलता तक अपनी पहुँच प्राप्त कर सकते हैं। शिक्षा के

बहुत से लाभ होते हैं पहला तो ये की गरीबी की स्थिति को सुधारने में सक्षम होता है. शिक्षा के कारण लोगों को समाज में मान सम्मान मिलता है और इज्जत मिलता है. नौकरी के ढेरों अवसर मिलते हैं जिससे आर्थिक स्थिति में सुधार होने लगता है।

शिक्षा के वजह से ही व्यापार का विकास होता है और देश की आय में बढ़ोतरी होती है. अच्छी शिक्षा जीवन में बहुत से उद्देश्यों को प्रदान करती है जैसे व्यक्तिगत उन्नति को बढ़ावा, सामाजिक स्तर में बढ़ावा, सामाजिक स्वस्थ में सुधार, आर्थिक प्रगति, राष्ट्र की सफलता, जीवन में लक्ष्यों को निर्धारित करना, हमें सामाजिक मुद्दों के बारे में जागरूक करना और पर्यावरण समस्याओं को सुलझाने के लिए हल प्रदान करना जैसे कई सारे मुद्दों के बारे में सोचने समझने की काबिलियत प्रदान करता है।

समाज में भ्रष्टाचार, अशिक्षा तथा भेदभाव जैसे ऐसी समस्याएं हैं जो आज के समय में विश्व भर को प्रभावित कर रही है. इसे देखते हुए हमें इन कारणों की पहचान करनी होगी और इनसे निपटने की रणनीति बनाते हुए समाज के विकास को सुनिश्चित करना होगा क्योंकि गरीबी का सफाया समग्र विकास के द्वारा ही संभव है।।

भक्ति का पहला मार्ग सादगी

सादगी भक्ति का पहला मार्ग है, आनंद एक आलसी लेकिन निर्दोष युवक था। पूरे दिन कोई काम नहीं करता, बस खाना और सोना। परिजनों ने उसे नौकरी से निकाल दिया और नौकरी करने को कहा। आनंद ने घर छोड़ दिया, इस तरह भटकते हुए एक आश्रम में आया। वहाँ उन्होंने देखा कि एक गुरु जी हैं, उनके शिष्य काम नहीं करते, बल्कि केवल मंदिर में पूजा करते हैं। उसने सोचा कि यह उसके लिए एक अच्छी जगह है, कोई काम नहीं है और केवल पूजा है। उन्हें गुरु से आज्ञा मिली और वे वहाँ रहने लगे।

आनंद ख़ुशी से आश्रम में रहे, कोई भी काम या तीर्थयात्रा नहीं की, केवल प्रभु की भक्ति में ही भोजन किया और भजन गाया। धीरे-धीरे महीना बीत गया और एकादशी आ गई। आनंद ने देखा कि रसोई में खाना तैयार नहीं था। जब उन्होंने गुरुजी से पूछा, तो उन्होंने कहा कि सभी लोग आश्रम में एकादशी का व्रत रखते हैं। आनंद ने कहा: गुरु जी, बिना भोजन के वह मर जाएगा।

इस पर गुरुजी ने कहा, उपवास मन पर निर्भर करता है, कोई अनिवार्यता नहीं है। इसलिए, आपको अपने स्वयं के भोजन को तैयार करना और खाना चाहिए, लेकिन आपको इसे नदी के पार करना होगा। आनंद ने जलाऊ लकड़ी, खाना पकाने के बर्तन आदि ले लिए। और नदी पार कर गया। इस बीच, गुरुजी ने कहा कि जब वह खाना बनाने के लिए तैयार हो, तो सबसे पहले श्री राम जी को अर्पित करें।

आनंद ने खाना तैयार किया और खाना खाने बैठ गया। इस बीच, उन्हें याद आया कि गुरुजी ने भगवान से उन्हें भोग चढ़ाने के लिए भी कहा था। उन्होंने भजन गाना शुरू किया लेकिन उन्हें पता नहीं था कि भोला मानस नहीं आएंगे, लेकिन उन्हें गरु जी की आज्ञा का पालन करने की भी आवश्यकता थी। लंबे समय के बाद उन्होंने कहा कि भगवान राम को देखिए, मैं समझ गया कि आप क्यों नहीं आते क्योंकि मैंने सूखा खाना पकाया है और आपको

मिठाई खाने की आदत है। उसने कहा, एक बात और बताओ, भगवान ने आज आश्रम में कुछ भी नहीं किया है, इसलिए यदि आप खाना चाहते हैं, तो इसका आनंद लें।

श्रीराम अपने भक्त की सरलता पर मुस्कुराए और माता सीता के साथ प्रकट हुए। आनंद भ्रमित हो गए क्योंकि गुरुजी ने राम जी के बारे में बात की थी, लेकिन सीता माता भी यहाँ आई हैं। आनंद ने कहा: प्रभु, मैंने दो लोगों के लिए भोजन तैयार किया था, लेकिन आपको देखकर बहुत अच्छा लगा।

अगले एकादशी तक भोला मानस सब कुछ भूल गया। उसे लगा कि भगवान ने आकर प्रसाद ग्रहण किया होगा। फिर एकादशी आई। गुरुजी ने कहा: मैं अपना भोजन पकाने गया था, इस बार गुरुजी थोड़ा और अनाज लेंगे, दो लोग वहां आएंगे। गुरुजी मुस्कुराए और सोचा कि अगर उन्होंने कड़ी मेहनत की, तो वे भूखे रह सकते हैं, इसलिए वह बहाना बना रहे हैं।

गुरु ने अधिक भोजन लाने की अनुमति दी। आनंद ने इस बार तीन लोगों को पकाया और प्रभु को याद किया। इस बार भगवान राम, लक्ष्मण और सीता माता तीनों पहुंचे। फिर आनंद ने प्रभु को खिलाया और मौत के घाट उतार दिया। बिना जाने ही उसने एकादशी का व्रत भी कर लिया।

अगली एकादशी में उन्होंने पूछा: गुरुजी, आपके भगवान राम अकेले क्यों नहीं आते? वे हर बार कितने लोगों को लाते हैं? अनाज इस बार थोड़ा ज्यादा दें। इस बार, गुरुजी को लगा कि अगर उन्होंने अनाज बेचा तो उन्होंने आनंद को छिपाने और देखने का फैसला किया।

अपने जीवन को बदलने से पहले अपने सोच को बदलिए

दूसरी ओर, आनंद ने सोचा, इस बार मैं पहले भोजन नहीं बनाऊंगा, मुझे नहीं पता कि कितने लोग आते हैं। पहले मैं फोन करता हूं और फिर करता हूं। जब भोले आनंद ने भगवान को याद किया, तो भगवान उनके दरबार में उपस्थित हुए। उन्होंने आनंद से कहा, क्या यह प्रसाद अभी तैयार नहीं है? भक्त, भोला भाला, ने कहा: मैंने सोचा कि कितने लोग आएंगे, तो पहले इसे करने का क्या लाभ है? खुद भी करो और मुझे भी खिलाओ।

शिष्य की सरलता देखकर भगवान राम मुस्कुराए और कहा कि भक्त की इच्छा अवश्य पूरी होनी चाहिए। चलो काम पर वापस चलते हैं। लक्ष्मण जी ने

लकड़ी एकत्र की, माता सीता ने आटा गूंथना शुरू किया। भक्त एक तरफ बैठकर देखता रहा। इसे देखकर बुद्धिमान भिक्षु, यक्ष, गंधर्व प्रसाद लेने के लिए आने लगे। इधर, गुरुजी ने देखा कि भक्त खाना नहीं बना रहा था, बल्कि एक कोने में बैठा था।

वे वहाँ गए और पूछा, बेटा, क्या हो रहा है, तुमने खाना क्यों नहीं बनाया? आनंद ने कहा, अच्छा हुआ गुरूजी, आप देख चुके हैं कि कितने लोग प्रभु के साथ आते हैं। गुरुजी ने कहा: मुझे तुम्हारे और फलियों के अलावा कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है। यह सुनकर आनंद ने सिर पकड़ लिया और भगवान राम से कहा: भगवान, आप मुझे हर बार इतनी मेहनत करते हैं, मुझे भूखा रखते हैं और अब मैं गुरुजी को देख भी नहीं सकता।

यह सुनकर, प्रभु ने कहा: मैं उन्हें नहीं देख सकता। शिष्य ने कहा कि वह मेरा गुरु है, कि वह एक महान विद्वान है, कि वह एक विद्वान है, कि वह बहुत कुछ जानता है, आप उसे क्यों नहीं देखते?

प्रभु ने कहा कि आपके गुरुजी सब कुछ जानते हैं, लेकिन यह आपके लिए उतना सरल नहीं है, इसलिए, वह इसे नहीं देख सकते हैं। आनंद ने गुरुजी से कहा: गुरुजी प्रभु कह रहे हैं कि आप सरल नहीं हैं, इसलिए आप नहीं देखेंगे। गुरुजी रोने लगे और कहा: "मुझे सब कुछ मिल गया लेकिन मैं इसे आसानी से प्राप्त नहीं कर सका, जबकि भगवान शांति के साथ अकेले हैं।" यह सुनकर भगवान राम प्रकट हुए और गुरुजी को भी दर्शन दिए।

मैं" स्वाभिमान या अभिमान

[भगवद्गीता के कर्म को समझने से पहले "मैं" को समझना अति आवश्यक है]

इस जीवन में आत्मा रुपी पंछी एक बड़े से पिंजरे में कैद है। उसे 'मैं' ने कैद कर रखा है। ऐसी कोई हवा नहीं चल रही है कि पछी पिंजरा समेत उड़ान भर कर मुक्ति का आनन्द उठा ले। पिंजरे को तोड़ने के लिए 'मैं' की दीवार को काटना होगा। 'मैं' देखता है, 'मैं' ही सुनता है, 'मैं' ही महसूस करता है। यहाँ हालत यह है कि 'मैं' ही 'मैं' हूँ। दूसरा कोई नहीं है।

संसार के चक्र को एक व्यवस्थित विधान के साथ परमात्मा चला रहे हैं। परमात्मा का यह व्यवस्थित धारणीय विधान ही धर्म है। परमात्मा ही है, जो संसार के चक्र को सुव्यवस्थित ढंग से चलाकर उसे नित्य गतिमान रखते हुए संतुलित करते जाते हैं।

हमें यह समझ लेना चाहिए कि जो लोक-परलोक में शुद्ध और विकार रहित हो वही धर्म है। धर्म के उन्नत होने पर हिंसा खत्म होती है और अहिंसा मजबूत होती है। धर्म ही सभी जीवों का संरक्षण करता है। यह जीव ही है, जो धर्म को धारण करता है। इसी धर्म के कारण जीव का वैभव बढ़ता है। धर्म से ही मैत्रीभाव, क्षमा, दया, पवित्रता, विद्या, बुद्धि और बल के साथ सत्य की प्राप्ति होती है। जो धर्म को धारण करेगा, वह शरीर, मन और वचन से पवित्र रहेगा। जो धर्म के विपरीत हो, वह अधर्म कहा जाएगा। आत्मनिवेदन के भाव में जब इन्द्रियां वश में रहती है, तो हिंसा, झूठ, कपट, छल, चोरी और अपवित्रता तथा सभी भोगों के प्रति स्वच्छन्दता समाप्त हो जाती है। साधु पुरुषों और जीवों की रक्षा धर्म करता है। इसे हम ऐसे भी समझ सकते है कि धर्म रुपी शरीर जो भगवान का शरीर है, उनकी रक्षा करता है। अधर्म होने पर वही धर्म रुप से शरीर धारण कर परमात्मा दुष्टों का संहार करते है। भगवान अधर्म का शमन करके धर्म की स्थापना करते है। संसार का स्वरुप परिवर्तनशील है। धर्म और अधर्म दोनों ही परमात्मा की निगाह में रहते हैं। दोनों में से उन्हें अपने स्वभाव का स्वरुप धर्म ही प्रिय है।

धर्म की भूमिका केवल आध्यात्मिक उन्नयन के लिए नहीं है, बल्कि सामाजिक उन्नयन में भी धर्म का अत्यधिक महत्व है। अशान्ति पैदा करने वाले उपादान आज पूरे विश्व में सर्वत्र उपस्थित है। इसका कारण तृष्णा, प्रबल मिथ्या भोगेच्छा, अहंकार, द्वेष, ईर्ष्या, लोभ और राग है। लंबे समय से इन विसंगतियों को दूर करने में समाज जब चूकता है, तब अधर्म अपनी जड़े मजबूत करने लगता है। बद्धात्माओं की इस भौतिक जगत में भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व प्राप्त करने की इच्छा बहुत गहरी होती है। प्रत्येक मनुष्य सम्पत्ति एकत्रित करना चाहता है। वह अपनी अधिकतम सीमा तक सुख भोग लेना चाहता है। मानव की जगत में हर प्रकार से सुखी होने की इच्छा प्रबल होती है। ये इच्छाएं ही भौतिक बंधन का कारण हैं। सभी प्रकार की भौतिक इच्छाओं को निष्फल करने का एकमात्र साधन धर्म को धारण कर भगवान की भक्ति करना है। इसीलिए ज्ञानी और संत जन कहते है कि सदाचार का पालन करते हुए ईश्वर की भक्ति और असहायों की मदद कर उनकी सेवा में मनुष्य को सदा तल्लीन रहना चाहिए।

दरअसल, हमें जब तक यह अहसास नहीं हो जाता है कि ईश्वर ही सब कुछ कर रहा है। वह यन्त्री हैं और हम यन्त्र मात्र हैं। सभी को अपना मानकर प्रेम करना और किसी पर भी अपना अधिकार न मानना ही जीवन मुक्ति का मार्ग प्रशस्त करता है। इन्हीं कारणों से हम धर्म संरक्षण को अपने जीवन से जोड़कर देखते है। इस जीवन में आत्मा रुपी पछी एक बड़े से पिंजरे में कैद है। उसे 'मैं' ने कैद कर रखा है। ऐसी कोई हवा नहीं चल रही है कि पछी पिंजरा समेत उड़ान भर कर मुक्ति का आनन्द उठा ले। पिंजरे को तोड़ने के लिए 'मैं' की दीवार को काटना होगा। 'मैं' देखता है, 'मैं' ही सुनता है, 'मैं' ही महसूस करता है। यहाँ हालत यह है कि 'मैं' ही 'मैं' हूं। दूसरा कोई नहीं है। यह मेरा मकान है, यह मेरा पुत्र है, यह धन मेरा है। यह सब पिंजरे की दीवार को मोटा कर कैद खाने को चमकाते रहते है।

लेकिन जब यह आभास होने लगे कि यह 'मैं' मेरे में है, वह नित्य शाश्वत और ज्ञान स्वरुप है तो समझ लेना चाहिए कि पछी पिंजरे समेत उड़ान भर रहा है। हम धर्मशालाओं में धार्मिक आचरण करते हुए नैतिकता का पालन करते हुए कुछ समय के लिए ठहरते है, फिर उसे छोड़कर चल देते है।

धर्मशाला को लेकर यह भाव नहीं आता है कि यह धर्मशाला मेरा है। इस संसार में विचरण करने के लिए परमात्मा से अलग हुआ यह शरीर धर्मशाला है, जिसमें आत्मा रुपी पंछी कुछ समय के लिए ठहरता है, फिर नैतिकता के साथ ईमानदारी पूर्वक अपने कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए धर्मशाला रुपी शरीर को छोड़कर चल देता है। यहाँ व्यर्थ का मोह, ममता, लगाव और रिश्तों का लोभ धर्मशाला को कैदखाने में तब्दील कर देता है। इसीलिए इसमें रह रहा आत्मा रुपी पछी इस कैद से आज़ाद नहीं होना चाहता है। कोलाहल सभी प्रकार के सृजन में बाधा उत्पन्न करता है। जीवन में जब भी दूसरा कोई पदार्पण करता है तो खुशी उत्पन्न होती है। जब कोई जाता है तो विक्षोभ।

स्वर-लालित्य, विद्या-कला और प्रेम की उत्कट अभिव्यक्ति इसी आने और जाने में समाहित रहता है। जीवन और कर्म, भक्ति और शक्ति, सर्जन और विसर्जन का सुंदर संयोग जीवन की संरक्षित दृष्टि को विशिष्ट बनाती है। इस धर्म संरक्षण में स्नेह, सौंदर्य, स्फूर्ति, समन्वय और स्पर्श की सुमधुर सृष्टि है।

माँ शब्द में निहित संपूर्ण सृष्टि

वैसे माँ को कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसके लिए कोई ख़ास दिन बनाया गया है कि नहीं। उसे न तोहफों की लालसा होती है नाहीं उपहारों की ख्वाहिश। मिल जाएं तो ठीक, ना मिलें तो और भी ठीक। भगवान से भले ही वह नाखुश हो जाए पर अपने बच्चों के लिए उसके मुख पर सदा आशीष ही रहती है। इसीलिए ऊपर वाले से कुछ मांगना हो तो सदा हमें अपनी माँ की सलामती मांगनी चाहिए, हमारे लिए तो माँ हर वक़्त दुआ मांगती ही रहती है।

माँ एक शब्द नहीं पूरी दुनिया है, जो सिर्फ देना जानती है, लेना नहीं ! उसकी ममता का, निस्वार्थ प्रेम कोई ओर-छोर नहीं होता। सागर से गहरे, धरती से सहनशील और आकाश से भी विशाल उसके स्नेहसिक्त आँचल में तो तीनों लोक समाए रहते हैं। मनुष्य को प्रकृति प्रदत्त यह सबसे बड़ी नेमत है, जिसका कोई सिला नहीं ! माँ इस धरती पर ईश्वर का प्रत्यक्ष रूप है। जिस घर में माँ खुश रहती है, वहां खुशियों का खजाना कभी खाली नहीं होता। कोई कष्ट, कोई व्याधि, कोई मुसीबत नहीं व्यापति ! अपने बच्चों को खुश देख खुश रह लेने वाली माँ अपनी ख़ुशी के एवज में भी बच्चों की ख़ुशी ही मांगती है।

जिस माँ के बिना इस दुनिया की कल्पना नहीं की जा सकती; उसी के लिए हमने एक दिन निर्धारित कर दिया। माँ या उसका ममत्व कोई चीज या वस्तु नहीं है कि उसके संरक्षण की जरुरत हो ! नाहीं वह कोई त्यौहार या पर्व है कि चलो एक दिन मना लेते हैं ! अरे ! जब भगवान के लिए कोई दिन निर्धारित नहीं है; तो फिर माँ के लिए क्यों ? भगवान भी माँ से बड़ा नहीं होता ! वह तो खुद माँ के चरणों में पड़ा रह खुद को धन्य मानता है।

वैसे माँ को कोई फर्क नहीं पड़ता कि उसके लिए कोई ख़ास दिन बनाया गया है कि नहीं। उसे न तोहफों की लालसा होती है नाहीं उपहारों की ख्वाहिश। मिल जाएं तो ठीक, ना मिलें तो और भी ठीक। वह तो निस्वार्थ रह बिना किसी चाहत के अपना प्यार उड़ेलती रहेगी। ख़ुशी में सबके साथ खुश

और दुःख में आगे बढ़, ढाढस दे आंसू पोछंती रहेगी। भगवान से भले ही वह नाखुश हो जाए पर अपने बच्चों के लिए उसके मुख पर सदा आशीष ही रहती है। इसीलिए ऊपर वाले से कुछ मांगना हो तो सदा हमें अपनी माँ की खुशहाली मांगनी चाहिए, हमारे लिए तो माँ हर वक़्त दुआ मांगती ही रहती है।

ज़िन्दगी धूप छाँव सी

कई बार जीवन में बहुत कुछ अनापेक्षित ही मिल या घट जाता हैं जिसकी हम कभी कल्पना भी नही किये होते हैं पर शायद इसी का नाम जिन्दगी हैं धूप-छावं सी जिस पर हम चाहकर भी प्रतिबंध नही लगा सकते उसे घटित होने से नही रोक सकते हैं।

कई बार ये परिवर्तन सुखदायी और कई बार अत्यंत पीड़ा दायक और कष्टकारी होता हैं असहनीय हो जाता हैं जिसे सह पाना नामुमकिन सा लगने लगता हैं जीने की आकांक्षा ही मिट जाती हैं हम स्वयं में ही हम टूट से जाते हैं वक्त वही ठहर जाता है।

यूँ लगता हैं अब सबकुछ खत्म हो गया कुछ नही बचा क्यूंकि मन का टूटना, दुनिया की हर चीज़ के टूटने से ज्यादा दु:खदायी होता है और विश्वास का टूटना, मनुष्यता का विनष्ट होना है हम सोंचते है हमे दु:ख हमारी गलतियों की वजह से मिला हमने गलत राह चुन ली पर यथार्थ बिल्कुल विपरीत ही होता है हम रास्ते नही चुनते, रास्ते चुनते हैं हमें।

परिस्थितियां कुछ यूँ बन जाती है कि हमें आभास भी नही होता ना ही एहसास की क्या सही और क्या गलत कठपुतली की तरह नियति के हाथो नाचते रहते है हर एहसासों को भोगने के लिए नियति बार बार हमे ले जाती है असह्य पीड़ा अपरिमित प्रतीक्षाओं की ओर..

शायद, अपने ही कर्मों के अनुबंध से बंधे होते हैं रास्ते खुशियों के और गमों के संघर्षों और पीड़ाओं असहनीय यातनाओं के इसीलिये स्वयं को दोषी मानकर जो हो रहा हैं स्वीकार कर ठहरे नही अपितु बढ़ते रहे अपनी सोंच को सकारात्मक रखे सब कुछ कभी नष्ट नही होता कुछ न कुछ अवश्य रह जाता है जैसे- लकड़ी जल जाने के बाद राख बची रह जाती है।

वैसे ही मन टूटने के बाद भी कही न कही इच्छा शक्ति शेष रह जाती है जिसकी वजह से आप खुद को टूटा महसूस कर रहे थे उसी को जीने की वजह बना लीजिये जीने के लिए वही पर्याप्त हैं बस अपना दृष्टिकोण बदलने की

जरूरत हैं। कहना बस इतना ही हैं कि जीवन बहुत मूल्यवान है इसे यूँ ही नष्ट नही करना चाहिए जहां भी लगे अंत हैं वही से शुरू करें।

रास्ते चाहे जितने भी अनजाने क्यूँ न हो खत्म तो कही न कही होगें ही। अंजानी डगर की भी मंजिल होती है हताश या निराश होकर लौटने की बजाय उसी पर निरन्तर आगे बढ़ते रहे एक दिन आप स्वयं देखेंगें कि आप ने वो पा लिया जो असम्भव था।

रोने की कोशिश

कभी जबरदस्ती रोने की कोशिश की है? मैंने की है। एक बार नहीं, बहुत बार। जब ग़म हृदय पर अपनी काया का विस्तार करता है और मैं उससे बाहर निकलने की हज़ार कोशिशों के बाद भी असफल रहता हूँ। सब कुछ गर्म आँसुओं के साथ बाहर निकाल देना चाहता हूँ। पर हो नहीं पाता..

कभी सोचकर परेशान होते हैं? अनबन, हज़ारों ख़्वाहिशों, ख़्यालों में से किस ख़्याल के कारण अचानक आँसू निकल आए? मैं होता हूँ। फिर जब वो ख़्याल दोहराता हूँ तो हज़ारों और ख़्याल आ जाते हैं और सब में सुख-दुख की परिसीमा नापते-तोलते आँसू सूख जाते हैं..

कभी महसूस किया है? दस बाए बारह के कमरे में खिड़की से लगे बेड पर बैठकर उसी खिड़की की लोहे की ग्रिल की ठंड को महसूस, वो भी उत्ताप बढ़ती साँसों के साथ? मैंने किया है। आँखें ज़मीं की तरफ़ झुक जाती हैं। किसी अजनबी चीज़ पर टिक जाती हैं, मेरी नज़रों से बेख़बर..

यह जो कहते हैं न कि ज़िंदगी में उतार-चढ़ाव होता रहता है, उसमें ज़्यादा दर्द उतार से चढ़ाव और चढ़ाव से उतार होने की ट्रांजीशन स्टेट में होता है। जैसे कंपनी में नाइट और डे शिफ्ट। तीन महीने नाइट शिफ्ट में जैसे-तैसे एडजस्ट हुए ही होंगे कि शिफ्ट डे हो जाता है। सुख और दुख वैसे ही होता है। किसी एक के साथ हमारी आदत बनते ही वो बदल जाता है। बस उस स्थिति में अगर हम ज़िंदगी जीना सीख जाएँ तो उससे बड़ा सुख और कुछ नहीं होगा.!!

संस्कृति समाज की जननी

संस्कृति समाज की जननी है ! संस्कृति की कोख से जन्म लेकर समाज संसार में अपना आकार ग्रहण करता है ! माँ के लहु के कोख से जन्म लेने के साथ व्यक्ति समाज के भावनात्मक कोख से भी जन्म लेता है ! लहु की कोख होना प्राकृतिक है यहाँ तन आकार लेता है , भावना का कोख होना निज मातृत्व है यहाँ मन आकार लेता है ! तन हमेशा मन के अनुसार ही चलता है ! यशोदा माँ की भावना भगवान श्रीकृष्ण का मन है और देवकी माँ का लहु श्रीकृष्ण का तन है ! जिसकी जननी लहु नहीं केवल भावना की कोख है और भावना की कोख केवल शारीरिक स्त्रियों के आधीन नहीं होती ! वर्षों तक अनेकों मातृत्व भाव से सिंचित आज स्वयं मातृत्व भाव का संवाहक बन चुका है ! जो बीज अंकुरित होकर वृक्ष बनता है , उसके फल में फिर से बीज उत्पन्न होते हैं , यही प्रकृति का शाश्वत सिद्धांत है।

पिंजरा

जब एक नन्ही चिड़िया तिनका-तिनका जोड़कर अपना घोंसला बनाती है बड़े अरमान और विश्वास से उसे सजाती है, और सोचती है इसमे वो और उसके बच्चे सुरक्षित रहेंगे। खुशी मे वो भूल जाती है घोंसला तो उसका है जिसे उसने कड़ी मेहनत और लगन से बनाया है पर वो पेड़ या वो घर उसका नही जहां उसने अपना घोंसला बनाया है।

उसका मालिक तो कोई और है फिर वो घोंसला उसका कैसे हुआ उस इंसान का जब दिल करेगा उसे बेघर कर देगा, तबाह कर देगा उसके अरमानों का आशियाना, बिखेर देगा उसके सपनों के घोंसले को एक मगरूर हवा का झोंका तोड़ देगा उस डाली को जिस पर जहाँ बसा रखा उस नन्हीं चिड़िया ने।

उम्मीद से भरी उसकी आंखे किससे बयां करे अपने दर्द को वो जगह कहाँ जहाँ वो निश्चिंत होकर अपना घोंसला बना सके जिसे वो अपना कह सके जिस पर सिर्फ उसका हक हो किसी और का नही जहाँ वो निडर होकर रह सके कोई न तोड़ सके उसके अरमानो का घोंसला।

हममे से कई लोग अपनी खुशी के लिए उसे पाल लेते है घर मे रख लेते है पर घर नही देते, देते है तो पिंजरा जहाँ वो सांसे तो ले पर चहक न सके, परो के होते हुए भी उड़ न सके पर कटे परिंदे की तरह तड़पती रहे।

अगर हमारे दिलो मे इतनी जगह नही की उसे अपने घर मे घोंसला बनाने दे तो कृपया उसे कैद भी न करे उड़ जाने दो जीने दो उसे क्यूँ अपनी खुशियों के लिए खरीद लेते हो उसके जीवन को लिख देते हो अपना नाम उसकी जिन्दगी पर मोहताज बना देते हो उसकी हर सांस को छीन लेते हो उसकी सारी खुशियां।

क्या कभी लौटा सकोगे उसके जीवन को ??

जिसको कैद कर लेते हो अपने स्वार्थ के लिए कैद मे होकर भी वो तुम्हे मुस्कुराहटे देती है उसकी तड़प पर तुम मुस्कुरातें हो जब वो आजाद होने के

लिए तड़पती है तो तुम खुश होते हो कहते हो पाले हो मगर वास्तव मे तो कैद कर रखा है।

कैद मे कोई खुश नही रह सकता एक आजाद परिंदा चहकता है गुनगुनाता है जिसे देख कर सब मुस्कुराते है क्या वो भी तुम्हे देखकर खुश रह पाता है सहम कर एक कोने मे कही बैठ तो नही जाता है।

मत कैद करो उसे सिर्फ वो कैद नही होता उसके साथ उसकी सांसे उसका चहकना, उछलना और उसकी वो स्वछन्द उड़ान सब कैद हो जाता है बिछड़ जाते है उसके नन्हें बच्चें या उन बच्चों से उनकी माँ उजड़ जाता है उनके अरमानों का घोंसला तड़प कर रह जाते है कैद हो कर कुछ शेष नही रह जाता है। रह जाता है उनके जीवन मे तो बस वो “पिंजरा” जिसे तुम देते हो अपने स्वार्थ के लिए !!

एक भावनात्मक रिश्ता : सूखा पेड़ और मैं

मुझे वो पेड़ उस पार्क में सबसे खूबसूरत चीजो में से एक लगता है। बहुत सारी टहनियां निकली हुई है जिसे पार्क वालो ने एक अच्छा आकार दे दिया है। पतों ने कब का साथ छोड़ दिया है उस बेचारे का। देखने में वो बिल्कुल उम्र के आखिरी पड़ाव में लगता है। नीचे से बिल्कुल फैला हुआ और टूट टूट कर झड़ते उसके अपने ही अंग के मलबे बिखरे पड़े से है। इतने टूटने के बाद भी उसका अभिमान अभी भी जीवित जान पड़ता है। आस पास के हरे भरे पेड़ और उनके पास लगने वाले लोगो और चिड़ियों के हुजूम को देख कर भी ये कभी अपनी ब्यथा पर नहीं रोता है। तभी तो बिना रख रखाव और बिना महफ़िलो के भी अकेले तन कर खड़ा हुआ है। हाँ नीचे जमीन पर कुछ हरे भरे घास की संगत पाकर और उन्हें देखकर, ये भी कभी कभी अपनी बालपन से हो आता है। बगल में एक लाइट लगी हुई है जो अँधेरा होते ही इसे अपने बाहों में जकड लेती है और इसके खूबसूरती को एक नया आयाम देती है। ठीक जमीन से जहाँ इसका मिलन हुआ है वहाँ इसके चारों तरफ की गोलाकार जमीन पर मिट्टी का बसेरा है जो आँधियों से संघर्ष कर कही दूर चली गयी है और जमीन भी बिलकुल चिकनी शांत जान पड़ती है जिसमे कोई हलचल नहीं। यानी की पास की जमीन भी उस सूखे पेड़ के पडोसी होने का पूरा फर्ज अदा करती है। हाँ एक गिलहरी आती है उस जमीन से होते हुए उस सूखे पेड़ से मुलाकात करने और थोड़ी शरारत कर चली जाती है। बगल के घास को मिली हुई पानी का कुछ कतरा उस जमीन से होकर सूखे पेड़ से मिलना चाहता है पर जमीन कमबख्त बिच की दिवार जो उस पानी को बार बार सोख लेती है और पानी के उस कतरा और उस तन्हा पेड़ का मिलन तड़प बन कर दम घोट देता है। अरे ये क्या एक पतंग कब से इस पेड़ के टहनियों पर झूल रहा है। उसके भी चिथड़े हो गए है वो भी किसी काम का न रहा तभी तो उसके खोज में कोई टोली नहीं आई। हो सकता उसपर भी इस पेड़ के ही संगत का असर हो गया हो। या फिर पेड़ के तन्हाई के किस्से सुनकर

वो पतंग बिखर गया हो और खुद को उसके हवाले सौप दिया हो। हवा चल तो रही है पर उस हवा के चलने का एहसास इस पेड़ के नीचे भला कहा होगा। बारिश आती है तो उनके बून्द को भी थोड़े देर के लिए कैद नहीं कर पाता। चाहता है बूंदों को समेटना पर उसके सूखे टहनियों से फिसल जाती है हर बार। कभी कोई इश्क़ करने वाले जोड़े भी नहीं आते क्योंकि छाँव भी नहीं देता न उन्हें। हो सकता है इश्क़ को समझ गया हो, इस वजह से ऐसे जोड़ो को पनाह नहीं देता हो। बगल से ही करीब 10 फ़ीट दूर से एक पगडण्डी गुजरती है जिसपर लोग अक्सर टहलते रहते है। हर कोई उस पगडण्डी से तेजी से निकल जाता है। कभी कभी कोई देख भी ले पर किसी को इस सूखे पेड़ से हमदर्दी नहीं होती और कोई भी अपना थोड़ा समय भी उस पेड़ के नाम नहीं करना चाहता।

मैं अक्सर हर दिन उसी पेड़ के नीचे बैठ जाता हूँ। पेड़ के नीचे ही चार पत्थरो के बेंच लगे हुए है। जो अक्सर खाली रहते है। शाम को मेरे बैठने से ही शायद उसकी तन्हाइयो में खलल पड़ता है। हाँ कभी कभी कुछ दादाजी लोग बैठ कर माहौल को गुलजार कर देते है। अपने तोतले आवाजो से तो ताश के पतों के साजो से। मैं भी अक्सर बैठ कर घूरता रहता हूं उसे। शाम ढलने पर कुछ पंछी के जोड़े उस सूखे पेड़ से दिल लगाने की गुस्ताखी कर लेते है। पर वो भी कब तक, दूर दिख रही ढेर सारे हरे पेड़ और उनके संगीत उन पंछी जोड़ो को अपने तरफ आकर्षित कर लेते है। और वो परदेसी दो पलो में ही उड़ जाते है। सुखा पेड़ तब भी कुछ नहीं बोलता। हाँ मेरा घूरना शायद उसे अजीब लगता हो। तभी तो कभी कभी मुझसे सवाल कर बैठता है कि मेरे पास अच्छा वक़्त नही बिताने को जो उसके तन्हाईयो को बाँट रहा हूँ। मैं कुछ नहीं बोल पाता । वो मुझे घूरता है मैं उसे। वक़्त कमबख्त वक़्त शायद उसे तो रुकना आता ही नहीं, तभी तो मुझपर बार बार चिल्ला रहा है। फिर क्या सारी भावनाओ को समेट अपने आशियाने की तरफ चल ही देते है। पर एक तार और है जो मुझे रोक रहा है जाने से जो मेरे और उस पेड़ के भावनाओ का तार है। पर नियति को कौन टाल सकता है। मैं दिल पर पत्थर रख चल ही देता हूं, खुद को समझाते हुए की कल फिर से रूबरू होना ही है। मैं उस पेड़ से पार्क के दरवाजे तक सिर्फ पेड़ को देखते रहा और वो मुझे। जाना मैं भी नहीं चाहता था

और पेड़ भी मुझे नहीं जाने देना चाहता था पर जुबान पर दोनों के ताले लगे थे। और इसी ख़ामोशी से हम दोनों एक दूसरे से दूर होते गए। दुरी बढ़ती गयी, सन्नाटा बढ़ते रहा, तस्वीर धुंधली होती गयी और जुदाई का बोझ। काश वो पेड़ मेरा आशियाना होता या मेरा कमरा वो पार्क।

एक अन्जान, बेमेल, सच्चा, पवित्र और बहुत गहरा रिश्ता है ये। शायद हमारे आज के समाज में हमारे बुजुर्गों के हालात भी बिल्कुल उस सूखे पेड़ की तरह ही हो गए है, जिनके आखिरी पड़ाव में कोई साथ नहीं होता।

आपका बुरा वक़्त

जिन्दगी में बहुत सारी चीज़ें ऐसी होती हैं, जो आपके अनुसार नहीं चलती। आप दिल से पूरे मन से चाहते हो, कोशिश करते हो की वो चीज़ ठीक वैसे ही हो जैसे आप चाहते हो। लेकिन शायद यही तो जिन्दगी है कि कुछ चीज़े बिल्कुल आपके खिलाफ और आपके इच्छा के विपरीत होती ही हैं। चाहे आप जो भी हो, चाहे आप जो भी कर लो। आप उस नाजुक पल में बस ठगा सा और हारा हुआ महसूस कर सकते हो।

आप अपने सूकून के लिए रोते हो चीखते हो, तन्हा हो जाते हो, किस्मत को कोसते हो, अपने आप को कोसते हो, डरते हो, दुनियां से दूर भागते हो, गुस्साते हो, घबराते हो, और उस पल को जाते हुए निर्मम आँखों से देखते रहते हो। कोई इसे संघर्ष कहता है, कोई किस्मत, तो कोई आपके कर्मों का फल!

पर वास्तविकता में वो चीज़ जो आपके मन के अनुसार न हो रही हो उसका मायने आपके लिए क्या है यह सिर्फ और सिर्फ आप जानते हो। वो पल या वो फैसला आपको कितना तोड़ता है और आप उस पल कितना टूटते हो इसका असली मापदंड सिर्फ आप कर सकते हो। लेकिन उस हालात से सीखना ,उस जख्म को भरना, उस पल में सम्भलना, टूटे हुए अपने आप को जोड़ना ये सारी चीज़ें सिर्फ आपकी काबिलियत पर निर्भर करता है। उस हालात का अनुभव आपको बिखेरता तो है, पर थोड़ा बहुत निखारता भी है। बस आपमें संयम, साहस और एक इन्सान जिन्दा रहे।

रोओ ,चिल्लाओ, टूटो, बिखरो लेकिन इसके साथ निखरो भी। मुश्किल होगा पर असंभव नहीं।

अध्यात्म मंजिल नहीं बल्कि यात्रा है

अध्यात्म बड़ा सहज है। फिर भी लोग मन में कई भ्रांतियां पाल लेते हैं कि कहीं आध्यात्मिक होने पर घर छोड़कर संन्यास लेना पड़ जाए, कहीं बैरागी न हो जाऊं, कहीं गृहस्थ धर्म न छोड़ दूं। अध्यात्म तो हमें जीवन जीना सिखाता है। जैसे कोई भी मशीन खरीदने पर उसके साथ एक मैन्युअल बुक आती है, ऐसे ही तन-मन को चलाने के लिए मैन्युअल बुक गीता आदि आध्यात्मिक शास्त्र और गुरु होते हैं जो हमें शरीर, इंद्रियों, मन, बुद्धि अहंकार का प्रयोग करना सिखाते हैं। घर-गृहस्थी में तालमेल बिठाना सिखाते हैं, समाज में आदर्श के रूप में रहना सिखाते हैं, मन को सुलझाना सिखाते हैं। अत: धर्म कोई भी हो, लेकिन सभी को आध्यात्मिक अवश्य होना चाहिए।

अब प्रश्न उठता है कि अध्यात्म का लक्ष्य क्या है? यह समझो जैसे आप कभी पहाड़ियों पर घूमने जाते हैं। पहाड़ियों पर मंजिल भी वैसी ही होती है, जैसा रास्ता। फिर आप रास्ते के साइड सीन का आनंद लेते हैं, हर सीन को देखकर प्रसन्न होते हैं, उसका मजा लेते हैं। फिर अंत में जहां पहुंचते हैं, वहां भी वही दृश्य पाते हैं। अत: रास्ते का ही मजा है। लॉन्ग ड्राइव में आप रास्ते का ही आनंद लेते हैं। अध्यात्म की यात्रा भी ऐसी ही होती है जिसमें रास्ते का ही सुख है।

अध्यात्म कहता है कि बीतते हुए हर पल का आनंद लो, उस पल में रहो, हर पल को खुशी के साथ जियो। हर परिस्थिति, सुख-दुख, मान-सम्मान, लाभ-हानि से गुजरते हुए अपने में मस्त रहो। द्वंद्वों में सम्भाव में रहो क्योंकि मुक्ति मरने के बाद नहीं, जीते जी की अवस्था है। जब हम अपने स्वरूप के साथ जुड़कर हर पल को जीते हैं, तब वह जीते जी मुक्त भाव में ही बना रहता है। अध्यात्म कोई मंजिल नहीं, बल्कि यात्रा है। इसमें जीवन भर चलते रहना है। यह यात्रा हमें वर्तमान में रहना और अभी में आनंद लेना सिखाती है।

यदि 'अभी में' रहकर उस आनंद भाव में नहीं आए तो कभी हम आनंद में नहीं आ पाएंगे और जब भी आएंगे, उस समय भी अभी ही होगा। वैसे हम

पूरा जीवन अभी-अभी की शृंखला में जीते हैं। जन्म से लेकर मृत्यु तक अभी-अभी-अभी में ही जीते हैं। फिर भी मन भूतकाल या भविष्य में ही बना रहता है और भूतकाल का दुख या भविष्य का डर या लालच में ही मन घूमता रहता है लेकिन जब हम अभी में आते हैं, उसी समय से हमारे जीवन में अध्यात्म का प्रारम्भ होता है और फिर हम इस अभी-अभी की कड़ी को पकड़ कर रखते हैं। इसलिए मुक्ति अभी में है, भविष्य में नहीं। अत: यदि हम जीवन भर अभी को पकड़ कर रखें फिर हम जहां हैं जैसे हैं, वहीं आध्यात्मिक हो सकते हैं।

निद्रा से स्वप्न तक की यात्रा

निद्रा और स्वप्न का ज्ञान बड़ा रोचक है। हम रोज़ाना सोते हैं, पर हम कभी अपनी निद्रा को नहीं समझ पाते, उसे जान नहीं पाते, यह बड़ी विडंबना की बात है। यह ऐसे ही है जैसे किसी व्यक्ति के पास लाखों करोड़ों रुपये हों पर उसे उन्हें खर्च न करना आता हो और जो बड़ी दरिद्रता में अपना जीवन व्यतीत कर दे। अथवा जैसे किसी व्यक्ति के सामने छप्पन भोग हो पर उसे यह समझ ही न हो की वह भोजन है और उसे कैसे खाते हैं, और वह भूख से मरा जा रहा हो।

ऐसा ही हमारे जीवन के साथ है, हम सोते हैं पर हम निद्रा को नहीं जान पाते हैं। हम स्वप्न देखते हैं परन्तु स्वप्न क्या है, इसकी हमें कोई समझ नहीं होती है। यदि हम एक भी चीज को पकड़ कर बैठेंगे तो हम सो नहीं सकते। हमारी सभी पहचान, पुरुष-महिला, अमीरी-ग़रीबी, बुद्धिमानी-बेवकूफी, सब कुछ नींद में छूट जाती है। गहरी नींद में अमीर-गरीब, महिला-पुरुष का कोई अंतर नहीं रहता, हम अपनी सभी पहचान छोड़ देते हैं। हमारी सभी पसंद-नापसंद भी निद्रा में छूट जाती है। हम नींद में किसी को साथ भी नहीं ले जा सकते चाहे कोई हमारा कितना भी प्रिय क्यों न हो।

निद्रा में तुम अपनी सभी पहचान, राग-द्वेष, पसंद-नापसंद से परे होते हो, तुम्हें उन सभी को छोड़ना ही पड़ता है। जैसे तुम सब कुछ छोड़कर निद्रा में कुछ भी नहीं करते, केवल विश्राम करते हो, वैसे ही ध्यान में भी तुम सब क्रिया कलाप छोड़कर, पूर्ण विश्राम करते हो।

ईश्वर के लिए और अपने स्वयं के भले के लिए हम ध्यान में कुछ भी नहीं करते हैं। ध्यान में भी निद्रा के जैसे ही सब छोड़ देने से समाधि घटती है। अज्ञानी लोग अपने स्वप्न को यथार्थ में बदलना चाहते हैं परन्तु आत्मज्ञानी इस संसार की वास्तविकता को भी स्वप्न जैसे ही जानते हैं। स्वप्नों की विवेचना(विचार-विमर्श) करना बहुत बड़ा अज्ञान है, इस जीते जागते संसार का स्वप्न मात्र होने का एहसास ही आत्मज्ञान है।

स्वप्न का ज्ञान और सत्य के प्रति जागरूकता

तुम्हारा मन अधिकतर सपने में ही तो रहता है, या तो गहरी निद्रा में सो जाता है या स्वप्नावस्था में रहता है। कभी दिन में सपने देखता है कभी रात में, हवा में महल बनाता और बिखेरता रहता है, यही सिलसिला अधिकतर चलता रहता है। पर जिस भी क्षण तुम यह जान लेते हो कि अरे! यह तो सपना है। उसी क्षण एक सजगता आ जाती है, उसी क्षण ही तुम पूरी तरह से जीवंत होते हो, जागे हुए होते हो। बाकी समय निद्रा जैसी अवस्था बनी रहती है परंतु जैसे ही यह जाग्रति आ जाए कि अरे मैं तो गहरी नींद में था, तुम जाग उठते हो।

पतंजलि इस सूत्र में बड़ी सुंदरता से कहते हैं कि निद्रा का ज्ञान होते ही तुम जाग जाते हो। जब भी कोई सो रहा होता है, उसे यह पता ही नहीं होता कि वह सो रहा है, जिस क्षण में वह जानते हैं कि यह निद्रा थी, वो सो रहे थे, उसी क्षण वह जाग चुके होते हैं। जैसे कोई व्यक्ति दिन में सपने देखते हो, तब उन्हें पता नहीं होता की वह दिन में सपने देखते हैं। जैसे ही उन्हें यह पता चलता है की अरे मैं तो सपने देख रहा था, तुरंत उसी क्षण में वो जाग चुके होते है।

सभी भाषाओं की जननी है देवभाषा संस्कृत

"संस्कृत की उत्पत्ति और शुद्धता संस्कृत भाषा को देव – वाणी देव देवता वाणी भाषा कहा जाता है क्योंकि ऐसा माना जाता है कि इसे ब्रह्मा द्वारा उत्पन्न किया गया था, जिन्होंने इसे आकाशीय निवास में रहने वाले ऋषियों (ऋषियों) को दिया था, जिन्होंने तब इसका संचार किया था "

हिंदू धर्म में संस्कृत को प्राचीन भाषा के रूप में माना जाता है, जहां इसका उपयोग हिंदू आकाशीय देवताओं और फिर भारत-आर्यों द्वारा संचार और संवाद के साधन के रूप में किया जाता था। जैन धर्म, बौद्ध धर्म और सिख धर्म में भी संस्कृत का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। संस्कृत एक ऐसी भाषा है, जो इंडो आर्यन समूह की है और सभी भारतीय भाषाओं की नहीं बल्कि कई की जड़ है।

संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीन भाषा है तथा समस्त भारतीय भाषाओं की जननी है। संस्कृत का शाब्दिक अर्थ है परिपूर्ण भाषा। संस्कृत पूर्णतया वैज्ञानिक तथा सक्षम भाषा है। संस्कृत भाषा के व्याकरण में विश्वभर के भाषा विशेषज्ञों का ध्यानाकर्षण किया है। उसके व्याकरण को देखकर ही अन्य भाषाओं के व्याकरण विकसित हुए हैं। आधुनिक वैज्ञानिकों के अनुसार यह भाषा कम्प्यूटर के उपयोग के लिए सर्वोत्तम भाषा है, लेकिन इस भाषा को वे कभी भी कम्प्यूटर की भाषा नहीं बनने देंगे।

आदिकाल में भाषा नहीं थी, ध्वनि संकेत थे। ध्वनि संकेतों से मानव समझता था कि कोई व्यक्ति क्या कहना चाहता है। फिर चित्रलिपियों का प्रयोग किया जाने लगा। प्रारंभिक मनुष्यों ने भाषा की रचना अपनी विशेष बौद्धिक प्रतिभा के बल पर नहीं की। उन्होंने अपने-अपने ध्वनि संकेतों को चित्र रूप और फिर विशेष आकृति के रूप देना शुरू किया । इस तरह भाषा का क्रमश – विकास हुआ । इसमें किसी भी प्रकार की बौद्धिक और वैज्ञानिक क्षमता का उपयोग नहीं किया गया।

संस्कृत ऐसी भाषा नहीं है जिसकी रचना की गई हो। इस भाषा की खोज की गई है। भारत में पहली बार उन लोगों ने सोचा-समझा और जाना कि मानव के पास अपनी कोई एक लिपियुक्त और मुकम्मल भाषा होना चाहिए जिसके माध्यम से वह संप्रेषण और विचार-विमर्श ही नहीं कर सके बल्कि जिसका कोई वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक आधार भी हो। ये वे लोग थे, जो हिमालय के आसपास रहते थे।

संस्कृत का शाब्दिक अर्थ है जो पूर्ण हो और संस्कृत अपने आप में परिपूर्ण भाषा है। विश्व की सब से प्राचीन भाषा होने के साथ साथ संस्कृत समस्त भारतीय भाषाओं की जननी भी है। संस्कृत पूर्णतया वैज्ञानिक तथा सक्षम भाषा है जिसके व्याकरण में कोई भी त्रुटि नहीं है। संस्कृत भाषा के व्याकरण में विश्व भर के भाषा विशेषज्ञों का ध्यानाकर्षण किया है तथा उन के मतानुसार भी यह भाषा कम्प्युटर के उपयोग के लिये सर्वोत्तम भाषा है। संस्कृत भाषा की लिपि देवनागरी लिपि है। इस भाषा को ऋषि मुनियों ने मन्त्रों की रचना कि लिये चुना क्योंकि इस भाषा के शब्दों का उच्चारण मस्तिष्क में उचित स्पन्दन उत्पन्न करने के लिये अति प्रभावशाली हैं। इसी भाषा में वेद प्रगट हुये, तथा उपनिष्दों, रामायण महाभारत और पुराणों की रचना की गयी।

मानव इतिहास में संस्कृत का साहित्य सब से अधिक समृद्ध और सम्पन्न है। प्रत्येक व्यक्ति, जाति तथा राष्ट की पहचान उस की वाणी से होती है। आज संसार में इंग्लैण्ड जैसे छोटे से देश की पहचान एक साम्राज्य वादी शक्ति की तरह है तो वह अंग्रेजी भाषा की बदौलत है जिसे उधार ली भाषा होने के बावजूद अंग्रेज़ जाति ने राजनैतिक शक्ति का प्रयोग कर के विश्व में अन्तर्राष्ट्रीय भाषा के तौर पर स्थापित कर रखा है।

इसकी तुलना में इच्छा शक्ति और आत्म सम्मान की कमी के कारण संसार की एक तिहाई जनसंख्या होने के बावजूद भी भारतवासी अपनी तथाकथित 'राष्ट्रभाषा' हिन्दी को विश्व में तो दर अपने ही देश दूर में ही स्थापित नहीं कर सके हैं। हमारे पूर्वजों ने तो हमें बहुत कुछ सम्मानजनक विरासत में दिया था परन्तु यह एक शर्मनाक सच्चाई है कि हमारी वर्तमान पीढियाँ पूर्वजों दूारा अर्जित गौरव को सम्भाल पाने में असमर्थ रही हैं। उसी

गौरव की एक उपलब्द्धी संस्कृत भाषा है जिस की आज भारत में ही उपेक्षा की जा रही है।

हम मुफ्त में अपनी पीठ थपथपा सकते हैं कि संस्कृत की गूंज कुछ साल बाद अंतरिक्ष में सुनाई दे सकती है। अमेरिका संस्कृत को 'नासा' की भाषा बनाने की कसरत में जुटा है क्योंकि संस्कृत ऐसी प्राकृतिक भाषा है, जिसमें सूत्र के रूप में कंप्यूटर के जरिए कोई भी संदेश कम से कम शब्दों में भेजा जा सकता है।

हमारे देश में तो इंग्लिश बोलना शान की बात मानी जाती है। इंग्लिश नहीं आने पर लोग आत्मग्लानि का अनुभव करते है और यही कारण है की आज हमारे देश के छोटे से छोटे शहर में भी जगह जगह इंग्लिश स्पीकिंग कोर्स के संस्थान चल रहे हैं।

भारत की सरकार और लोगों को भी अब जागना चाहिए और अंग्रेजी की गुलामी से बाहर निकाल कर अपनी भाषा और संस्कृति पर गर्व करना चाहिए। भारत सरकार को भी0 'संस्कृत' को नर्सरी से ही पाठ्यक्रम में शामिल करके देववाणी को राष्ट्रभाषा का दर्जा दिलाना चाहिए। केवल संस्कृत ही भारत के प्राचीन इतिहास तथा विज्ञान को वर्तमान से जोड़ने में सक्षम है। यदि हम भारत में संस्कृत की अवहेलना करते रहे तो हम अपने समूल को स्वयं ही नष्ट कर देंगे जो सृष्टि के निर्माण काल से वर्तमान तक की अटूट कड़ी है।

यदि आज हमने इस विषय पर ध्यान नहीं दिया तो वो दिन दूर नहीं जब हमे संस्कृत सीखने के लिये विदेशों में जाना पड़ेगा।

सत्कर्म का आचरण

अनासक्त होकर कर्म करने वाला ईश्वरार्थ कर्म करता है। श्रेष्ठ मनुष्य जो-जो कर्म करते है, दूसरे लोग उसका अनुसरण करते है। ईश्वर को कोई भी कर्म नहीं करना पड़ता। क्योंकि उन्हें कोई भी अप्राप्त वस्तु प्राप्त नहीं करनी है। तीनों लोकों में उनका कोई भी कर्म नहीं है। फिर भी, लोक को लोक स्थिति में रखने के लिए परमात्मा कर्म का बर्ताव करते है।

इसे अपने जीवन में उतार लेना जीवन को ईश्वर के लिए अर्पित करना है। जीवन में हम पुण्य की लालसा लेकर दान करते हैं। जबकि दान हमेशा ईश्वर को समर्पित होना चाहिए। दान हमेशा यदि सुपात्र को दिया जाय तो दान ईश्वर तक अवश्य पहुंचता है। दान करने वाले के लिए दान करने के दो ही कारण है। पहला श्रद्धा और दूसरा शक्ति। दान के प्रति श्रद्धा और दान के लिए सामर्थ्य के अभाव में दान नहीं हो सकता है। श्रद्धा से दिया गया दान ही फलदायी होता है। यदि कोई व्यक्ति लालच या दबाव में दान करता है तो उसे उसका पुण्य नहीं मिलता है। ठीक उसी प्रकार शक्ति भी है, शक्ति का अर्थ यहाँ सामर्थ्य से है। सामर्थ्य के अनुसार यानी कुटुंब के भरण-पोषण से जो बचे उसे ही दान में देना चाहिए। अपनी जरुरतों की पूर्ति न हो रही हो और कोई दान करता है, तो ऐसा दान व्यर्थ ही है। शास्त्रों में किसी दबाव या लालच में दान देने को वर्जित किया गया है। इतना ही नहीं उसी धन को दान दिया जा सकता है, जिसे किसी को सताकर न प्राप्त किया गया हो। किसी कामना की इच्छा न रखकर सुपात्र को दिया गया दान धर्मदान कहलाता है। दान लेने वाले व्यक्ति का भी मान रखना चाहिए। उसकी आत्मा का भी मान है। उसको दीन-हीन समझकर व्यवहार में अभिमान लेकर किया गया दान पाप ही है, दरअसल सोच यह है कि दान लेने वाले व्यक्ति ने यदि दान स्वीकार कर लिया तो दान देने वाले को पुण्य की प्राप्ति होती है। दान लेने वाले ने दान स्वीकार कर कृपा ही की है। जो हमारे पर्यावरण, समाज और देश को पुष्ट करने वाला हो, वह दान ख्यातिलब्ध दान कहा जाता है।

यज्ञ द्वारा प्राप्त स्त्री, पशु, पुत्र आदि देवों द्वारा प्राप्त भोगों को परमात्मा को समर्पित न कर अर्थात् उनका ऋण न चुकाकर, जो अपनी ही तृप्ति करता है, वह पाप खाता है। यह देवताओं के स्वत्व का हरण करने वाला है। यज्ञ शिष्ट अन्न का सेवन करने वाले श्रेष्ठ कहे गए हैं। यह कुछ इस तरह है कि उदर परायण लोग केवल अपने लिए ही अन्न पकाते हैं, वे स्वयं पापी हैं और वे पाप ही खाते है। ऐसे में हमें यह तो सोचना ही चाहिए कि पाप काहे को खाना। अधिकार प्राप्त व्यक्ति को कर्म करते रहना चाहिए। क्योंकि कर्म जगत् चक्र की प्रवृत्ति का कारण है। मनु स्मृति में इस संबंध में कहा गया है कि अग्नि में विधिपूर्वक दी हुई आहुति सूर्य में स्थित होती है, सूर्य से वृष्टि होती है, वृष्टि से अन्न उत्पन्न होता है, और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है। क्रिया रुप कर्म वेदरुप ब्रह्म से उत्पन्न होता है। इस प्रकार कर्म की उत्पति का कारण वेद है। वेद रुप ब्रह्म सभी अर्थों को प्रकाशित करने वाला है। इसीलिए यह सर्वगत है। यज्ञ विधि में वेद की प्रधानता होने के कारण यह सर्वगत होता हुआ सदा यज्ञ में ही स्थित होता है। आत्मा को जान लेने के बाद सारा मिथ्या ज्ञान नष्ट हो जाता है। अब केवल आत्मा से ही प्रेम रह जाता है। जो आत्मा से ही तृप्त होने वाला है। उसकी तृप्ति अन्न रसादि से नहीं होती है। यह तृप्ति तृष्णा को सदा के लिए दूर कर देती है। परमात्मा से यह प्रीति संसार में कर्म करने के सारे प्रयोजनों को समाप्त कर देती है। किसी फल के लिए प्राणि विशेष का प्रयोजन सिद्ध करना पड़ता है। इससे फलासिक्त कर्म का आरम्भ होता है। यह यथार्थ ज्ञान से दूर करने वाला है।

ईश्वर के कर्मों का अभाव होने पर सब लोक नष्ट हो जाएंगे। यह ईश्वर के अनुरुप नहीं है। ऐसे में यही ठीक है कि हमें ईश्वरार्थ कर्म करना चाहिए। अपने कर्तव्य का अभाव होने पर हमें केवल दूसरों के अनुग्रह के लिए कर्म करना चाहिए।

लोक के रक्षार्थ किया जाने वाला कर्म आत्मज्ञानी का कर्म है। कार्य का नाम आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा शब्द, स्पर्श, रस, रुप, गंध है, जबकि मन, बुद्धि और अहंकार तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र, घ्राण, वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और गुदा करण है। सत्व, रज और तम् इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का जो रुप प्रकट है उसी का नाम प्रकृति है। इसी प्रकृति की

प्रधानता के कारण कार्य और करण के हेतु सभी कर्म किए जाते है। कार्य और करण के संघात से शरीर की प्रतीति होती है। इसी प्रतीति का नाम अहंकार है। देहाभिमानी अज्ञानता के कारण प्रकृति के कर्मों को अपना मान बैठता है। वह उन कर्मों का खुद को कर्ता मानने में ही सुख समझता है। यह सुख नहीं बल्कि ईश्वरार्थ किए जाने वाले कर्म से दूरी को बढ़ाने वाला है। इसलिए गुण रुपी कर्म में आसक्त हुए बगैर ईश्वरार्थ कर्म का आचरण करना चाहिए।

बादलों को भी धरती का आसरा है

कृष्ण जब जन्मे तब रात अँधेरी थी लेकिन आकाश जलभरे बादलों से भरा हुआ था। काले-काले मेघों की पंचायत जुटी थी और काला अँधेरा उनसे मिल कर कृष्ण का सृजन कर रहा था। राधा उनकी वर्षा बनीं और कृष्ण बरस कर रिक्त हो गए। राधा भी बरस कर रिक्त हो गई। काले मेघों की उज्जवल वर्षा ने बरस-बरस कर पृथ्वी को उर्वर बना कर रस से भर दिया।

मेघ हैं तो जल है। जल है तो जीवन है। जीवन है तो रस है। यह रस सूख रहा है इसलिए सब व्याकुल हैं। नदियों ने महान संस्कृतियों को जन्म दिया और संस्कृति-पुत्रों ने नदियों की धाराएँ मोड़कर, उन पर बाँध बना कर, उन्हें नहरों में बाँट कर उन्हें ऐसा निर्जल कर दिया कि अर्घ्य देने के लिए भी जल नहीं बचा! बनारस के दशाश्वमेघ घाट पर गंगा के भरे हुए जल को देखिए तो, संस्कृति की शव-यात्रा निकलती हुई दिखाई देती है। मथुरा-वृंदावन में राधा-कृष्ण की जमुना में आचमन के लिए भी जल नहीं है। महेश्वर में नर्मदा पर डूबता हुआ सूरज और पिघलती हुई शाम उदास कर देती है। नदियों को काट कर नहरें तो निकाल दी गईं लेकिन हम क्या किसी नदी को भी जन्म दे सकते हैं?

पहाड़ टूटे, जंगल कटे, नदियाँ बँटी और धीरे-धीरे सब सूखने लगा। वर्षा का वह नौसर्गिक संगीत जो पूरे भारत के जीवन में बजता और बहता था, धीरे-धीरे मौन होने लगा। लोग आबे-जमजम के पास पहुँच कर भी प्यास से मरने लगे। शब्द, जो सर्ग और निसर्ग की गाँठें खोलकर, हमारी जीवन-नौका पर पाल की तरह तन कर उसे बहाते थे और हवा की मार से हमें बचाते थे - उनके भीतर का जल भी सूखने लगा। प्रवाह रुक गया और नौका बालू में फँस कर रुक गई। जब प्रवाह रुकता है तो सब कुछ दृश्य बन जाता है। शब्द भी दृश्य बन गए। उन्हें देखकर जब आँखें भर जाती थीं तब वे रुक कर आँसू सूखने की प्रतीक्षा करते थे। दृश्य किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, आगे बढ़ जाता है। सब कुछ दृश्य हो गया और अदृश्य के अस्तित्व पर संदेह होने लगा।

सब मिटने लगा - गीत, नृत्य संगीत, साहित्य, संस्कृति और वह सब - जो जीवन की आपाधापी में हमें रस देता था, सांत्वना देता था, शक्ति देता था और वेदना-संवेदना और प्रार्थना से जोड़ता था इसलिए नदियाँ कंकाल होती गईं, जल के स्रोत सूखने लगे और पानी पर भी बाजार का कब्जा हो गया।

लोगों को दृश्य बनना था इसलिए अब मेघों की जरूरत नहीं रही। मेघ भी सूखने लगे। नीति-अनीत, राग-विराग सर्ग-निसर्ग सब बाजार के हवाले हो गए। जब जल सूखता है तो धरती भी बँटने लगती है। भाषा, क्षेत्र जाति, संप्रदाय के नाम सब कुछ बँटने लगा। मेघ जब उदास होते हैं तो कृष्ण का अंधकार और राधा का प्रकाश भी प्रवाह से दृश्य बन जाता है। तब भक्त तो विभक्त होते ही हैं, प्रकाश और अंधकार भी बँट जाते हैं।

मेघों से टूट रहा है हमारा संवाद। बँटे हुए जन-मन पर वे अब भी बरसते हैं लेकिन सातत्य के साथ नहीं, रुक-रुक कर। कहीं बाढ़ आकर सब बहा ले जा रही है, कहीं लोग प्यास से मर रहे हैं। अतिवृष्टि और अनावृष्टि - दोनों ओर प्रलय - मृत्यु-राग, बजा रहे हैं वही मेघ। उनके जल को ग्रहण करने के लिए हमारे पास जगह ही कहाँ है? अँजुरी भी कहाँ खाली है कि वे बरसें और सारे भेद मिटा कर सब एक कर दें।

थोड़ी जगह दें बादलों को उतरने के लिए। नहीं देंगे तो जल जीवन नहीं; जहर बनकर हमको मारेगा और बाढ़ बन कर हमारी बस्तियाँ बहा देगा। जगह देंगें तो बौछार, झड़ी और रिमझिम बन कर आस्था के कुंभ को भरता रहेगा।।

लेखन मात्र कमाई का जरिया नहीं

अब जब नोटफ्री आंदोलन के ज़रिये इस विषय पर ज़ोरदार चर्चा छिड़ चुकी है और आंदोलन के समर्थकों द्वारा बहुत आक्रामक और उपहासपूर्ण स्वर में इस विषय में तर्क दिए जा रहे हैं तो इसके कुछ और केंद्रीय आयामों पर बात कर लेना चाहिए। यहाँ पर सबसे बुनियादी प्रश्न यह है कि लेखक क्यों लिखता है? क्या वह आजीविका के लिए लिखता है? मान लीजिये कोई व्यक्ति आजीविका के लिए कोई कार्य करता है। वह एक दुकान लगाता है। उससे अगर कोई भलामानुष पूछे कि यह कार्य क्यों करते हो, तिस पर वह जवाब देगा- रोज़ी-रोटी के लिए। अगर उससे कहा जाए कि तुम्हें जितनी आमदनी होती है, वह मुझसे ले लो, लेकिन यह दुकान मत लगाओ- तब वह क्या करेगा? सम्भव है वह पैसा ले ले और दुकान ना लगाए। किंतु अगर लेखक से कहा जाए कि फलां पुस्तक के प्रकाशन से तुम्हें जितनी आमदनी होगी, वह पैसा मुझसे ले लो किंतु पुस्तक मत लिखो- तब क्या लेखक पुस्तक नहीं लिखेगा? अगर वह पुस्तक पैसों के लिए ही लिखी जा रही है, तो सम्भव है वो पैसा ले ले और एक अरुचिकर कार्य करने से अपनी जान छुड़ाए। पर उसके बाद यह भी सम्भव है कि वह अपने समय और परिश्रम का उपयोग वह लिखने में करे, जो वह वास्तव में लिखना चाहता है। इस दृष्टान्त से हमें यह भेद दिखलाई देता है कि लेखन और आजीविका में कार्य-कारण का सीधा सम्बंध नहीं है, भले लेखन से आजीविका मिल सकती हो। किंतु लेखन की तुलना आजीविका के दूसरे साधनों से इसलिए नहीं की जा सकती, क्योंकि जहाँ वो दूसरे साधन विशुद्ध रूप से आजीविका के लिए होते हैं, वहीं लेखन किसी और वस्तु के लिए भी होता है।

मूलतः मक़सद यह स्पष्ट करना है कि लेखक का प्राथमिक दायित्व क्या है। लेखक का प्राथमिक दायित्व है लिखना और अपने लिखे को पाठकों तक पहुँचाना। एक बार यह दायित्व पूरा हो जाए, उसके बाद उसे अपने लेखन से जो धन, मान-सम्मान, सुख-सुविधा, उपहार आदि मिलते हैं, वो अतिरिक्त है,

बोनस है। किंतु लेखक जब कोरे काग़ज़ का सामना करता है तब उसके सामने यह प्रश्न नहीं होता कि लिखने से कितना धन-मान मिलेगा, बशर्ते वो बाज़ारू लेखक ना हो। उसके सामने एक ही संघर्ष होता है और वो यह कि जो मेरे भीतर है- विचार, कल्पना या कहानी- उसे कैसे काग़ज़ पर उतारूं कि उसमें मेरा सत्य भी रूपायित हो जाए और पाठक तक भी वह बात किसी ना किसी स्तर पर सम्प्रेषित हो जाए।

यह कल्पना करना ही कठिन है कि आज से बीस साल पहले तक लेखक के लिए प्रकाशन कितना दुष्कर था। वास्तव में इंटरनेट के उदय से पहले लेखन का इतिहास अप्रकाशित पाण्डुलिपियों के ज़ख़ीरे से भरा हुआ है। आज लिखने की सुविधा हर किसी को प्राप्त है- पुस्तक ना सही तो पोस्ट ही सही, किसी पोस्ट पर कमेंट ही सही- किंतु आज से बीस साल पहले प्रकाशित लेखन एक लगभग एक्सक्लूसिव परिघटना थी। तब लेखन का सबसे प्रचलित माध्यम चिट्ठियाँ ही थीं और लोग बड़े मनोयोग से पत्र लिखते थे। कोई लेख, कविता या कहानी लिखी तो उसे किसी पत्रिका या समाचार-पत्र को भेजते थे, उसे प्रकाशित करने का निर्णय सम्पादक के पास सुरक्षित रहता था। कोई पुस्तक लिखी तो उसकी पाण्डुलिपि भेजते थे, जिसके प्रकाशन का निर्णय प्रकाशक के पास सुरक्षित था। सम्पादक और प्रकाशक का वर्चस्व था, लगभग एकाधिकार था- इस प्रक्रिया में बहुत कम चीज़ें ही प्रकाशित हो पाती थीं। अख़बार में पाठकों के पत्र स्तम्भ में प्रकाशित होना भी तब बड़ी बात होती थी। आज जब सोशल मीडिया ने लेखक के लिए प्रकाशन सर्वसुलभ बना दिया है, उसे अपने लिखे पर तत्काल पाठक मिलते हैं और पाठकों की बड़ी संख्या उसकी पुस्तकों के प्रकाशन का पथ-प्रशस्त करती है- तब लेखक के अस्तित्व का प्राथमिक प्रयोजन- यानी अच्छे से अच्छा लिखना और अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँचना- कहीं सरलता से सध जा रहा है। इसके लिए उसके मन में कृतज्ञता का भाव होना चाहिए। तब लेखक का यह कहना कि इसके लिए मुझको पैसा चाहिए, इसीलिए एक अर्धसत्य है क्योंकि इसमें यहाँ पर वह इस बात को छुपा ले जा रहा है कि उसके लिए प्रकाशित होना और पाठकों तक पहुँचना कितना बड़ा सौभाग्य है।

और अगर यह ना होता तो वह अपनी रचना को लिए भीतर ही भीतर घुटता रहता।

लेखन की प्रकृति ऐसी है कि उसे दूसरी लोकप्रिय कलाओं- जैसे सिनेमा, रंगमंच, नृत्य या संगीत- की तुलना में कम प्रसार मिलेगा। शेखर एक जीवनी पढ़ने और सराहने के लिए एक विशेष प्रकार की शैक्षिक पृष्ठभूमि की आवश्यकता है, जो कोई नाच-तमाशा देखने, गाने-बजाने का आनंद लेने के लिए ज़रूरी नहीं। एक चलताऊ उपन्यास तक पाठक को खींचकर लाना भी एक सामान्य दर्शक को सिनेमाघर में ले जाने की तुलना में कहीं अधिक दुष्कर है। एक लेखक अपनी कला से कभी भी उतना सफल और धनाढ्य नहीं हो सकता, जितना कि एक फ़िल्म अभिनेता, खिलाड़ी, संगीतकार या नर्तक हो सकता है, बशर्ते देशकाल-परिस्थितियां उसके पक्ष में हों।

नोटफ्री आंदोलन के कर्णधार इन तमाम तर्कों और तथ्यों को नज़रंदाज़ कर देते हैं। इतना ही नहीं, वो यह कहकर परिप्रेक्ष्यों को विकृत भी करते हैं कि लेखक जब किसी कार्यक्रम में जा रहा है तो वो अपना समय दे रहा है, जिसकी क़ीमत उसे मिलना चाहिए। जैसे कि जो आयोजक वह कार्यक्रम कर रहा है, उसके समय का कोई मूल्य नहीं है, या वह निठल्ला है? लेखक यह जतलाता है कि आयोजक को उसकी ज़रूरत है, पर वो यह छुपा जाता है कि उसे भी आयोजक की उतनी ही ज़रूरत है! उसे भी मंच चाहिए, विज़िबिलिटी चाहिए, नए पाठक और नए प्रशंसक चाहिए, उसे भी महत्व चाहिए, जो उस कार्यक्रम से उसे मिल रहा है। यह कार्यालय में काम करने जैसा नीरस नहीं है, जो लेखक यह तर्क देता है कि वह कार्यालय से छुट्टी लेकर आ रहा है, इसलिए उसे इसके ऐवज़ में पैसा चाहिए। लेखक को वैसे कार्यक्रमों में जो मान-सम्मान, महत्व-प्रचार मिलता है, उसे हासिल करना आज लाखों का सपना है (और जब लेखक युवा था और अख़बारों में अपनी कविताएं प्रकाशित करने भेजता था और उनके छपने की प्रतीक्षा करता था, तब यह उसका भी सपना हुआ करता था), लेकिन इस सपने को जीने का अवसर जब उसे मिलता है, तो लेखक यह जतलाता है मानो इसका कोई मूल्य ही ना हो, जैसे इसके लिए उसे स्वयं कुछ ना चुकाना हो, उलटे उसे इसके बदले में पैसा चाहिए?

जब लेखक यह कहता है कि मैं पैसा लिए बिना किसी कार्यक्रम में नहीं जाऊंगा तो वह मन ही मन यह रूपरेखा भी बनाता ही होगा कि कितना पैसा? वह अपना एक रेट तय करता होगा। एक बार यह रेट तय होते ही यह निश्चित हो जाता होगा कि कुछ ही आयोजक उसे अफ़ोर्ड कर सकेंगे। किंतु ये जो आयोजक उसे अफ़ोर्ड करेंगे, वो लेखक में निवेश की गई राशि का रिटर्न कैसे पाएँगे (क्योंकि कोई भी लन्च फ्री में नहीं मिलता, यह नोटफ्री आंदोलन के कर्णधारों का प्रिय वाक्य है)। क्या कोई पूँजीपति अपनी जेब से पैसा लगाकर लेखक को एक दिन की वह सितारा-हैसियत दिलाएगा, या वह किन्हीं प्रायोजकों की मदद लेगा? ये प्रायोजक तब उस कार्यक्रम को कैसे प्रभावित करेंगे? क्या लेखक कविता या कहानी-पाठ के बीच में रुककर किसी प्रायोजक के उत्पाद (गुटखा या जूते?) का विज्ञापन भी करेगा? क्योंकि जब पैसे को ही सबकुछ मान लिया तो शर्म-लिहाज़ कैसी? जो आयोजक लन्च दे रहा है, होटल में रूम बुक कर रहा है, हवाई जहाज़ का टिकट दे रहा है, प्रोग्राम के लिए ऑडिटोरियम बुक कर रहा है और आपको लिफ़ाफ़ा भी दे रहा है- वो ख़ुद क्या यह सब फ्री में करेगा, क्या नोटफ्री में उसका स्वयं का विश्वास नहीं होगा?

मैं देख रहा हूँ कि नोटफ्री आंदोलन युवाओं में विशेषकर लोकप्रिय हो रहा है, क्योंकि ये पीढ़ी ही येन-केन-प्रकारेण सफलता की भाषा में सोचती है। किंतु दौर बदलने से दस्तूर नहीं बदल जाता। लेखक क्यों लिखता है, किसके लिए लिखता है, लेखक लेखन से क्या चाहता है- ये बुनियादी प्रश्न अपनी जगह पर तब भी क़ायम रहते हैं- इन्हें कोई बदल नहीं सकता।

मेरी पुस्तक बिके और मुझे उसका पैसा मिले- यह एक बात है- और मेरी पुस्तक कितनी बिकी, उससे मुझे कितना पैसा मिला, यही मैं रात-दिन सोचता रहूँ और पैसा कमाने के लिए ही लिखूँ- ये एक नितांत ही दूसरी बात है।

कोई आयोजक मुझे बुलाए, मान-सम्मान-मंच प्रदान करे और चलते-चलते अपनी सामर्थ्य से मुझे कुछ पैसा भी दे दे- यह एक बात है- किंतु मुझे पैसा दिया जाएगा तो ही मैं आऊँगा, यह भी नहीं देखूँगा कि मुझे बुलाने वाला कौन है, उसकी क्या क्षमता है, उसकी क्या प्रतिष्ठा है, उसके पास कितने

उच्चकोटि के निष्ठावान श्रोता हैं- यह एक दूसरी ही बात है। और इन दोनों बातों में ज़मीन-आसमान, आकाश-पाताल का भेद है!
जिस लेखक में इन दोनों में अंतर करने का विवेक नहीं, वो समाज को क्या मूल्य देगा? उसको तब कोई दुकान ही लगा लेना चाहिए, लेखन वग़ैरा उसके बस का रोग नहीं।

अतीत और भविष्य के बीच वर्तमान का उपहार

("आज को न जीते हुए भविष्य की कल्पना से डरना और बीते हुए कल के बारे में दुखी रहना वास्तव में किसी के भविष्य को खराब कर सकता है। विद्यार्थियों को हमेशा वर्तमान पर फोकस रहना चाहिए")

वैज्ञानिक कथन है कि कल से सीखो, आज के लिए जीओ, कल के लिए सपने देखो और सबसे जरूरी बात कभी भी रुको मत। सचमुच सभी छात्र-छात्राओं का समय सपने देखने और उनको सच करने के क्रम में कल, आज और कल के बीच से गुजरता है। जो विद्यार्थी समय की कमी और बेहतर परफॉर्म न कर पाने की बात करते हैं, उनके लिए एक नुस्खा बताता हूं। आप सिर्फ एक हफ्ते तक रोजाना रात में सोने से पहले एक नोट पैड पर लिखें कि आपने कितने घंटे अतीत की दुखभरी बातों को याद करने में बिताए, भविष्य से चिंताग्रस्त रहे और कितने घंटे वाकई तन्मयता से अध्ययन में बिताए। सामान्यत: यह बात साफ तौर पर सामने आती है कि पास्ट और फ्यूचर की बातों में उनका ज्यादातर समय गुजर जाता है और उन्हें पता भी नहीं चलता। परिणाम स्वरुप अपने लक्ष्य के अनुरूप सकारात्मक सोच के साथ आज को जीने के लिए उनके पास समय कम पड़ जाता है।

हां, यह सही है कि किसी भी विद्यार्थी के लिए शायद ही संभव होगा कि वह दिनभर में कभी भी अतीत या भविष्य में विचरण न करें, लेकिन क्या यह मुनासिब नहीं है कि एक बार ठीक से अतीत और भविष्य यानी दोनों कल के विषय में अपना माइंड क्लियर कर लें? चलिए, अभी कुछ सोच-विचार कर लेते हैं। मजेदार बात है कि एक दिन पहले के आज को बीता हुआ कल है और एक दिन बाद आनेवाले आज को भी कल ही कहते है, लेकिन मतलब भविष्य होता है। यही न। तो साफ है कि दोनों कल वाकई आज ही था या होगा समय के एक अंतराल के बीच। महात्मा बुद्ध का कहना है कि मन और

शरीर दोनों के लिए स्वास्थ्य का रहस्य यह है कि अतीत पर शोक मत करो और ना ही भविष्य की चिंता करो, बल्कि बुद्धिमानी तथा ईमानदारी से वर्तमान में जीओ।

तो छात्र-छात्राएं सर्वप्रथम यह संकल्प करें कि अभी से वे वर्तमान यानी प्रेजेंट में जीयेंगे। प्रेजेंट का एक अर्थ उपहार भी है और शायद इसी को रेखांकित करता है आज का समय। जो वाकई एक अमूल्य उपहार है। हां, इस संकल्प को हमेशा याद रखना है और मन ही मन दोहराना भी है। ऐसा इसलिए कि जब भी मन अतीत या भविष्य में जाए और निगेटिविटी के जाल में फंसने लगे तो वे प्रेजेंट में तुरंत लौट सकें। यहां इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि अतीत का पूरा समय बीते हुए वर्तमान का कुल योग होता है और भूतकाल के इस बड़े काल खंड में सभी विद्यार्थियों ने अनेक काम किए हैं और बहुत-सा अच्छा-बुरा अनुभव प्राप्त किया है। ये अनुभव उनके धरोहर हैं और आगे बहुत काम आने वाले हैं। अगर वे इनसे मिले सबक और सीख को वर्तमान में अर्थात आज उपयोग में ला सकें। अतीत की असफलताओं और गलतियों को सिर्फ याद कर निराश और दुखी होने का कोई फायदा नहीं। आगे वही गलती न करें तो कुछ बात बने।

दूसरा, अतीत की जो सफलताएं या अच्छी यादें आपके स्मृति में हैं, उन्हें अच्छी तरह संजो कर रखें। उन्हें जीवंत बनाए रखना आपको अच्छे कार्य में संलग्न रहने को उत्प्रेरित करता रहेगा। तीसरा यह कि भविष्य के लिए जो सपने देखें हैं या जहां पहुंचना चाहते हैं, उसके लिए एक प्रैक्टिकल और फुलप्रूफ कार्ययोजना तैयार करके चलें। यकीनन, इन्हें साधने के साथ-साथ छात्र-छात्राओं को आज पर पूरा फोकस करना होगा क्योंकि वे आज जो कुछ करते हैं, वही हकीकत है और सबसे अधिक अहम। महात्मा गांधी भी कहते हैं कि हमारा भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि हम आज क्या करते हैं। आपने यह भी सुना ही है कि काल करो सो आज कर, आज करो सो अभी। तो बस इस सिद्धांत को दृढ़ता से अपनाकर हर दिन को एक महत्वपूर्ण दिन मानें और फिर आज यानी वर्तमान के अच्छे कार्य व प्रयास को खूब एन्जॉय करते हुए अपने निर्धारित लक्ष्य को हासिल करने की दिशा में बढ़ते चलें। निसंदेह, सफलता और खुशी दोनों मिलेगी।

प्रफुल्ल सिंह

अंतर्मन चेतना को पहचानें

हमारे जीवन में आने वाले उतार-चढाव भी उतने ही स्वाभाविक हैं, जितना कि मौसम का बदलना, पेड-पौधों का मुरझाना और दोबारा उन पर नई कोपलें फूटना। जो व्यक्ति इस प्रक्रिया को सहजता से स्वीकारता है, वह सुख-दुख दोनों ही स्थितियों में संतुलित और समभाव रहता है पर कुछ लोग ऐसी मुश्किलों से बहुत जल्दी घबरा जाते हैं। उनका आत्मबल कमजोर पडऩे लगता है। विधाता ने हम सभी को विपरीत परिस्थितियों से जूझने की शक्ति समान रूप से दी है पर कुछ लोग अपने अंतर्मन की इस ताकत को पहचान नहीं पाते और ऐसे ही लोग राह में आने वाली छोटी-छोटी बाधाओं से बहुत जल्दी घबरा जाते हैं। अपने अंतर्मन की ताकत को पहचानने वाले लोग हर हाल में शांत और संयमित रहते हैं।

अपने मन को हर हाल में संयमित रखना मनुष्य के लिए सबसे बडी चुनौती है। यह सच है कि मानव मन बेहद चंचल है। इसकी गति बिजली से भी तेज है। तभी तो श्रीमद्भगवदगीता जी में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-'इंद्रियां बलवान हैं, इंद्रियों से बलवान मन है और मन से भी ज्य़ादा शक्तिशाली है बुद्धि।' आम बोलचाल की भाषा में जब हम मनोबल बढाने की बात करते हैं तो हमें उसके शाब्दिक अर्थ को ग्रहण नहीं करना चाहिए। मनोबल बढाने का वास्तविक अर्थ अपनी बुद्धि-विवेक को बलवान बनाने से है। मन को अगर कोई काबू कर सकता है तो वह है बुद्धि। मन में अलग-अलग भाव उत्पन्न होते हैं। कुछ अच्छे तो कुछ खराब। भय, क्रोध, चिंता इत्यादि बुरे भाव हैं। प्रेम, सेवा, भक्ति, दान और निर्भयता अच्छे भाव हैं, जो हमेशा सद्बुद्धि से ही आते हैं। इसके लिए सबसे पहले यह समझना बहुत जरूरी है कि मन के अवगुणों को दूर कर अच्छे गुणों को कैसे उत्पन्न किया जाए। घर-गृहस्थी, व्यापार, कार्यालय में कई बार मनुष्य का मनोबल कमजोर पड जाता है।

डर के कारण वह अपने जीवन के उस लक्ष्य तक नहीं पहुंच पाता, जहां पहुंचना उसका उद्देश्य था। यहां हम मुख्यत: चार बिंदुओं पर बात करेंगे,

जिससे मन के अवगुणों को दूर कर सद्गुणों को बढाया जा सके। जैसे ही आपके सद्गुणों की वृद्धि होगी, आप बडे से बडे संकटों से जूझने में सक्षम हो जाएंगे पर इसके लिए व्यक्ति के मन में धैर्य का होना बहुत जरूरी है। ज्ञान एक साधना है, जिसे जीवन भर ऐसे ही अंगीकार करना पडता है जैसे कि स्वस्थ शरीर पाने के लिए हम नियमित व्यायाम और योगाभ्यास को अपनाते हैं। ठीक उसी तरह मानसिक शांति के लिए हमें अध्यात्म को भी अपनी जीवनशैली में प्रमुखता से शामिल करना चाहिए। वैराग्य है मार्गदर्शक आत्मबल बढाने के लिए सबसे जरूरी है-वैराग्य। यहां वैराग्य का तात्पर्य गृहस्थ जीवन को त्यागने से नहीं है, बल्कि परिवार में रहते हुए भी संतों जैसा आचरण अपनाने से है लेकिन हम दूसरों की सेवा और सहायता भी तभी कर सकते हैं, जब हमारे भीतर यह सब करने की शक्ति और योग्यता हो।

इसलिए सबसे जरूरी है कि हम पहले स्वयं को समर्थ बनाएं। विमान यात्रा के दौरान आपने भी देखा होगा कि सुरक्षा सूचना के समय यह बताया जाता है कि आकस्मिक स्थिति में जब हवा का दबाव कम हो तो सबसे पहले आप अपना ऑक्सीजन मास्क पहनें। उसके बाद ही दूसरे की सहायता के बारे में सोचें। आपने भी कुछ ऐसे लोगों को देखा होगा, जो दुर्घटना या किसी भी प्रतिकूल स्थिति में दूसरों को देखकर बहुत ज़्यादा दुखी होते हैं पर खुद उनकी मदद नहीं कर पाते। ऐसा तभी होता है, जब व्यक्ति के मन में वैराग्य न हो। अतीत से सीखें सच तो यह है कि कमजोर मनोबल बाहरी मुश्किलों से भी ज़्यादा नुकसानदेह होता है। जरा अपने अतीत में झांक कर देखें कि इससे पहले भी जब कभी आपके जीवन में कोई परेशानी आई तो क्या आप उस समस्या से बाहर नहीं निकले? पिछले कुछ वर्षों में आने वाले दुखों को तो आप याद रखते हैं पर अनगिनत सुखों को भुला देते हैं। आज हमारे जीवन में जो भी हो रहा है, वह कुछ दिनों के बाद अतीत का हिस्सा हो जाएगा।

इसलिए मुश्किल हालात में भी हमें यही सोचना चाहिए कि आज हमारे साथ जो भी हो रहा है उसमें भी भविष्य के लिए कोई न कोई अच्छाई ही छिपी होगी। करें खुद का सम्मान आत्मसम्मान के साथ जीने की कला हमारी बुद्धि को प्रबल बनाती है। बुरे से बुरे वक्त में भी आप दूसरों से दया पाने की उम्मीद कभी न रखें। हम सब एक ही परमेश्वर की संतान हैं। हम अंश हैं उस

अमृत के, जो पूरी सृष्टि का आधार है। अमृत का अंश भी अमृत ही हुआ लेकिन इस बात को पूरी तरह अपने अंतर्मन में उतारने से पहले ईमानदारी के साथ विचारों और ज्ञान का गहन आत्ममंथन करना अति आवश्यक है।

जिस तरह किसी भी वस्तु का मंथन करने पर उसमें मौजूद नुकसानदेह तत्व विष की तरह बाहर निकल आते हैं, ठीक उसी तरह अपने मन में मौजूद भावनाओं का मंथन करने के बाद उनमें से कुछ नकारात्मक बातें भी बाहर निकल आती हैं, जो व्यक्ति का मनोबल कमजोर कर सकती हैं। इसीलिए कहा जाता है कि हमें अपने सभी अवगुण प्रभु को अर्पित कर देने चाहिए। इसी से बाद हमारी बुद्धि विकसित होगी। चाहे घर-परिवार हो या दफ्तर, हर जगह अपनी जिम्मेदारियों और संबंधों का निर्वाह करते हुए हमारे मन में हमेशा यही भाव होना चाहिए कि यह मैं स्वयं नहीं कर रहा, प्रकृति ने मुझे इस कार्य के निमित्त बनाया है। कर्म जब प्रभु के लिए किया जाएगा तो मनोबल कैसे कम होगा? इसके विपरीत जब केवल निजी स्वार्थ के लिए ही कर्म किया जाएगा तो मनोबल कैसे बढेगा? कुरुक्षेत्र है जीवन यह जीवन एक ऐसी रणभूमि है, जहां प्रतिदिन युद्ध हो रहा है। बाहरी युद्ध में तो हमें अपने शत्रुओं का पता होता है लेकिन इस युद्ध में तो असली शत्रु हमारा मन ही है।

वास्तव में हम धर्म-क्षेत्र में थे परंतु मोह के कारण ही वह कुरुक्षेत्र बन गया। अब सवाल यह उठता है कि ऐसे युद्ध में हम जीतें कैसे? अंत:करण में भी वैसा ही बर्ताव करना पडेगा जैसे कि बाहरी युद्ध के लिए हम खुद को हथियारों से लैस करते हैं। उसी तरह मन के भीतर चलने वाले युद्ध में हमें वैराग्य का कवच पहनना पडेगा। लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए भी कोई रणनीति बनानी होगी। हम सब अभिमन्यु की तरह हैं। हम इस संसार के चक्रव्यूह के भीतर तो घुस आते हैं पर उससे बाहर निकलने का रास्ता हमें नहीं मालूम। केवल आध्यात्मिक ज्ञान ही हमें इससे बाहर निकाल सकता है। शास्त्र ही वो शस्त्र हैं, जो मन के अवगुणों को निर्मूल करके हमारा मनोबल बढा सकते हैं। आज के जीवन में ऑफिस और घर-परिवार ही हमारा कर्म क्षेत्र है।

अगर हम अपने कर्म क्षेत्र में निर्भय होकर दायित्वों का निर्वाह करें तो इससे न केवल हमारा आत्मबल बढेगा बल्कि हमारे जीवन से अज्ञान का अंधकार हमेशा के लिए दूर हो जाएगा।

वर्तमान साहित्य में राष्ट्रीय सृजन

प्रत्येक देश का साहित्य अपने देश की भौगोलिक, सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परिस्थिति से संबद्ध होता है। साहित्यकार अपने देश की अतीत से प्राप्त विरासत पर गर्व करता है, वर्तमान का मूल्यांकन करता है और भविष्य के लिए सपने बुनता है और इस प्रकार कहा जा सकता है कि वह राष्ट्रीय आकांक्षाओं से परिचालित होता है।

राष्ट्रीयता को अंतरराष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में रखकर देखने की कोशिश की जानी चाहिए। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की मान्यता के आधार पर कहें तो साहित्य मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-संबंधों के संकुचित मंडलों से ऊपर उठाकर लोक सामान्य की भावभूमि पर ले जाता है, जहां जगत की विभिन्न गतियों के मार्मिक स्वरूप का साक्षात्कार और शुद्ध अनुभूतियों का संचार होता है।

भारत जैसे देशों के संदर्भ में राष्ट्रीयता के संदर्भ में कुछ दुविधाएं और हैं। भारत मिश्रित संस्कृतियों का संघ है अथवा यह भी कह सकते हैं कि वह कई राष्ट्रीयताओं का संघीकृत राज्य है। उपर्युक्त संदर्भ को भारत की आंतरिक समाज व्यवस्था पर घटाने का प्रयास करें तो भी स्थिति कुछ सहज नहीं होगी।

साहित्य अब सामाजिक सक्रियता की ओर बढ़ना चाहता है। परिवर्तन की अदम्य चाह में कवि 'एक्टिविस्ट' के तौर पर 'कलम की ताकत' को नई भूमिका में 21वीं सदी में प्रस्तुत कर रहा है। आज का समय उस दौर का साक्षी है, जहां मनुष्य के अमानवीकरण की गति में तीव्रता आई है। वैचारिक दृष्टि से समाजवाद का स्वप्न ध्वस्त हुआ है, तो यांत्रिक सभ्यता का कहर भी विद्यमान है। मानवता को खूंटियों पर टांग देने का प्रयास हो रहा हो। आज साहित्यकार को न केवल आक्रोश व्यक्त करना होता है, बल्कि वह उस विचारहीनता को चुनौती दे रहा है।

राष्ट्रीयता साहित्य सर्जना का महत्वपूर्ण पड़ाव है, पर आज राष्ट्रीयता को एक संकीर्ण अवधारणा के रूप में व्याख्यायित किया जा रहा है, विशेषकर उन पश्चिमी शिक्षा प्राप्त बुद्धिजीवियों द्वारा, जो औपनिवेशिक दासता को पीठ

पर लादकर प्रसन्न हैं तथा राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता के राजनीतिक आयाम को ही देखने के लिए अभिशप्त हैं। उत्तरदायित्वहीन हिंसा के स्वत:स्फूर्त क्रांति या साहसिकता को मूल्य नहीं देता है।

सभ्यताओं को जब 'धर्म' का पर्याय बनाकर प्रस्तुत किया गया है, तब अंधश्रद्धा ने मानवीय कटुता को जन्म दे दिया। कभी अत्यधिक मांग ने किसी का हक छीना तो 'नक्सली'चिंताओं ने समाज की व्यवस्था पर प्रश्नचिह्न लगा दिए। जातीय उन्माद, प्रतिहिंसा के भाव और प्रतिशोध की चिंगारी लिए इस नई सदी का प्रवेश हुआ। आज का साहित्यकार आक्रोश का सर्जक होने के बावजूद अराजकतावादी मूल्यों का विरोधी है। वह संगठित व सुसंबद्ध सामाजिक क्रांति का समर्थक है।

विचारधारा का जितना तरल इस्तेमाल साहित्य में होगा, साहित्य उतना ही विशिष्ट होगा अन्यथा उसके प्रचार सामग्री बनने की भी संभावना बनी रहती है। रचनाकार राष्ट्रीयता को साहित्य-सृजन के लिए उपजीव्य के रूप में ग्रहण करता है तो यह कार्य स्तुत्य है। इस राष्ट्रीयता का अधिष्ठान सांस्कृतिक है, राजनीतिक नहीं।

वर्तमान कई साहित्यकारों ने देश के स्वरूप का मनोरम चित्र उपस्थित किया। किसी ने उसकी महिमा का गायन किया। अनेक रचनाओं में भारत के अतीत का गौरव और वर्तमान स्थिति की दुरावस्था का मार्मिक चित्र है। अनेक कविताओं में चुनौती, ललकार और गर्जना के साथ बलिदान की मानसिकता भी उभरी है। इन अनेक प्रकार की रचनाओं को राष्ट्रीय चेतना का मानने में कोई समस्या नहीं है। समस्या आजादी के वास्तविक सरोकारों की खोज करने वाली रचनाओं के साथ है।

राष्ट्रीयता की भावना विकसित करने में आधुनिक साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है। राष्ट्रवाद से सामुदायिक भावना का विकास होता है और लोकतांत्रिक भावना भी राष्ट्रवाद से समृद्ध होती है। देश की रक्षा, हित, संगठन, एक समाज के जातीय स्वरूप के विकास की आकांक्षा, कोशिश राष्ट्रीय चेतना का अविभाज्य अंग है।

यदि वर्तमान में हमने कुछ खोया है तो वह है- रिश्तों की बुनियाद। दरकते रिश्ते, कम होती स्निग्धता, प्रेम और आत्मीयता इतिहास की वस्तु

बनते जा रहे हैं। राष्ट्रीयता का एक पक्ष है अपने अतीत की स्मृति। अतीत की स्मृति आत्मस्मृति है। विगत के प्रति सम्मोहन उसी समय होता है, जब हम परंपरा से विगलित हो जाते हैं... परंपरा का रिश्ता स्मृति से है, सम्मोहन से नहीं।

अपनी संस्कृति के प्रति गौरव-बोध वस्तुत: राष्ट्रीय अस्मिता का हिस्सा है और राष्ट्रीय अस्मिता राष्ट्रबोध का अभिन्न हिस्सा है। अज्ञेय का यह कथन युक्तियुक्त है- 'संस्कृतियों का संबंध अपनी देशभूमि से होता है।'

प्रगति, विकास, संस्कृति, इतिहास-भूगोल आदि की जड़ भाषा होती है और भाषा को समृद्ध साहित्य करता है और साहित्य प्रत्येक वर्तमान को कलात्मक एवं यथार्थ रूप में समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। मनुष्य चाहे जितनी प्रगति कर ले, विकास की डींगें हांक ले, सभ्यता का दंभ भरे, पर जब तक वह भीतर से सभ्य नहीं होता, तब तक मनुष्य की सही मायने में प्रगति नहीं हो सकती। बाहरी सभ्यता भौतिक प्रगति को दर्शाती है, तो भीतरी सभ्यता मानवता को, मानवीय मूल्यों के आदर्शों को परिलक्षित करती है।

समाज की आंतरिक और बाह्य प्रगति के लिए साहित्य हमेशा कल्पवृक्ष बना हुआ है। साहित्य की परिधि समाज का प्रत्येक हिस्सा रहा है। यहां किसी प्रकार का भेदभाव नहीं रहा है। जो अन्याय व अत्याचार का शिकार हुआ, साहित्य ने खड़े होकर पीड़ित के आंसू भी पोंछे हैं। साहित्य यही करता है।

साहित्य मनुष्य को बाहर और भीतर से सभ्य बनने में मदद करता है। वास्तव में वह तन और मन की सभ्यता प्रदान करता है। जो साहित्य तन और मन की सभ्यता प्रदान करता है, वह शाश्वत साहित्य होता है। वर्तमान साहित्य प्रकृति एवं राष्ट्रीयता का मानवीकरण नहीं करता बल्कि प्रकृति, समाज एवं राष्ट्र को उसके ठोस सामाजिक संदर्भ के साथ रेखांकित करता है।

मेरा दोहरा व्यक्तित्व

मेरे अंदर का दूसरा आदमी मेरे अंदर का दूसरा मेरा रुप है। वर्तमान परिदृश्य का सच्चा स्वरूप है जिस समय मैं रात में सो रहा होता हूं उसी समय मेरे अंदर का दूसरा आदमी अस्पताल के आईसीयू के बाहर ईश्वर से विनती कर रहा होता है। जब मैं रोटी के टुकड़े खा रहा होता हूं तो मेरा दूसरा आदमी किसी रेस्टोरेंट में बिरयानी के स्वाद में तल्लीन हो रहा होता है। जब मैं मॉ की दवाई खरीद रहा होता हूं तो मेरे अंदर का दूसरा आदमी अपनी प्रेमिका को पत्र लिख रहा होता है। और जब मैं अपने विचारों के आकाशगंगा में गोता लगा रहा होता हूं तो मेरे अंदर का दूसरा आदमी टेलीविजन पर रिमोट की बटन बदल रहा होता है।। मैं और मेरा दूसरा आदमी दो नहीं एक है बस विचारों से अनेक है।।

परिवार का पतन होने से बचाएं

वर्तमान दौर की एक बहुत बड़ी विडंबना है कि पारिवारिक परिवेश पतन की चरम पराकाष्ठा को छू रहा है। अब तक अनेक नववधुएं सास की प्रताड़ना एवं हिंसा से तंग आकर भाग जाती थीं या आत्महत्याएं कर बैठती थीं, वहीं अब नववधुओं की प्रताड़ना एवं हिंसा से सास उत्पीड़ित है, परेशान है। वे भी अब आत्महत्या का सहारा ले रही हैं, जो कि न केवल समाज के असभ्य एवं त्रासद होने का सूचक है बल्कि नई बन रही पारिवारिक संरचना की एक चिंतनीय स्थिति है।

परिवार होता क्या है? ऐसे लोगों का समूह जो भौतिक और मानसिक स्तर पर एक-दूसरे से प्रगाढ़ता से जुड़ा हो। जिसके सभी सदस्य अपना फर्ज पूरी ईमानदारी से करते हुए उदारतापूर्वक एक-दूसरे के लिए त्याग और सहयोग करते हैं। ऐसे क्या कारण हैं कि पारिवारिक प्रगाढ़ता अब प्रताड़ना बनती जा रही है। जिन बच्चों की खुशी के लिए माता-पिता हंसते-हंसते सबकुछ कुर्बान कर देते हैं, अगर वही उनकी मौत का कारण बन जाएं तो इससे ज्यादा दुखद क्या होगा।

कोई भी इंसान अपने परिवार का विस्तार चाहता है, उसका विघटन नहीं। मतभेद चाहे छोटा हो या बड़ा, हंसते-खेलते परिवार को तबाह कर देता है। परिवार की खुशहाली और समृद्धि तभी संभव है जबकि परिवार का कोई भी सदस्य स्वार्थी, विलासी और दुर्गुणी न हो। यदि परिवार में कर्तव्यों के प्रति पूरी आस्था और समर्पण होगा तो वे अच्छी तरह से समझ पाएंगे कि स्वार्थ की बजाय स्नेह-सहयोग का माहौल ही फायदेमंद है।

परिवार में बिखराव क्यों होता है? जब परिवार में संयुक्त हितों से जुड़े फैसले कई बार एकतरफा ले लिए जाते हैं। बड़े अपने हिसाब से निर्णय लेते हैं, छोटे उसे अपने पर थोपा हुआ मानते हैं। बस, यहीं से शुरू होती है परिवार से बाहर की ओर निकलने वाली राहें। छोटे विद्रोही स्वर लेकर परिवार से अलग हो जाते हैं या परिवार में ही रहकर सौहार्दपूर्ण वातावरण को लील देते हैं।

'परिवार' को स्वस्थ बनाना कोई उत्पाद नहीं है। यह तो जीवन है, इसे जीवंत बनाना होगा।

हम जितने आधुनिक हो रहे हैं, हमारे नैतिक मूल्य उतने ही गिरते जा रहे हैं। रिश्तों में व्यावहारिकता की जो लहर चली है उसने कई नातों को धराशायी कर दिया है। अब रिश्ते दिलों के नहीं, सिर्फ लाभ-हानि के रह गए हैं। हम जितने प्रोफेशनल हुए हैं, परिवारों में दुराव बढ़ा है। हमारे इस प्रोफेशनलिज्म की कीमत संभवत: परिवारों ने भी चुकाई है।

महानगरीय संस्कृति उपभोक्तावाद का शिकार होकर रह गई है। हर कोई न जाने किस अंतहीन दौड़ में भागा जा रहा है। इसमें इतना भी ध्यान नहीं है कि कितना कुछ पीछे छुटता जा रहा है। माता-पिता तो जीवनरूपी वृक्ष की जड़ हैं और जड़ के सूखने से कोई भी वृक्ष हरा-भरा नहीं रह सकता इसलिए संबंधों की कद्र करनी चाहिए। सभी रिश्ते जीवन में समान अहमियत रखते हैं। महानगरीय तनाव को जीवन पर इतना भी हावी न होने दें कि वह रिश्तों पर भारी पड़ने लगे। जीवन के हर क्षेत्र और रिश्ते में संतुलन बनाना जरूरी है। परिवार के सदस्य परस्पर समझौतावादी दृष्टिकोण लेकर चलें और विचार-फर्क की कठिन स्थितियों में संवाद बंद न होने दें। नेगोसिएशन... की प्रणाली समस्याओं के समाधान में नई दिशा दे सकती है।

सभ्य समाज की नींव सभ्य परिवार से पड़ती है। संस्कारों का प्रवाह परिवार से समाज की ओर जितनी तेजी से जाता है, उतनी ही गति से समाज से परिवार की ओर आता भी है। संस्कारों का प्रवाह ही परंपराओं को जीवन प्रदान करता है। अगर परिवार से गलत परंपराओं की शुरुआत हो जाए तो समाज भी उससे अछूता नहीं रहेगा। यदि आदर्शों और मर्यादाओं के गिरते स्तर के प्रति कठोर प्रतिक्रिया नहीं होती तो लोगों का चरित्र गिरने लगता है यानी कि वे और भी अधिक उद्दंड और मनमौजी हो जाते हैं।

आज जबकि हमारे देश में नया भारत एवं नए मनुष्य निर्मित करने की बात हो रही है तो परिवार के नए स्वरूप की पृष्ठभूमि तैयार करने का यही वक्त है। 'परिवार संस्था' को टूटने से बचाना कठिन जरूर है, पर सुख-समृद्धि इसी जमीन पर उगते हैं। नई परिवार संस्था में अनुशासन आरोपित न हो अपितु व्यक्ति से आविर्भूत हो ताकि कोई सास जीवनलीला समाप्त करने की न सोचे।

विश्वभर में जब मानवीय उदात्तताएं हाशिए पर जा रही हैं तब नैतिक मूल्यों पर आधारित एक स्वस्थ परिवार की रूपरेखा खड़ी करने की आवश्यकता है।

अत्यधिक कल्पनाओं से स्वयं को वंचित रखें

किसी वस्तु की कल्पना में जो सुख है, वह उस वस्तु की प्राप्ति में नहीं। यही बात दु:ख के संबंध में भी लागू होती है। आज मानव सुख की कल्पना तो कर ही नहीं पाता, हाँ दु:ख की कल्पना कर अपने वर्तमान को दु:खी अवश्य करता है। वह या तो अतीत में जीता है, या भविष्य में। वर्तमान में जीना वह भूलता जा रहा है। यही कारण है कि वह दु:ख आने से पहले ही दु:ख का अनुभव करने लगता है।

दु:ख की खोज में यदि आप निकलेंगे तो आपको तीन प्रकार के दु:ख मिलेंगे- स्वजनित दु:ख, परजनित दु:ख और कर्मजनित दु:ख। व्यक्ति दु:ख का अनुभव करता है, किंतु उसके निवारण का उपाय कदाचित ही कर पाता है, क्योंकि दु:ख उसके ऊपर इतना अधिक हावी हो जाता है कि वह उससे बचाव का उपाय ही नहीं सोच पाता है। हमारे कितने ही दु:ख भयजनित होते हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि हकीकत में उसके सामने वह दु:ख नहीं होता, किंतु उस दु:ख से जुड़ी भविष्य की कल्पना ही उसे अधिक दु:खी कर देती है।

व्यक्ति के दु:ख का कारण सच्चाई से भागने की प्रवृत्ति है। इस समय इंसान एक शुतुरमुर्ग की तरह होता है, जिसकी प्रवृत्ति होती है कि मुसीबत के समय वह अपना सर रेत में छिपा लेता है, इसके पीछे यही सोच होती है कि कोई उसे नहीं देख रहा है। वास्तविकता इसके विपरीत होती है। यही है सच्चाई से भागने की प्रवृत्ति। इस प्रवृत्ति के इंसान अपने आसपास एक वायवीय संसार का सृजन कर लेते हैं। सब कुछ उनकी कल्पना में ही होता रहता है। इसे सही साबित करने के लिए उसके पास इसी तरह की कपोल-कल्पित मान्यताएँ भी होती हैं, वह उससे बाहर निकलना ही नहीं चाहता। उसका एक अपना रचना संसार होता है, जिसमें वह जीना चाहता है। पर यह स्थिति उसे सच से इतना दूर ले जाती है कि सच उसे एक मजाक लगता है, वह उसका सामना ही नहीं कर पाता।

एक और दु:ख का कारण है, अतीत का बोझ अपने पर लादे रहना। हमारे समाज में कई ऐसे व्यक्ति मिल जाएँगे, जो अपने अतीत में ही जीते हैं। वे वर्तमान की बातों को भी अपने अतीत से तौलते नजर आते हैं। उन्हें अपना अतीत इतना प्यारा लगता है कि वे उससे अलग होना ही नहीं चाहते। वर्तमान की उपेक्षा ही उनके दु:ख का कारण होती है, क्योंकि अतीत में वे अकेले ही जीते हैं। वर्तमान में रहने वाले लोग उनके अतीत के सहभागी नहीं होते, इसलिए वे वर्तमान की उपेक्षा करने लगते हैं। अतीत को अपने सर पर लादे हुए लोग कभी भी सुखी नहीं हो सकते। इसके लिए उन्हें अतीत के भूत को अपने सर से उतारना होगा, तभी स्थिति सँभल सकती है।

आज का इंसान इच्छाओं और महत्वाकांक्षाओं से पूरम्पूर है। जीवन एक ऐसा अस्पताल बन गया है, जहाँ मरीज को हमेशा दूसरे का बिस्तर ही अच्छा लगता है। वह यही देखता है कि सामने वाले के पास क्या-क्या है और उसके पास क्या-क्या नहीं है। उसके पास क्या नहीं है, यह चिंता उसे हमेशा सताती रहती है। जो उसके पास है, उसका उसे सुख नहीं है, बल्कि जो उसके पास नहीं है, उसका ही उसे सबसे अधिक दु:ख है। आज यही दु:ख का मूल कारण है। इसके अलावा एक बात और है, वह यह कि आज का सबसे बड़ा रोग, क्या कहेंगे लोग? लोगों को आज अपने आप पर इतना भी विश्वास नहीं रहा कि वे अपनी बात को दृढ़ता से रख सकें, उन्हें हमेशा इस बात का डर होता है कि उनकी इस हरकत से लोग क्या कहेंगे। कई बार अमीर बेटा अपने गरीब बाप को सबके सामने केवल इसीलिए गले नहीं लगा सकता, क्योंकि लोग उसके बारे में क्या सोचेंगे। इस चक्कर में वह अपने पिता का सच्चा प्यार भी नहीं पा सकता और न ही सुपुत्र होने का सुबूत ही दे सकता है।

इंसान केवल इतना जान ले कि हमारी अतृप्त उत्सुकता ही दु:ख का कारण है। दु:ख कहीं बाहर से नहीं आता, वह हमारी कल्पना से ही उपजता है। दु:ख को यदि किसी से डर लगता है, तो वह है हँसी। जहाँ हँसी का साम्राज्य है, वहाँ दु:ख फटक भी नहीं पाता। हँसी के सामने दु:ख कभी टिक नहीं पाया। जो दु:ख में भी हँस लेता है, वह सीधे ईश्वर से जुड़ जाता है, ईश्वर भी उनकी इस महानता के सामने नत हो जाते हैं। जो है उसी में संतुष्ट हो जाएँ, यही वह

मूल मंत्र है जिसके आगे बड़ी से बड़ी शक्तियाँ पराजित हो जाती हैं। जो अपने पास है उसकी खुशियाँ मनाएँ यही एक सत्य है जिसे हमें समझना है बस...

बुजुर्गों के जीवन में प्रकाश का द्वीप जलाएं

विश्व में वृद्धों एवं प्रौढ़ों के साथ होने वाले अन्याय, उपेक्षा और दुर्व्यवहार पर लगाम लगाने के उद्देश्य से प्रत्येक 1 अक्टूबर को अंतरराष्ट्रीय वृद्ध दिवस के रूप में मनाया जाता है, जिसे भिन्न-भिन्न-नामो से जाना जाता है जैसे- 'अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस', 'अंतरराष्ट्रीय वरिष्ठ नागरिक दिवस', 'विश्व प्रौढ़ दिवस' अथवा 'अंतरराष्ट्रीय वृद्धजन दिवस' इत्यादि। इस अवसर पर अपने वरिष्ठ नागरिकों का सम्मान करने एवं उनके सम्बन्ध में चिंतन करना आवश्यक होता है। इस दिवस का आधिकारिक तौर पर संयुक्त राज्य अमेरिका के पूर्व राष्ट्रपति रोनाल्ड रीगन द्वारा श्रीगणेश किया गया था। इस दिवस को मनाने का मुख्य उद्देश्य संसार के वृद्धों एवं प्रौढ़ों को सम्मान देने के अलावा उनकी वर्तमान समस्याओं के बारे में जनमानस में जागरूकता बढ़ाना है।

प्रश्न है कि दुनिया में वृद्ध दिवस मनाने की आवश्यकता क्यों हुई? क्यों वृद्धों की उपेक्षा एवं प्रताड़ना की स्थितियां बनी हुई है? चिन्तन का महत्वपूर्ण पक्ष है कि वृद्धों की उपेक्षा के इस गलत प्रवाह को कैसे रोके। क्योंकि सोच के गलत प्रवाह ने न केवल वृद्धों का जीवन दुश्वार कर दिया है बल्कि आदमी-आदमी के बीच के भावात्मक फासलों को भी बढ़ा दिया है। विचारणीय है कि अगर आज हम वृद्धों को अपमान करते हैं, तो कल हमें भी अपमान सहना होगा। समाज का एक सच यह है कि जो आज जवान है उसे कल बुढ़ा भी होना होगा और इस सच से कोई नहीं बच सकता। लेकिन इस सच को जानने के बाद भी जब हम बुजुर्ग लोगों पर अत्याचार करते हैं तो हमें अपने मनुष्य कहलाने पर शर्म महसूस होती है। मनुष्यता को शर्मसार करने की स्थिति है।

वरिष्ठ नागरिक समाज की अमूल्य विरासत होते हैं। उन्होंने देश और समाज को बहुत कुछ दिया होता है। उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों का व्यापक अनुभव होता है। हम आज परिवार, समाज एवं राष्ट्र को उंचाइयों पर ले जाने के लिए वरिष्ठ नागरिकों के अनुभव से लाभ उठा सकता है। लेकिन इसके

लिये वृद्धों का उपेक्षा एवं उदासीनता की त्रासद एवं विडम्बनापूर्ण स्थितियों को समाप्त करना होगा। वृद्ध अपने ही घर की दहलीज पर सहमा-सहमा खड़ा है, उसकी आंखों में भविष्य को लेकर भय है, असुरक्षा और दहशत है, दिल में अन्तहीन दर्द है। इन त्रासद एवं डरावनी स्थितियों से वृद्धों को मुक्ति दिलानी होगी। सुधार की संभावना हर समय है। हम पारिवारिक जीवन में वृद्धों को सम्मान दें, इसके लिये सही दिशा में चले, सही सोचें, सही करें। इसके लिये आज विचारक्रांति ही नहीं, बल्कि व्यक्तिक्रांति की जरूरत है।

वृद्धाश्रमों में बढ़ती संख्या इस बात का साफ सबूत है कि वृद्धों को उपेक्षित किया जा रहा है। हमें समझना होगा कि अगर समाज के इस अनुभवी स्तंभ को यूं ही नजरअंदाज किया जाता रहा तो हम उस अनुभव से भी दूर हो जाएंगे जो इन लोगों के पास है। सरकारी प्रयासों के साथ-साथ जनजागृति का माहौल निर्मित करना होगा, आज हम बुजुर्गों एवं वृद्धों के प्रति अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने के साथ-साथ समाज में उनको उचित स्थान देने की कोशिश करनी होगी ताकि उम्र के उस पड़ाव पर जब उन्हे प्यार और देखभाल की सबसे ज्यादा जरूरत होती है तो वो जिंदगी का पूरा आनंद ले सके। वृद्धों को भी अपने स्वयं के प्रति जागरूक होना होगा, जैसाकि जेम्स गारफील्ड ने कहा भी है कि यदि वृद्धावस्था की झुर्रियां पड़ती है तो उन्हें हृदय पर मत पड़ने दो। कभी भी आत्मा को वृद्ध मत होने दो।

वृद्ध समाज इतना कुंठित एवं उपेक्षित क्यों है, एक अहम प्रश्न है। अपने को समाज में एक तरह से निष्प्रयोज्य समझे जाने के कारण वह सर्वाधिक दुःखी रहता है। संयुक्त राष्ट्र ने विश्व में बुजुर्गों के प्रति हो रहे दुर्व्यवहार और अन्याय को समाप्त करने के लिए और लोगों में जागरूकता फैलाने के लिए अंतरराष्ट्रीय बुजुर्ग दिवस मनाने का निर्णय लिया। यह सच्चाई है कि एक पेड़ जितना ज्यादा बड़ा होता है, वह उतना ही अधिक झुका हुआ होता है यानि वह उतना ही विनम्र और दूसरों को फल देने वाला होता है, यही बात समाज के उस वर्ग के साथ भी लागू होती है, जिसे आज की तथाकथित युवा तथा उच्च शिक्षा प्राप्त पीढ़ी बूढ़ा कहकर वृद्धाश्रम में छोड़ देती है। वह लोग भूल जाते हैं कि अनुभव का कोई दूसरा विकल्प दुनिया में है ही नहीं। अनुभव के सहारे ही दुनिया भर में बुजुर्ग लोगों ने अपनी अलग दुनिया बना रखी है। जिस

घर को बनाने में एक इंसान अपनी पूरी जिंदगी लगा देता है, वृद्ध होने के बाद उसे उसी घर में एक तुच्छ वस्तु समझ लिया जाता है। बड़े बूढ़ों के साथ यह व्यवहार देखकर लगता है जैसे हमारे संस्कार ही मर गए हैं।

वृद्धों को लेकर जो गंभीर समस्याएं आज पैदा हुई हैं, वह अचानक ही नहीं हुई, बल्कि उपभोक्तावादी संस्कृति तथा महानगरीय बोध के तहत बदलते सामाजिक मूल्यों, नई पीढ़ी की सोच में परिवर्तन आने, महंगाई के बढ़ने और व्यक्ति के अपने बच्चों और पत्नी तक सीमित हो जाने की प्रवृत्ति के कारण बड़े-बूढ़ों के लिए अनेक समस्याएं आ खड़ी हुई हैं। वृद्ध लोगों के लिये यह जरूरी है कि वे ईश्वरीय ज्ञान को ओढ़े नहीं, बल्कि जीएं। ''सबका साथ, सब का विकास एवं सबका विश्वास'' की गूंज और भावना वृद्धों के जीवन में उजाला बने, तभी नया भारत निर्मित होगा।

जीवन में हमारी अभिलाषा

जीवन मे हम पाना क्या चाहते हैं ? एक अच्छी नौकरी, एक आलीशान घर , एक सुंदर पत्नी और सुंदर बच्चे , अपनी दुनिया, और फिर अनंत सपनें , जो आजतक किसी के पूरे नहीं हुए। यही सब है न? बेशक ये मानव की मूलभूत आवश्यकता है, पर क्या यही जीवन की परिणीति भी है ? आप ये सब जरूर प्राप्त करें , ये जरूरी भी है पर कहीं ऐसा तो नहीं कि इन सबके साथ साथ हम कुछ ऐसी चीजों के पीछे भी तो नही भाग रहे जो अनंत और व्यर्थ की दौड़ ही है बस। कहीं ऐसा तो नही कि ये अंतहीन दौड़ हमे मानव के स्वाभाविक गुणों से भी वंचित कर रहे हैं। आज का मानव बड़ा यांत्रिक तो नही होता जा रहा। वो सुख वहाँ खोज रहा है , जहाँ वे हैं ही नहीं।

अपने अहंकार को तृप्त करने को वो न जाने किन किन अंधी दौड़ों में भाग लिए जा रहा है। उसको न उगते सूरज को निहारने का समय है, न ही वो कभी अनंत उन्मुक्त चाँदनी में नहा पाता है। कभी किन्ही दरख्तों के पास भी नहीं दिखता, न ही उन अल्हड़ पंक्षियों के बीच उठते संगीत सुन पाता है। कही पूरा भर गया है घर से , गाड़ी से और पता नहीं किस किस से। जगह छोड़ा कहाँ, सब व्यर्थ की चीजों से भर दिया, वो श्रेष्ठ से भी संतुष्ट नहीं उसे श्रेष्ठतम चाहिए और कमाल की बात है कि वो आने वाली पीढ़ियों को भी वैसा ही बना रहा है, जो अपने न कर सका वो उनसे कराना चाहता है, वो ये भी भूल जाता है कि तुलना मशीन की होती है न कि जागृत स्वस्थ सजीव की वो बच्चों में परफेक्शन खोजता है और उसका खुद का जीवन परफेक्शन के करीब ही नहीं। जिस उम्र में बच्चों को बच्चा होना चाहिए , उन्हें उसी उम्र में बूढ़ा बनाने लग जाता है। संस्कार तो दे नहीं पाता वरन उनके अंदर के स्वस्थ आत्मा को चाभी से संचालित करने लग जाता है।

आइए जीवन संगीत को सुनें जो है, जैसे है सब पूर्ण है यहाँ! अधूरा कुछ नहीं। पूर्ण आप स्वयं से हैं और अपूर्ण भी स्वयं से ही। स्वयं के करीब आइए,

उसे पूरी सजगता में सुनने और स्वीकार करने की कोशिश कीजिए। आइए एक कदम मानव होने को उठाएँ, मशीन होना तो वैसे भी बहुत सरल है।

प्रफुल्ल सिंह

हम पर्यावरण का ख्याल रखें, पर्यावरण हमारा ख्याल रखेगा

भारतीय संस्कृति में ऋषि-मुनियों ने पर्यावरण को स्वच्छ और वातावरण को स्वस्थ रखने के लिए अनेक व्यवहारिक पक्ष समाज को दिए हैं। धरती पर जीवन संतुलित बना रहे, आबाद रहे इसके लिए पर्यावरण संरक्षण आवश्यक है। मनुष्य, पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, वन, पहाड़, नदी, झील आदि के महत्व को उन्होंने जाना और समझा। इसके संरक्षण हेतु अनेक मार्ग भी बताए। जब हम स्वच्छ पर्यावरण की बात करते हैं, तो यह केवल हानिकारक गैसों और रसायनों से मुक्त होने की बात नहीं होती। पर्यावरण में हमारे आस-पास का सारा माहौल शामिल है। इस माहौल को दूषित करने के अपराध सहभागी हर वह व्यक्ति है, जो कहीं भी थूक देते हैं, गुटका-पाउच, पॉलीथिन सड़कों पर कहीं भी फैंक देते हैं। अपने घर का कचरा समेटकर किसी तरह थैले में ठूंस कर कहीं भी पटक आते हैं, जला देते हैं ...। क्या आपको अंदाजा है कि कचरे के प्रकार, मात्रा और उसके उचित निस्तारण के प्रति अपने उदासीन रवैये के चलते पर्यावरण को क्षतिग्रस्त करने में हम सब बहुत बड़ी भूमिका निभा रहे हैं।

आधुनिक युग में वैज्ञानिक और तकनीकी विकास का एक भयानक पहलू है पर्यावरणीय असंतुलन।जिसके कारण धरती की सेहत लगातार गिरती जा रही है। धरती पर पादप जगत और जीव जगत एक दूसरे पर आश्रित हैं। यह सहजीवन जितना सहज होगा, दुनिया मे उतनी ही खुशहाली, हरियाली रहेगी। हजारों सालों से यह संतुलन बरकरार रहा, लेकिन धीरे धीरे जब इंसानी आबादी विस्तार लेने लगी और उसके अस्तित्व के लिए प्राकृतिक संसाधन कम पड़ने लगे, तो इसके लिए पेड़ -पौधों को काटा जाने लगा। नदियों को बाँधा जाने लगा और पहाड़ों को क्षरित किया जाने लगा, तो पर्यावरण संतुलन बिगड़ने लगा। परिणामतः मानव जाति के अस्तित्व को ही खतरा पैदा हो गया। यह ठीक है कि विज्ञान ने हमको बहुत कुछ दिया है, जिससे मानव बहुत

सरल व सुखी हो गया है। परंतु अपनी तृष्णाओं व अनन्त विकास-विस्तार, संवेदनहीनता, बौद्धिकता की लालसा, बेइंतहा भाग-दौड़ से मानवता का स्वभाव भी अधिक मारक व उग्र होता जा रहा है। तकनीकी के ज्यादा प्रयोग और मुनाफा कमाने के चक्कर में मानव ने जल, थल, नभ सभी कुछ को ही मथ डाला है। आज मानव विकास के मार्ग पर तेजी से बढ़ रहा है वहीं बड़े-बड़े कल-कारखानों की चिमनियों से लगातार उठने वाली जहरीली गैसें, धुआँ वायुमंडल में घुलती जा रही है। बड़ी-बड़ी मशीनों का शोर वायु प्रदूषण के साथ-साथ पर्यावरण को दूषित कर रहा है। प्राणवायु देने वाले पेड़ों को काटकर राजमार्ग बनाये जा रहे है। कॉलोनियां बसाई जा रही है। इससे धरती पर जीवनदायनी ऑक्सीजन की कमी होती जा रही है। मनुष्य के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। कई तरह की बीमारियां पनप रही है।

मानव जीवन को भौतिक सुविधाएं तो प्राप्त हो रही है, परन्तु पृथ्वी पर मौजूदा जीवन आधारित स्रोत तेजी से समाप्त होते जा रहे हैं । भूमि के अतिरिक्त दोहन व उत्खनन से जैव-विविधता, पशु-पक्षी, वनस्पति, जल, नदियां, तालाब, झीलें, पहाड़ धीरे-धीरे विलुप्ति के कगार पर पहुंच रहे हैं। विभिन्न प्रदूषणकारी तत्वों के उत्सर्जन के साथ धरती के तापमान में लगातार बढ़ोतरी ने धरती के ऋतु चक्र को ही गड़बड़ा दिया है। युद्ध जैसी विभीषिकाओं से उत्सर्जित रासायनिक पदार्थ व गैसें हमारे प्राकृतिक संसाधन को ही नहीं, बल्कि समूचे वायुमंडल को विषाक्त कर रहे हैं। पूरी धरती का दम प्रदूषण से घुट रहा है। इस घुटन के प्परिणाम स्वरूप ही तो प्राकृतिक आपदाएं बढ़ने लगी है। भूकम्प, अतिवृष्टि, पहाड़ों के टूटना, सुनामी जैसे खतरे बढ़ने लगे गए हैं। इन बढ़ते खतरों से मानव जीवन का अस्तित्व ही खतरे में पड़ता जा रहा है। हम इस बात पर गर्वकर सकते हैं कि मोबाइल फोन, लेपटॉप, कम्प्यूटर, टी. वी., माइक्रोवेव ओवन, मेडिकल उपकरण, एयर कंडीशनर आदि की संख्या कुल आबादी से कई गुनाअधिक हो गई है।हर दिन इनमें से कई हज़ार खराब होते हैं या पुराने होने के कारण कबाड़ में डाल दिए जाते हैं। सभी इलेक्ट्रिक उपकरणों का मूल आधार ऐसे रसायन होते हैं जो जल, जमीन, वायु, मानव और समूचे पर्यावरण को इस हद तक नुकसान पहुंचाते हैं कि उबरना लगभग ना मुमकिन है। यही ई-कचरा है। यही बात प्लास्टिक व

प्लास्टिक उत्पादों के बारे में कहीं जा सकती है। इनसे निकलने वाले जहरीले तत्व और गैसें मिट्टी व पानी मे मिलकर उन्हें बंजर और विषैला बना देती है।

पृथ्वी, जल, अग्नि, हवा तथा वनस्पति ये सब पंचभूत तत्व मिलकर पर्यावरण की रचना करते हैं। इन सबमें प्रकृति जन्य संतुलन बना रहना मनुष्य जीवन के लिए आवश्यक है। धरती के स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिए हमें अपनी जीवन चर्या को इर तरह नियंत्रित करना चाहिए कि जिससे प्रकृति के साथ सहयोग, समन्वय और समरसता बनी रहे। उपभोगवादी संस्कृति और अति स्वार्थपूर्ण प्रवृतियों को बदलने की जरूरत है, तभी मानवता का भविष्य व पृथ्वी का अस्तित्व सुरक्षित रह सकता है। विश्व के विभिन्न देशों की सरकारों को जागरूक होकर पर्यावरण संरक्षण के लिए कारगर उपायों की तरफ शीघ्रता से चिंतन करना चाहिए। बूंद-बूंद से घड़ा भरता है। सरकारें तो इस दिशा में कार्य करेगी है, पर धरती के आम नागरिक होने के नाते पर्यावरण संरक्षण के लिए हर व्यक्ति अपने-अपने प्रयास ईमानदारी पूर्वक करने चाहिए। व्यक्ति अपनी सोच, अपने कर्म, अपने उद्देश्य को बदलें। सबको सही समय पर दिशा मिले, क्योंकि बिना महत्वाकांक्षी-मन को संयमित किये पर्यावरण दूषित होने से बच नहीं सकता। कितनी विचित्र बात है कि एक मनुष्य ही ऐसा प्राणी है, जो सब कुछ पाकर भी खुद को खो देने के जतन में लगा है। दूसरों की समस्याओं का समाधान ढूँढते-ढूँढते स्वयं अपनी अस्मिता और अस्तित्व खोने की ओर अग्रसर है। कहाँ गया वो आदमी, जो स्वयं को कटवाकर भी वृक्षों को कटने से रोकता था? गोचर भूमि का एक ग़ज़ टुकड़ा भी किसी को हथियाने नहीं देता था। जिसके लिए जल की एक-एक बूंद भी जीवन जितनी कीमती थी। कत्लखानों में कटती गायों की निरीह आहें जिसे बेचैन कर देती थी।जो वन्य जीवों के संरक्षण के लिए पेड़ लगाना अपना धर्म मानता था। वातावरण को स्वच्छ करने के लिए तुलसी का पौधा हर घर -आँगन की शोभा हुआ करता था। जो आदमी धरती को माँ की तरह सम्मान देता था, अफसोस कि ऐसा आदमी दुनियावी विकास की आंधी में कहीं खो गया है। आज आदमी खुद पर्यावरण बैरी बन गया है। जब आदमी के भाव, विचार और कर्म बदलते हैं तो उसका प्रभाव बाहरी पर्यावरण पर भी पड़ता है। दूषित पर्यावरण दूषित वृत्तियों का परिफलन है। इस लिए जरूरी है कि प्रकृति-

संतुलन और सुरक्षा के लिए व्यक्ति स्वयं के चरित्र को बदले। शुरुआत हमें अपने आप से करनी होगी।

आज हमारी फैलाई गंदगी हमारी ही सांसों में घुल रही है, भोजन-पानी मे मिल रही है। हमारा फैलाया कचरा हमें ही बीमार कर रहा है। क्या हम जानते हैं कि पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने में हम खुद रोज कितना योगदान देते हैं? एकबार अपनी जीवन शैली पर नज़र डालें। रोज जाने -अनजाने कितना कचरा फैलाते है हम? भारत मे सार्वजनिक स्थलों, धर्मस्थलों, बाग-बगीचों आदि जगहों पर फैली गंदगी को देखकर बाकी दुनिया को लगता है कि गंदगी फैलाना हमारा मौलिक अधिकार है। क्या आप कभी ऐसा सोचते है? हम विदेशों में जाते हैं, एयरपोर्ट या हाई प्रोफाइल मॉल में जाते हैं तो वहां चिप्स का खाली पैकेट या चॉकलेट का रैपर भी डस्टबिन नहीं दिखने पर जेब में रख लेते हैं, तो हर जगह सही काम क्यों नहीं करते? अपने आप को धार्मिक कहते हैं लेकिन धर्मस्थलों पर गंदगी फैलाने से बाज़ नहीं आते? दुनिया भर में आप अपने प्रकृति प्रेमी होने का ढिंढोरा पीटते हैं, और विकास के नाम पर सैकड़ों पेड़ कटवा देते हैं। क्या आप पर्यावरण की महत्ता, उसकी सुरक्षा का समुचित ज्ञान अपने बच्चों को देते हैं? कोई भी कार्य केवल सरकार के बूते नहीं हो सकता। पर्यावरण की स्वछता नागरिकों का भी कर्तव्य है। हम बस एक बार अपनी जीवन शैली पर नज़र डालें। किसी के प्रति नहीं, हम खुद के, अपने परिजनों और आनेवाली अपनी पीढ़ियों के प्रति जवाबदेह हैं। गंदगी केवल बीमार पर्यावरण, घ्रणित हालात, लोग और माहौल पैदा करेगी। जब समय और पीढ़ी सवाल पूछेगी, तो क्या हमारे पास जवाब होगा? धरती की पुकार कानों में कसक पैदा कर रही है कि पर्यावरण के सुधार के लिए लग जाओ ताकि स्वच्छ हवा, पानी मनुष्य को मिलता रहे। धरती को पेड़ों से आच्छादित करदो ताकि जीवनदायिनी हवा कम न हो। मानव जीवन बचाना है तो पर्यावरण बचाना ही हमारी प्राथमिकता हो। अगर आप देश, समाज के लिए मुफ्त में कुछ करना चाहते हैं, तो गंदगी न फैलाएं। यह पाप मत कीजिये। खुद सफाई रखिये और इसके लिए आगे बढ़कर पहल कीजिये। पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभावों से बचने के लिए पेड़ों को बचाइए, गंदगी मत फैलाइये

और पर्यावरण के बैरी बनने से बचिए। धरती और मानवता आपकी आभारी रहेगी।

प्रेम अपरिभाषित है

प्रेम को परिभाषित करना इस संसार के कई असंभव कामों में से एक है। प्रेम को परिभाषित नहीं किया जा सकता पर अपने-अपने ढंग से इसकी व्याख़्या ज़रूर की जा सकती है। इसके अनगिनत पक्ष और अनगिनत रूप हैं। प्रेम का शून्य होना और अपने चरम पर होना, दोंनो ही वहम् है पर जो प्रेम में हैं, निभा रहे हैं, उनके लिए इससे बड़ा सच और भरोसा दूजा कुछ नहीं।

जब भी कोई प्रेम को परिभाषित करने निकला, उसने प्रेम को नकारते हुए, अनजाने में ही सही परन्तु उसके मूल अस्तित्व को अनदेखा करते हुए स्वार्थ की राह चुनी और लिखा अपने मन के भावों को।

इतना दुर्व्यवहार झेलने के बाद भी जो अपनी जगह ज्यों का त्यों बना रहा है वह प्रेम ही तो है। अंतर्मन की गहरी भावनायें भी गहरे कुएँ के नीर के समान प्रेम, बन कर रह गया प्रेमियों के नेत्रों का अश्रु मात्र।

जो कृष्ण ने राधा से किया , जो शिव जी ने गौरी माता से किया, उस प्रेम की उपमा दी गयी पर उसको परिभाषित न किया जा सका, संभवत: यह उच्चतम चोटी है प्रेम की। यह उपाधि सभी उपाधियों की पराकाष्ठा है। जो ईश्वर से जुड़ी है, भला उससे श्रेष्ठ क्या है जग में, अंतत: मनुष्य ने स्वीकारा है नाम प्रभु का और उनसे जुड़ी उपमायें, उसने सही समझा प्रेम को परिभाषित करने की चेष्टा ना करना। विरह और बिछोह, ये दो नेत्र हैं प्रेम के। जब भी प्रेम को लिखा गया, ये दोंनो प्रेम का अग्र और मुख्य भाग बन कर उभरे।

मैं अपनी बात करूँ तो मेरे लिए प्रेम जीवन का आधार है। जीवन में एक ऐसे साथी का होना जो पहले आपके भावनात्मक पहलू पर ज़ोर दे, तत्पश्चात उसे सुदृढ़ करे, वही सच्चा प्रेमी है। जो मन से जुड़े किसी तार की तरह और उत्पन्न करे संचार और अपार रौशनी। जो प्रेम और प्रेमी को अलग रखे। एक ऐसे इंसान का होना जो आपसे प्रेम निभाये, जिसके होने से आप आत्मिक तौर पर पूर्ण हो जायें, आपके सभी पक्षों पर ग़ौर करे। यह सब होने के बाद भी

जो प्रेम का केंद्र हो और जो केवल आपके लिए प्रेम को परिभाषित करता हो, जो आपके लिए प्रेम को परिभाषित करने की जीती जागती मूरत हो।

और भी बहुत कुछ लिखा जा सकता था पर अभी के लिए बस इतना ही समेट पा रहा हूँ..!!

प्रकृति स्वभाव:सात्विक,राजसी और तामसी

मनुष्य जन्मता है, फिर उसमें अपने कुल-धर्म के अनुसार संस्कार पड़ते हैं। कोई झूलेलाल का, कोई गणपति का, कोई रामजी का, कोई शिवजी का, कोई अल्लाह का भगत बनते हैं। भगत तो बन गये लेकिन आदत सबकी अलग-अलग होती है। किसी की सात्विक, राजस, और तामसी आदत होती है। जैसा संग मिलता है वैसी आदत पुष्ट होती है। जैसा रिलेशन, कम्पनी, साहित्य मिलता है, खान-पान, रहना-करना। १० प्रकार के साधनों का असर पड़ता है। जैसे माता-पिता के, दादा-दादी, नाना-नानी स्वभाव का बच्चे पर असर पड़ता है ऐसे ही खान-पान का, शास्त्र का, मंत्र का, संग का प्रभाव पड़ता है।

तो इसमें ३ मुख्य गुण होते हैं। सात्विक, राजसी और तामसी स्वभाव। जो आया वो खा लिया, जो आया वो बोल दिया, जो दिल में आया कर डाला कुछ सोचा नहीं। जिसकी तामसी आदत है आलस्य, निद्रा, झूठ, कपट तो ये तामसी, राजसी स्वभाव के लोग हैं। तामसी स्वभाव अगर छुपा-छुपा के करते गये तो मरेगा तो कीड़क योनि में जायेगा, साँप, मेंढ़क, पतंगिया, छछूंदर, दूसरी ऐसी तमस प्रधान योनि होती हैं।जिनका राजसी स्वभाव बन जाता है, राजसी स्वभाव का बहलिया होता है और पाप ज्यादा नहीं करते तो मरने के बाद मनुष्य योनि में आते हैं। राजसी स्वभाव में लोभ, काम, क्रोध होता है लेकिन साथ-साथ में पाप से बचता रहता है। जब भूल कर लेता है तो पश्चयताप कर लेता है। ऐसे जमा-उधर गाड़ी चलती है वो राजसी स्वभाव के होते हैं। राजसी स्वभाव में भी सात्विक का अंश ज्यादा है तो ऊँचे कुल का होगा। और तामसी स्वभाव ज्यादा है तो नीच योनि का मनुष्य होगा। कहीं अनपढ़ वातावरण में, झोपड़-पटी में, शराबी-कबाबी के घर में। अथवा तो राजसी है लेकिन कुछ शुभ कर्म ज्यादा हैं तो किसी संत के, भक्त के, अच्छे कुल के संस्कार वाले में जन्म लेगा।

अगर सात्विक स्वभाव ज्यादा बन गया, जप, ध्यान, परोपकार, सेवा की आदत पड़ गयी, सादगी से रहने की पवित्र आदत पड़ गयी, सत्य बोलने की आदत पड़ गयी, सयंमी रहने की आदत पड़ गयी तो वो सात्विक हो गया। तो मरने के बाद देव लोक में दिव्य भोग भोगेगा खूब सुख भोगेगा बाद में या तो श्रीमान, पवित्र कुल में जन्म लेगा या तो किसी योगी के घर जन्म लेगा।

और बचपन से ही उसको ऐसे संस्कार, वातावरण मिल जायेगा के वो भगवान को पा लेगा। लेकिन जो सात्विक स्वभाव के हैं, और स्वर्ग नहीं चाहते हैं, ईश्वर ही चाहते हैं, मुक्ति ही चाहते हैं तो फिर वे देवताओं के भोगों को तुच्छ समझने वाले, सात्विक स्वभाव वाले खोजते हैं के मुक्ति कैसे मिले, भगवान कैसे मिलें ?

भगवत प्राप्ति की इच्छा वाले दो प्रकार के होते हैं। एक तो सगुण, साकार भगवान को पाना चाहें, कृष्ण, राम, शिव, गणपति भगवान। तो उन्हीं की पूजा करते-करते मर जायेंगें तो उन्ही के लोक में जायेंगे। दूसरे वो होते हैं भगवान जिससे भगवान हैं, शिव जिससे शिव हैं, गुरु जिससे गुरु हैं, वो महान तत्व क्या है ? उसकी जिज्ञासा होती है। तो फिर ब्रह्मज्ञानी के सम्पर्क में उनकी रूचि होंगी, वो खोज लेंगें, वहाँ पहुँच जायेंगें। फिर ब्रह्मज्ञान का विचार करेंगें। कृष्णजी का, रामजी का नहीं, ब्रह्मज्ञानी गुरु ने जैसा उपदेश दिया है उसी प्रकार ब्रह्म परमात्मा की उपासना, आराधना करेंगें।

ब्रह्म परमात्मा की उपासना, आराधना करने वालों में भी २ प्रकार के लोग होते हैं। एक तीव्र साधन करता है, दूसरा मंद करता है। तीव्र साधन वाला तो जल्दी ब्रह्म परमात्मा को पा लेगा, और जिसका ढीला साधन है तो मरते दम तक परमात्मा का साक्षात्कार तो नहीं कर सकेगा, लेकिन साक्षात्कार की इच्छा है। तो मरने के बाद अगर उसकी साधना एकदम मंद है, तो सवर्ग का सुख भोगकर फिर आकर किसी अच्छे वातावरण में यात्रा करेगा।

अगर उसकी तीव्र साधना है, तर-तीव्र नहीं तीव्र तो मरने के बाद बरहम लोक में जायेगा। जैसे गुरु को आश्रम में रहने का वातावरण मिलता है वैसे ही शिष्यों को मिल जाता है, जिस धरती पे गुरु रहते हैं, उस धरती पे शिष्य रहते हैं। तो ऐसे ही जैसे ब्रह्माजी को मिलता है ऐसे ही बरह्मलोक का वातावरण, सुख सामग्री वहाँ रहने वालों को भी मिल जाता है। लेकिन ब्रह्माजी के

अधिकार अपने रहते हैं, ब्रह्म लोक निवासी के अपने रहते हैं। जब प्रलय होता है, तब ब्रह्म लोक निवासी, ब्रह्माजी का तत्व ज्ञान का उपदेश सुनके उस ब्रह्म परमात्मा में लीन हो जाते हैं। जिसकी सत्ता से तमाम सूरज, आकाश गंगाएं और पुरे ब्रह्माण्ड चलते हैं, उस परब्रह्म का आखरी उपदेश, क्योंकि पहले तो सुन के आया धरती पर से, लेकिन कच्चा रह गया। तो आखरी उपदेश ब्रह्माजी का सुनके ब्रह्म लोक को, ब्रह्म परमात्मा को पा लेगा।

वृद्धि और विकास की प्रमाणिकता

परिवर्तन प्रकृति का नियम है। चेतन या निर्जीव वस्तुएं सभी परिवर्तन के अधीन हैं। जीवन के प्रवाह और चक्र को बनाए रखने के लिए चेतन वस्तुओं को मुख्य रूप से निर्जीव वस्तुओं से अलग किया जाता है। बीज, मिट्टी में अंकुरित होने के बाद पौधे के रूप में विकसित होते हैं और फिर विशिष्ट पौधों या पेड़ों के रूप में विकसित होते हैं, जो फूल में बदल जाते हैं और आगे अंकुरण के लिए बीज या फल पैदा करते हैं। पक्षियों, जानवरों और मनुष्यों के साथ भी ऐसा ही होता है, जो नर और मादा के बीच यौन संबंध के माध्यम से प्रजातियों की विशिष्ट विशेषताओं के संचरण के द्वारा अपनी तरह का प्रजनन कर सकते हैं।

जहां तक मनुष्य का संबंध है, पिता के शुक्राणु कोशिका द्वारा मां के डिंब (अंडे की कोशिका) के निषेचन की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप माता के गर्भ में जीवन की शुरुआत होती है। माँ का गर्भ तब नए जीवन के विकास और विकास के लिए साइट और अर्थ बन जाता है और यह केवल नौ महीने के बाद होता है कि बच्चा एक नए जन्म के रूप में दुनिया में आने में सक्षम होता है। मां के गर्भ में बिताए गए समय को प्रसव पूर्व अवधि कहा जाता है और आमतौर पर एक कालानुक्रमिक उम्र की गणना में शामिल नहीं किया जाता है।

मानव सहित सभी जानवरों में, जन्म के पूर्व की अवधि मिट्टी से बाहर आने के लिए एक अंकुरित बीज द्वारा लिया गया समय जैसा दिखता है, जो तब बढ़ता है और एक पूर्ण विकसित पौधे या पेड़ में विकसित होता है। वे प्रक्रियाएँ जिनके द्वारा एक अंकुरित बीज या गर्भित जीव को परिपक्व पौधे में बदल दिया जाता है या पूर्ण विकसित होने को सामूहिक रूप से वृद्धि और विकास कहा जाता है।

विकास एक बच्चे के आकार या बच्चे के कुछ हिस्सों में प्रगतिशील वृद्धि है। विकास विभिन्न कौशल (क्षमताओं) का प्रगतिशील अधिग्रहण है

जैसे सिर का समर्थन, बोलना, सीखना, भावनाओं को व्यक्त करना और अन्य लोगों के साथ संबंधित। वृद्धि और विकास साथ-साथ चलते हैं लेकिन अलग-अलग दरों पर।

वृद्धि और विकास का आकलन करने का महत्व

विकास और विकास का आकलन बच्चे के स्वास्थ्य और पोषण की स्थिति का पता लगाने में बहुत मददगार है। लगातार सामान्य वृद्धि और विकास एक बच्चे के स्वास्थ्य और पोषण की अच्छी स्थिति का संकेत देते हैं। असामान्य वृद्धि या वृद्धि विफलता बीमारी का एक लक्षण है। इसलिए, विकास की माप शारीरिक परीक्षा का एक अनिवार्य घटक है।

वृद्धि और विकास को प्रभावित करने वाले कारक

प्रत्येक बच्चे का पथ वृद्दि और विकास का पैटर्न आनुवंशिक और पर्यावरणीय कारकों द्वारा निर्धारित किया जाता है। आनुवांशिक कारक वृद्धि और विकास की क्षमता और सीमाओं को निर्धारित करते हैं। यदि अनुकूल हो, तो पर्यावरणीय कारक, जैसे पर्याप्त पोषण, वृद्धि और विकास की आनुवंशिक क्षमता की उपलब्धि को सुविधाजनक बनाते हैं। प्रतिकूल कारक, अकेले या संयोजन में कार्य करना, वृद्दि और विकास को धीमा या रोकना। कुछ प्रतिकूल कारक कुपोषण, संक्रमण, जन्मजात विकृतियां, हार्मोनल गड़बड़ी, विकलांगता, भावनात्मक समर्थन में कमी, खेल की कमी और भाषा प्रशिक्षण की कमी हैं। अनुकूलतम विकास को बढ़ावा देने के लिए, इन पर्यावरणीय कारकों को हटाया या कम किया जा सकता है। एक बार जब वे हटा दिए जाते हैं, तो वृद्धि को पकड़ने की अवधि होती है। इस अवधि के दौरान विकास दर सामान्य से अधिक है। यह वृद्धि दर तब तक जारी रहती है जब तक कि पिछले विकास पैटर्न नहीं पहुंच जाता है। फिर विकास दर व्यक्ति के आनुवंशिक कारकों द्वारा निर्धारित सामान्य दर तक कम हो जाती है। एक बच्चा आनुवंशिक रूप से लंबा होने के लिए निर्धारित होता है एक बच्चे के आनुवंशिक रूप से छोटा होने की तुलना में थोड़ा अधिक तेजी से बढ़ता है। इसी तरह, एक बच्चा आनुवंशिक रूप से चतुर होने के लिए निर्धारित होता है, जो कि कम बुद्धिमान होने के लिए आनुवंशिक रूप से निर्धारित बच्चे की तुलना में अधिक तेजी से अपनी बुद्धि विकसित करता है।

लिखने की ललक

"लेखन कला जीवन की रीत, शाश्वत जीवन ईश्वर की प्रीत"

यदि आपके पास कोई विचार है, तो बस उसे लिखें। भविष्य के किसी भी संपादन, संशोधन और पुनर्लेखन के बारे में न सोचें। अपने काम को प्रकाशित करने के बारे में चिंता न करें। बस अपने विचारों को लिखें।

अपने बहुमूल्य सृजन को अपने विचारों को अपने मस्तिष्क में समाप्त न होने दें। यदि आप ऐसा करते हैं तो आपको अपने लेखन को बाद में पढ़ने पर समझ में आएगा कि आपने जो लिखा है, आपने जो रचा

है, आपने जो बनाया है, उसमें भी एक ध्यान शामिल है, उसका भी केंद्र है।

आपका लेखन भी प्रकाशन के योग्य है केवल आप ही ऐसे व्यक्ति हो जो अपने लेखन को तुलनात्मक दृष्टिकोण रखने के कारण दूसरों से अल्पज्ञ समझते हो।

यदि लेखन करना है तो सबसे पहले अपने भीतर एक अनुभवी लेखक होने की ललक को जगाना चाहिए। प्रश्न यह भी है कि लेखन कार्य कौन करने को आगे बढ़ता है लेखन वही करने को आगे बढ़ता है जिसके अंदर भाषा की समझ, शब्द विस्तार, जिंदगी के अनुभव और सशक्त भावनाएं हो।

भाषा की शुद्धता और भावना किसी भी लेखन का प्राण होती है। हम जीवन को प्रतीक के रूप में, अक्षर ब्रह्म के रूप में गढ़ते है। जीवन प्रतीक एक विशाल वृक्ष की तरह है। यह वृक्ष हमारे व्यक्तिगत विकास, विशिष्टता और व्यक्तिगत सौंदर्य का प्रतिनिधित्व करता है।

जिस तरह एक पेड़ की शाखाएं अपनी जड़ों को मजबूती से पकड़े होती हैं और आकाश की ओर बढ़ती हैं, वैसे ही हमे भी अपने लेखन को एक वृक्ष की मजबूती के जैसे विस्तार देते जाना चाहिए। स्पष्ट ज्ञान और ज़िंदगी के नित नए अनुभव से हमें धरा पर जीवन के नौ-रस को बरसाने का पुण्य कर्म प्राप्त हुआ है।

हर रस में ईश्वर की जीवनदायी उपस्थिति ही शाश्वत जीवन की पूर्णता है।

जीवन परिधि : जहाँ से शुरू वहीं पर अंत

जबसे दूरियों का मापन समय में होने लगा, समय की चाल और बढ़ गई। समय और आगे चलता चला गया। हम नापते रहे, वह दूरपार होता रहा। एकान्त के क्षण कम होते गए। व्यक्ति स्वयम को ओढ़ना-बिछाना भूल गया। शीघ्रता की समझ अधीरता में परिवर्तित हो गई। समय सिकुड़ता चला गया और व्यक्ति अपने को समेट न सका। कहते हैं कि समय की चाल बड़ी तीव्र होती है। इतनीं तीव्र कि सूर्य भी उसमे सिमट आता है। वास्तविकता तो यह कि सूर्य न तो उदय होता है और न ही अस्त। किन्तु हमारे समय की सांसारिक समझ उसी के चतुर्दिक गति करती है। हम सूरज से न केवल जैविक रूप से सम्बद्ध हैं, अपितु वह समय की पतली धार को पृथ्वी की धुरी पर उड़ेलता है। हमारी पृथ्वी अपने अक्ष पर चौबीस घण्टे में घूम आती है। यदि यह न घूमती तो दिन-रात की यह पहेलियाँ कहाँ से होती। यह घूमना भी समय-चक्र का ही एक अंश है। अत्यन्त सूक्ष्म अंश। यह इतना सूक्ष्म है कि हमे इसका अनुभव तक नही होता। उधर धरती चुपचाप घूमती है। इधर हम बोलते हुए। ऐसी ही कितनी चुप्पियाँ इस ब्रह्मांड में पसरी हुई हैं। ग्रहों की चुप्पियाँ। नक्षत्रों की चुप्पियाँ। उल्का पिण्डो की चुप्पियाँ। सहस्र चुप्पियाँ।

एक तारे को दूसरे तारे की सूचना नही।छिटके तारे, ज्यों किसी ने उन्हें छींट दिया हो। अनगिन एकान्त। देखकर तो यों लगता है जैसे हम कूदकर एक से दूसरे पर चले जायेंगे। किन्तु वहाँ पहुँचने में अनथक चाल भी थक जाए। इतना एकान्त। ऐसे ही एकान्त पसरा है अस्तित्व के हर छोर पर। अन्तरिक्ष के हर छोर पर समय की चाल गणनात्मक रूप से भिन्न, किन्तु समय तो बस वही एक न। ऐसा एकान्त। धरती भी अपना समय पूर्ण करेगी। यह शेष भी अशेष होगा। तो वह कौन धरती होगी, जहाँ हम होंगे। पुनः एक एकान्त। समय सूचनाएँ नही भेजता। वह पसीजता रहता है। वह अनवरत है। जब कुछ न होगा तो भी वह होगा। वह चलता रहेगा। उसे इसबात की कोई चिन्ता नही कि उसे नापने वाला कोई है भी या नही। हर मापक विदा हो जाता है। कोई वय नापते,

कोई अर्जित नापते, कोई दूसरे को नापते।आदमी नपते हुए नापता है। न यह नाप कभी पूरी होती है और न ही समय रुकता है। वह रत्ती-रत्ती बढ़ता है और अनाहट ही द्वार पर साँझ की थपकन छोड़ जाता है। तब सम्भवतः उसके जीवन के इस अन्तिम छोर पर, इसबार का अन्तिम एकान्त घिर जाता है। और वह चल देता है सुदूर किसी घटते हुए नव-एकान्त के द्वार।

मैं वारंवार ऐसे क्षण दुहराता हूँ। जो गीत अवचेतन को छलता है, उसे रच-रचकर गाता हूँ। यह दुनिया काठ के गीत सम है। धुन की अपरिचित रहस्यों को समेटे। और रहस्यों का हरक्षण मरण। ऐसे ही हर क्षण को अपने मे मरते हुए देखता हूँ। यह कुछ और करे न करे, मुझे और कुछ करने से बचा ले जाता है। तिसपर भी मुझमें जो बचता है, उसे पुनः अपने को ही सौंप देता हूँ। छोड़ देता हूँ समय पर कि मुझे वो मुक्त होकर बाँच सके। समय की यह मुक्ति ही मेरा मापन है। और मैं इसी एकान्त को दोहराता हूँ।

कर्म अपने कर्ता को पहचान लेता है

समय तटस्थ व निरपेक्ष रहते हुए साक्षी भाव से चराचर जगत की समस्त घटनाओं को देखता रहता है। वह कर्ता नहीं है ,वह निर्दोष है। फिर भी पता नहीं क्यों ? लोग स्वभावतः चालाकी से या अवसर देखकर दूसरों के ऊपर दोष मढ़ने का अभ्यासी होने के कारण प्रतिकूल परिणामों के लिए समय को कारण मानते हैं। अगर समय को ही श्रेय देना हो तो ईमानदारी से सभी कर्मों को समर्पित कर देना चाहिए जो निश्चित रूप से कल्याणकारी होगा। समय तो कभी अच्छा या बुरा नहीं होता है। अच्छे-बुरे होते हैं व्यक्ति द्वारा कर्ता भाव से किये गए कर्म। कर्म छोटा हो या बड़ा, उसके फल को निश्चित रूप से भोगना ही पड़ता है। उससे बचा नहीं जा सकता है। कहा गया है कि, जिस प्रकार हजारों हजार गायों के समूह में बछड़ा अपनी माँ को पहचान लेता है, वैसे ही कर्म अपने कर्ता को पहचान लेता है। इसलिए कर्म करते समय सजग रहने की आवश्यकता है। गीता में कहा गया है कि, "कर्मों की कुशलता ही योग है।" आशय यह है कि कर्म इस प्रकार(निष्काम) किए जाएं कि उसका फल कर्ता को भोगना न पड़े। इसलिए आवश्यक है कि,कर्मफल को सहर्ष स्वीकार करते हुए कम से कम अच्छे कर्म करने का और सर्वोत्तम है कि निष्काम कर्म करने का निरन्तर अभ्यास करना। इसी में शान्ति भी है और मुक्ति भी..!!

प्यार और स्नेह

सारा संसार मोह और भ्रम में डूबा हुआ है। जीवन में प्यार और स्नेह की इच्छा लगातार बढ़ती जाती है। अधीरता शांति के मार्ग में एक बाधा बन रही है। चिंता मनुष्य को तनाव दे रही है। मोह और माया जीवन की क्षणिक खुशी है, जबकि प्रेम एक शाश्वत उद्यम है, एक अंतहीन अमृत है। प्यार और स्नेह स्वार्थ की भावनाओं को खुद को देते हैं। प्रेम में परोपकारी गुण होते हैं। मोह और भ्रम से ग्रस्त मानव का पागलपन हमेशा दूसरों के लिए दर्दनाक होता है।

प्रेम प्रेरणा की आवाज है। आत्मीयता का एक अनूठा एहसास है। प्रेम हमेशा एक व्यक्ति को ऊर्जावान रखता है, जबकि मोह और माया कुछ समय बाद मानव जीवन को नीरस बना देते हैं। वे कर्तव्य के जीवन को विचलित करते हैं। अपने आरोप में, एक इंसान अपने गुणों को भूल जाता है और जहर और घमंड का शिकार हो जाता है। प्रेम में समर्पण और त्याग की भावना है, जबकि प्रेम और माया में केवल प्राप्त करने की इच्छा है। अपने लाभ के लिए सब कुछ गौण होने लगता है। प्रेम का मार्ग बहुत कठिन है। केवल स्वयं को चोट पहुँचाने की क्षमता ही उस मार्ग को पार कर सकती है और उसे प्रेम की नियति में मिला सकती है।

प्रेम केवल पवित्रता और सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। जब मन और आत्मा प्रेमी के साथ प्यार में पड़ने लगते हैं, तो प्यार वास्तव में अपनी परिणति तक पहुंच जाता है। जो प्रेम शरीर पर टिकी हुई है वह केवल वासना के प्रति आसक्ति है। क्रश टूट सकता है, लेकिन प्यार कभी भी भंग नहीं होता है। प्रेम एक निर्बाध, अक्षय और अलौकिक अभिव्यक्ति है। सिर्फ प्यार ही इंसान को इंसान बना सकता है। प्रेम की मिठास से ही दुनिया में दोस्ती की भावना बढ़ सकती है। मोह और माया दूरियां बढ़ाते हैं, लेकिन प्यार दूरी लाता है और हमें हमारे प्रियजनों के करीब लाता है। इसलिए प्यार करो, मोह और भ्रम से दूर रहो।

सकारात्मक दृष्टिकोण अंधेरे में भी प्रकाश पाते हैं

जब सकारात्मक, हम अंधेरे में भी प्रकाश पाते हैं। हमारा भारतीय दर्शन हमें सकारात्मक सोचने के लिए प्रेरित करता है। यह जानकर, हम अक्सर क्रोधित होते हैं और नकारात्मकता पर हावी होते हैं। इसी समय, सभी शोधों ने पुष्टि की है कि जो व्यक्ति सकारात्मक सोच को प्राथमिकता देता है वह हमेशा संतुष्टि और खुशी का अनुभव करता है। उनकी प्रतिरक्षा भी अपेक्षाकृत बेहतर है। जल्द ही समस्या का हल भी ढूंढेंगे । स्वस्थ जीवन के लिए सकारात्मक सोच अमृत के समान है।

जीवन के संघर्ष में, यदि हम सकारात्मकता पर ध्यान केंद्रित करते हैं, तो हमारे सभी कौशल निश्चित रूप से विकसित होंगे। सकारात्मक सोच रक्त में एंटीबॉडी की मात्रा को बढ़ाती है, जिससे हमारी प्रतिरक्षा बढ़ जाती है। यदि हम अपनी मजबूत क्षमताओं को पहचानते हैं और उनका उचित उपयोग करते हैं, तो हम भी सकारात्मक महसूस करते हैं। परिवार, समाज और प्रकृति से हमें जो सहयोग मिला है, उसके लिए आभार व्यक्त करने के लिए मन भी प्रसन्न है। ऐसी स्थिति में खुद सकारात्मक रहें और दूसरों को भी सकारात्मक होने के लिए प्रेरित करें। स्थिति चाहे कितनी भी प्रतिकूल क्यों न हो, हम अंत में सकारात्मक ऊर्जा के साथ सबसे बड़ी लड़ाई जीतेंगे।

वैश्विक महामारी से पूर्णतया निजात पाने के लिए जिसे हम अभी सामना कर रहे हैं, हमें इसे दूर करने के लिए धैर्य और साहस दिखाना होगा। भारत में हर घर गुणों की खान है। वे सभी विशेष क्षमताओं से भरे हैं। ऐसे में हमें अपनी रचनात्मक और रचनात्मक शक्ति का उपयोग करते हुए आगे बढ़ना होगा। सभी एक साथ मिलकर एक अद्वितीय शक्ति और सुंदरता का निर्माण करते हैं। इसलिए, हमें भारतीय होने का गौरव बनाए रखते हुए इस संकट पर काबू पाने में योगदान देना चाहिए।

संकल्प

संकल्प वह शक्ति है जो व्यक्ति को दृढ़, साहसी, स्वप्रेरित व अपने लक्ष्य के प्रति प्रतिबद्ध करता है। व्यक्ति को परखता है, निरखता है। निहितार्थ यह है कि संकल्प लेने के प्रक्रिया में अनगिनत उधेड़बुन, अस्थिरता, उद्वेग आदि से गुजरना होता है। अपने होने मात्र की अनुभूति से संघर्ष करना होता है। समाज के तीक्ष्ण वाणों और प्रकृत के माया से निकल जाना होता है।

इस तरह व्यक्ति गीता के स्थितप्रज्ञ की भाँति स्थिरचित्त होकर ,अपने मन को झंकृत कर यह कहता है कि" हाँ मुझे यही करना है" ।

अब ये आवश्यक नहीं कि ये संकल्प ऊँचा हो, बड़ा हो, सफल हो। होता है तो बस अटल, अविरल और अडिग। जैसे एक बच्चे का जन्म ही , माता -पिता के जिम्मेदारी का संकल्प है, एक किसान को अपनी फसल बचाने का संकल्प है, एक विद्यार्थी को अच्छा पढ़ने का संकल्प है। संवैधानिक पद संविधान के पालन से संकल्पबद्ध है। नौकरीपेशा अपने काम के लिए संकल्पबद्ध हैं। प्रेमी अपने प्रेमिका को पा लेने, नदी सागर में गिर जाने, हवा सरसराहट से बह जाने, बूंदे बरस जाने के लिए संकल्पबद्ध है।

हालाकि कुछ ऐसे संकल्प हैं जो छूट भी जाते हैं, वो प्रकृत को मलिन न करने का, बुजुर्गों के देखभाल न करने का, लोकतंत्र को लज्जित न करने का, राष्ट्रीयता की भावना से विमुख होने का आदि। कुछ लोगों के संकल्प होते तो है ,पर इनके मार्ग और लक्ष्य कुछ अलग होते हैं, जैसे वन को काट देने का,धन हड़प के जमा कर लेने का, सत्ता पर बने रहने का, भय का आतंक कायम कर लेने का , दूसरों के हक मार लेने का आदि।

यानी ये बात सहज ही स्वीकार कर लेने का है कि हमारी मनोवृति ही यह निश्चय करती है कि क्या निर्णय लें और क्या छोड़ दें। अंततः परिणाम संकल्प की परीक्षा है।

मानवता

मानवता मनुष्य का सबसे बड़ा धर्म होता हैं। मानवता हर मनुष्य के लिए ज़रूरी है। अगर कोई मनुष्य दूसरों की सहायता करके मानवता नहीं दिखायेगा तो उस मनुष्य की सहायता भगवान भी नहीं करता है।

जिस मनुष्य के पास मानवता नहीं होती है, उसका जीवन निरर्थक होता है। मानवता शब्द का सरल अर्थ होता है– मानव में मानव के गुण का होना,एकता की भावना का होना। अगर कोई मनुष्य जरुरत मंद लोगों की सहायता करता है, भूखे लोगों को खाना खिलाता है, प्यासे को पानी पिलाता है,तो यह माना जाता है कि वो मनुष्य मानवता का धर्म निभाता है। मनुष्य एक ऐसा प्राणी है जो समाज में सभी लोगों के साथ मिल जुलकर रहता है। मनुष्य कोई भी कार्य कभी अकेले नहीं कर सकता हैं। अगर इस धरती पर मनुष्य मानवता को भूल जायेगा तो उसे अपना जीवन जीना बहुत मुश्किल हो जायेगा।

जिस मनुष्य के अंदर दया और इंसानियत नहीं होती हैं, उसे कभी इंसान नहीं कह सकते हैं। इस दुनिया में मनुष्य ही एक ऐसा जीव है,जो दूसरों के दुखों को समझ सकता है,और उसके दुखों को कम कर सकता है। जो मनुष्य अपने जीवन में दूसरों की सहायता करता है, उस मनुष्य के कार्यों को याद रखा जाता है। प्राचीन समय से ही हमें मानव में मानवता की भावना देखने को मिलती है। वास्तव में,मानवता मनुष्य का धर्म होता है।

मनुष्य यह एक ऐसा प्राणी हैं, जो समाज में सभी लोगों के साथ मिल जुलकर रहता हैं। मनुष्य कोई भी कार्य कभी अकेले नहीं कर सकता हैं। अगर इस धरती पर मनुष्य मानवता को भूल जायेगा तो उसे अपना जीवन जीना बहुत मुश्किल हो जायेगा। इनसानियत व मानवता सबसे बड़ा धर्म है। कहते हैं दुनिया में कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो इनसान को गिरा सके, इंसान अब इंसान द्वारा ही गिराया जाता है। दुनिया में ऐसा नहीं है कि सभी लोग बुरे हैं, इस जगत में अच्छे-बुरे लोगों का संतुलन है। आज संस्कारों का चीरहरण हो रहा है,खूनी

रिश्ते खून बहा रहे हैं। संस्कृति का विनाश हो रहा है। दया ,धर्म ,ईमान का नामोनिशान मिट चुका है। इंसान ख़ुदगर्ज़ बनता जा रहा है। दुनिया में लोगों की सोच बदलती जा रही है। निजी स्वार्थों के लिए कई जघन्य अपराध हो रहे हैं। बुराई का सर्वत्र बोलबाला हो रहा है। आज ईमानदारों को मुख्यधारा से हाशिए पर धकेला जा रहा है। गिरगिटों व बेईमानों को गले से लगाया जा रहा है। विडंबना देखिए कि आज इनसान रिश्तों को कलंकित कर रहा है। भाई-भाई के खून का प्यासा है ,जमीन जायदाद के लिए मां-बाप को मौत के घाट उतारा जा रहा है। आज माता -पिता का बंटवारा हो रहा है। आज बुजुर्ग दाने-दाने का मोहताज है। कलयुगी श्रवणों का बोलबाला है।आज संतानें मां-बाप को वृद्ध आश्रमों में भेज रही हैं। शायद यह बुज़ुर्गों का दुर्भाग्य है कि जिन बच्चों की ख़ातिर भूखे प्यासे रहे, पेट काटकर जिन्हे सफलता दिलवाई आज वही संतानें घातक सिद्ध हो रही हैं। मां-बाप दस बच्चों को पाल सकते हैं, लेकिन दस बच्चे मां-बाप का बंटवारा कर रहे हैं। साल भर उन्हें महीनों में बांटा जाता है। वर्तमान परिवेश में ऐसे हालात देखने को मिल रहे है। बेशक ईश्वर ने संसार में करोड़ों जीव जन्तु बनाए, लेकिन इंसान सबसे अहम कृति बनाई। लेकिन ईश्वर की यह कृति पथभ्रष्ट हो रही है। आज सड़को पर आदमी तड़फ-तड़फ कर मर रहा है। इंसान पशु से भी बदतर होता जा रहा है। क्योंकि यदि पशु को एक जगह खूंटे से बांध दिया जाए, तो वह अपने आप को उसी अवस्था में ढाल लेता है। जबकि मानव परिस्थितियों के मुताबिक गिरगिट की तरह रंग बदलता है। आज पैसे का बोलबाला है। ईमानदारी कराह रही है। अच्छाई बिलख रही है, भाईचारा, सहयोग, मदद एक अंधेरे कमरे में सिमट गये हैं। आत्मा सिसक रही है। वर्तमान में अच्छे व संस्कारवान मनुष्य की कोई गिनती नहीं है। झूठों का आदर सत्कार किया जाता है। आज हंस भीड में खोते जा रहे हैं,कौओं को मंच मिल रहा है। हजारों कंस पैदा हो रहे हैं एक कृष्ण कुछ नहीं कर सकता। आज कतरे भी खुद को दरिया समझने लगे है लेकिन समुद्र का अपना आस्तित्व है।

मानव आज दानव बनता जा रहा है। संवेदनाएं दम तोड़ रही हैं। मानव आज लापरवाही से जंगलों में आग लगा रहा है उस आग में हजारों जीव-जन्तु जलकर राख हो रहे हैं। जंगली जानवर शहरों की ओर भाग रहे हैं, जबकि

सदियां गवाह हैं कि शहरों व आबादी वाले इलाकों में कभी नहीं आते थे, मगर जब मानव ने जानवरों का भोजन खत्म कर दिया। जीव-जन्तओं को काट खाया तो जंगली जानवर भूख मिटाने के लिए आबादी का ही रूख करेंगें। नरभक्षी बनेगें। आज संवेदनशीलता खत्म होती जा रही है। आज मानव मशीन बन गया है निजी स्वार्थो के आगे अंधा हो चुका है। अपने ऐशोआराम में मस्त है। दुनिया से कोई लेना देना नहीं है। संस्कारों का जनाज़ा निकाला जा रहा है। मर्यादाएं भंग हो रही हैं। मानव सेवा परम धर्म है। आज लोग भूखे प्यासे मर रहे हैं। दो जून की रोटी के लिए तरस रहे हैं। भूखमरी इतनी है कि शहरों में आदमी व कुते लोगों की फेंकी हुई जूठन तक एक साथ खाते हैं। आज मानव भगवान को न मानकर मानव निर्मित तथाकथित भगवानों को मान रहा है। आज मानव इतना गिर चुका है कि रिश्ते नाते भूल चुका है। रिश्तों में संक्रमण बढ़ता जा रहा है। मानव धरती के लिए खून कर रहा है । कई पीढियां गुजर गई मगर आज तक न तो धरती किसी के साथ गई न जाएगी। फिर यह नफरत व दंगा फसाद क्यों हो रहा है। मानव ,मानव से भेदभाव रि रहा है। उंच-नीच का तांडव हो रहा है। खून का रंग एक है फिर भी यह भेदभाव क्यों। यह बहुत गहरी खाई है इसे पाटना सबसे बडा धर्म है।

आज लोग विलासिता पर हजारों -लाखों रूपये पानी की तरह बहा देते हैं ,मगर किसी भूखे को एक रोटी नहीं खिला सकते। शराब पर पैसा उडा रहे हैं। अनैतिक कार्यो से पैसा कमा रहे हैं। पैसा पीर हो गया है। मुंशी प्रेमचन्द ने कहा था कि जहां 100 में से 80 लोग भूखे मरते हों वहां शराब पीना गरीबों के खून पीने के बराबर है। भूखे को यदि रोटी दे दी जाए तो भूखे की आत्मा की तृप्ति देखकर जो आनन्द प्राप्त होगा वह सच्चा सुख है। आज प्रकृति से छेडछाड हो रही है। प्रकृति के बिना मानव प्रगति नहीं कर सकता। प्रकृति एक ऐसी देवी है जो भेदभाव नहीं करती ,प्रत्येक मानव को बराबर धूप व हवा दे रही है। मानव कृतध्न बनता जा रहा है। आज मानव स्वार्थ के कारण अंधा होता जा रहा है। नारी पर अत्याचार हो रहा है। मानवीय मूल्यों का पतन होता जा रहा है। नफ़रत को छोड़ देना चाहिए। प्रत्येक मनुष्य की सहायता करनी चाहिए। भगवान के पास हर चीज़ का लेखा -जोखा है। ईश्वर की चक्की जब चलती है तो वह पाप व पापी को पीस कर रख देती है मानव सेवा ही नारायण

सेवा है। यह अटल सत्य है। भगवान व शमशान को हर रोज याद करना चाहिए। किसी को दुखी नहीं करना चाहिए। अल्लाह की लाठी जब पड़ती है तो उसकी आवाज़ नहीं होती। ईश्वर इस धरा के कण -कण में विद्यमान है।

सृष्टिकर्ता तो एक ही है

व्यक्ति को विभ्रम है कि वह कर्ता है, वस्तुतः यह संसार हमारे करनें के सामर्थ्य में आता ही नहीं. यहाँ प्रकृति की पूरी व्यवस्था उपस्थित है, यहाँ सबकुछ अज्ञेय कारण के साथ अकारण ही घटित हो रहा. जब चित्त अज्ञान, अधर्म, हिंसा और अहंकार के घनीभूत पाश में होता है तब उसे कर्ता होने का ही भ्रम होता है और जहाँ सृजन, वैराग्य, धर्म व देयता घटित होता है वहाँ सर्वप्रथम यहीं भाव जाग्रत होता है,जो वाणी से निकल कुछ यूं कहता है 'ना मैं किया न करि सकौं, साहिब करता मोर।

हवा के रूप में प्राण वायु बह रही है जो हवा मात्र ही नही है, उसे कौन बहा रहा..संपूर्ण जगत में कोई भी दो वस्तु एक जैसी नही, इतनी विभिन्नता कहाँ से स्फुटित होती है...सहस्त्र प्रकार के पुष्प व उनके अनगिनत रंग, उनके बीच बहता सौंदर्य व सुगंध, कोटि कोटि जीव समूह और सभी पृथक-पृथक, अनंत वृक्ष, अनंत तारामंडल, अनंत आकाश, अनंत वर्ण व कुल के खग, तितलियाँ, जलचर, वनचर...कितना कुछ यहां है, यह सबकुछ बिना व्यक्ति के किये निर्मित होता है, नष्ट होता है, विलीन होता है, यहां सबकुछ इतनी सूक्ष्मता में घटित हो रहा कि व्यक्ति को उसका भान तक नहीं..व्यक्ति अपनी आती जाती स्वांस तक का साक्षी नहीं और न ही उसका स्वामी...इस ब्रह्मांड में सबकुछ एक निमेष में परिवर्तित हो जाता है बिना हमारी समझ मे आये, बिना हमारी दृष्टि में आये, तिसपर जो स्वयं को कर्ता समझने की भूल करता है, वह समष्टि के प्रति आंख ढांप लेता है...जो सबकुछ करते हुए भी यह जान लेता है कि मैं कुछ नही कर सकता और न ही कर रहा।

वह जो उत्पत्ति के प्राण का संचारक है, वह जो अनाहत का तीव्र झंकार है-वह कर्ता है। वह जो किरणमाला में अभेद हो विभिन्न अवयवों में भेद का परिचायक है-वह कर्ता है। वह जो सुमन में, सुरभि में, अणु-अणु में, मधु में, मदिर में, लहर में, समीर में, कलरव मे, कालिमा की लालिमा में व्याप्त है-वह कर्ता है। वह जो चतुर्दिक छाया में शीतलता का वाहक है- वह कर्ता है। वह

जो प्रसन्न होता है जब तुम अपनेपन में सागर की लहर की भांति उतराते हो- वह कर्ता है। वह जो द्रवित होता है बिसरी यादों में-वह कर्ता है। इस लंबे जीवनपथ में जब प्रेम-शिखा की लौ तुम्हे दीप्त करती है, तब उस शिखा की लौ में जो उतरता है-वह कर्ता है। जब कभी कोई घुले हृदय में घुल जाता है, जब तुम आलिंगन कर लेते हो किसी का और उसका उद्दीपन तुममें उस आत्मीयता का बोध कराता है जिसको तुम कोई नाम नही दे सकते, तो वह अनाम ही कर्ता है। जब तुम नींद में होते हो किंतु तुम्हे सुलाकर जो जागता रहता है- वह कर्ता है। वह जो पृथ्वी के घूर्णन, गुरुत्वाकर्षण का बल, दिवाकर का उदय, निशाकर की श्यामलता, कंठ का स्वर, स्वाद का तत्व, जल की तरलता, पर्वत की नवता, आकाश का संबल, पाताल का तल, अनुभव का पटल, और नेति नेति है, वह जो सोच व कल्पना के पार है,वह ही कर्ता है।

कर्ता अनैच्छिक की इच्छा है। कर्ता तब भी था जब इस पृथ्वी पर जीवन नही था। कर्ता तब भी था जब यह ब्रह्मांड सत व असत के परे था, और कर्ता तब भी रहेगा जब हम नही होंगे।

प्रफुल्ल सिंह

चापलूसी का बदलता स्वरूप

एक जमाना था जब चापलूसी बस जीभ तक ही सिमट के रहा करती थी। समस्त शरीर में सिर्फ मुँह ही चापलूसी का उद्गम और अधिकेंद्र हुआ करता था। कालांतर में फिर समय के साथ साथ बाह्य ताप और दाब के परिणामस्वरूप ये जीभ से हाथ और हाथ से पैर तक आ गया। किसी कूट भाषा में आजकल लोग उसे 'उठाना' बोल रहे हैं। अब चूंकि हर चीज का डिजिटलीकरण हो रहा है तो यह बड़ा ही यक्ष प्रश्न है कि फिर चापलूसी का डिजिटलीकरण क्या है ? बैरोमीटर की भांति क्या कोई मीटर बना है जो चापलूसी को माप सके? कोई लिखित साक्ष्य है जो चापलूसी का साइलेंट फीचर्स बता सके?

जब मुग़ल राजाओं का श्रेय और आश्रय पाने के लिए बड़े बड़े गद्य और पद्य का सृजन किया जाता था। चापलूसी के ऐसे किस्से गढ़े जाते थे कि मानो चापलूसी से बड़ा कोई कार्य नहीं है धरा पे। मध्यकाल से कई चरण से गुजरते और फिल्टर होते हुए आज आधुनिक काल में इसका रूप और विचित्र हो गया है।

पहले चापलूसी में लोग वचन और जबान दिया करते थे। लेकिन चूंकि अब फेसबुक का जमाना है तो फेंकने के लिए इससे भी बड़ा उपमा चाहिए इसीलिए लोग अब रक्त, मांसपेशी, हृदय और किडनी से नीचे की बात ही नहीं करते। अब चूँकि कोई बॉन्ड पेपर पर तो लिखना है नहीं इसीलिए लोग चापलूसी को फेसबुकी अक्षरों में अंकित करने में थोड़ा सा भी संशय नहीं करते।यदि लोगों का वश चले तो चापलूस बहादुर बनने के चक्कर में लोग ललाट पर गोदना तक गोदवा ले कि हाँ भाई चापलूसी कला नहीं, विज्ञान है। ये द्रव, ठोस व गैस के बाद पदार्थ की चौथी अवस्था है जिसका SI मात्रक फिक्स नहीं है।

हालांकि सोशल मीडिया ने लोगों को आदर्श चापलूस बनाने में कोई कसर नहीं छोड़ा है। "चापलूसी में आदर्शवाद" यह एक नया रिसर्च है और

यह अभी सिर्फ 10 प्रतिशत लोगों में विद्यमान हैं। ये लोग इतनी चतुरता से चापलूसी करते हैं कि चित्रगुप्त भी शरमा जाए इनकी चापलूसी लिखने में। मोटी चापलूसी तो सभी करते हैं अमूनन जीवन में। लेकिन महीन चापलूसी सबके वश की बात नहीं। इसके लिए बड़ी ही श्रद्धा और लगन की जरूरत होती है। एक हालिया रिपोर्ट में यह बात प्रकाशित हुई थी कि बढ़ते चापलुसिवाद मानव व समाज को गर्त की ओर ले जा रहा है। इसने न सिर्फ सीधे लोगों के विकास में रोड़ा का काम किया है अपितु आने वाली पीढ़ी के लिए एक नया प्रश्न खड़ा किया है कि 'क्या चापलूसी के बिना जीवन सम्भव है या नहीं ?' क्या चापलूसी किसी व्यक्ति का मौलिक अधिकार है या सिर्फ आभासी परिकल्पना ?

ऐसा नहीं है कि चापलूसी के बिना मानव समाज जी नहीं सकते लेकिन आज के प्रदूषित माहौल में थोड़ा सांस लेना मुश्किल है। एक तरफ जहां लोग चापलूसी के किसी भी स्तर पर गिरने को तैयार हैं वहां पर नैतिक मूल्यों का खड़ा रहना थोड़ा सा कठिन सा है। एक ओर जहां लोग उठाने में थोड़ा सा भी बाज नहीं आते वहीं सरलता से दो गज जमीन तलाशने में थोड़ी कठिनाई तो जरूर है। चापलूसी ने एक नया प्रतिस्पर्धा को जन्म दिया है जहाँ आगे आने की होड़ में लोग किसी के गर्दन पर पैर रखकर दौड़ने के लिए तैयार हैं।

विदेशों की दोहरी नागरिकता की भांति अपने देश में दोहरी चापलूसी का चलन प्रचलित है। दोहरी चापलूसी का पर्याय यहाँ उन लोगों के लिए किया गया है जो दोहरी मानसिकता पर बल देते हैं। सरल शब्दों में इसे धूर्तता की संज्ञा दी सकती है। हालांकि धूर्तता शब्द थोड़ा चुभता है लेकिन धूर्तता का पर्यायवाची शब्द अभी याद नहीं आ रहा है। ये सोचने वाली बात है कि बदलते निज हित के चक्कर में इंसान कितना बड़ा व्यापारी हो गया है कि वो हर चीज बेचने पर तैयार है। अभी वो अपनी बात बेच रहा है कल जमीर भी बेच देगा। अभी वो सिद्धान्त बेच रहा है कल मूल्य भी बेच देगा। इसीलिए समय रहते चेत जाइये और इन भावनाओं के व्यापारियों से बच के रहिये। इनका मकसद सिर्फ यूरोपीय व्यापारियों की तरह बेचना ही नहीं अपितु एक नए उपनिवेशवाद को खड़ा करना है।

प्रफुल्ल सिंह

सुख की प्रतीक्षा

दुनिया में कितने सुख है; जिनकी हम कल्पना नहीं करते। वे सहसा किसी फूल की तरह हमारी गोद में आकर गिरते हैं। ऐसे सुख महत्वपूर्ण होते हैं। हमारे लिए नहीं; दूसरे सुखों के लिए, जो कमाये हुए हैं; और ये स्वतः ही गोद में आ गिरे हैं।

हम उनको नकारते हैं। पर जब वे सुख सूख जाते हैं तब उनकी महत्ता हमें चोट करती है। हम उस चोट से मिले घावों को भरने के लिए; फिर वैसे ही किसी सुख की प्रतीक्षा करते हैं। प्रतीक्षा हमें किसी वृक्ष के नीचे पटक देती है। वहाँ रोज़ एक सुख टपकता है; किन्तु किसी दूसरे की गोद में। हम उसे कहना चाहते हैं; इसे नकारना नहीं। यही सत्य के सबसे नज़दीक ठहरने वाला सुख है। किन्तु उससे पहले वो नकारा जा चुका होता है।

हमारी प्रतीक्षा; उस सुख की तलाश में जीवन पर्यन्त भटकती है। हम थक जाते हैं। लेकिन हारते नहीं।

यहीं कहीं इन सबके बीच; उस चोट के घाव को भरने के लिए हम किसी मरहम की तलाश में बहुत दूर निकल जाते हैं। जैसे यात्री शांति की तलाश में और खोजी सत्य की खोज में।

हम चाहकर भी ऐसी मनःस्थितियों से लौट नहीं पाते क्योंकि ये हमने नहीं, इन्होंने हमको बनाया है। हम उनमें जड़ हो चुके होते हैं। प्रतीक्षा हमें पुकारती है। हम उसे भी नकारते हैं। हम सबकुछ नकारते हैं।

एक दिन कोई अदृश्य शक्ति हमारा हाथ खींचकर, उस वृक्ष के नीचे खड़ा कर देती है जहाँ हजारों सुख जमीन पर बिछे पड़े हैं। हम उन्हें रौंदते चले जाते हैं। सिर्फ़ उस सुख की तलाश में जिसे सबसे पहले हमने नकारा था।

विवाद विनाश को आमंत्रित करता है

लड़ने के लिए विनाश को आमंत्रित करना है और केवल मूर्खों को लड़ना है। अगर भक्त लड़ते हैं, तो उन्हें भक्त नहीं कहा जा सकता है। वे आत्मघाती हैं। वे नहीं जानते कि भगवान की भक्ति क्या है और भक्त का स्वभाव कैसा होना चाहिए। भक्ति के उद्देश्य को समझना भक्त का पहला कार्य है। ज्ञान केवल भक्ति से प्राप्त किया जा सकता है। एक भक्त जिसे ज्ञान है वह सभी जीवित प्राणियों में अपनी पूजा की शक्ति को देखता है। तो आप अपनी पूजा से कैसे लड़ सकते हैं? भक्त के लिए, सभी प्राणियों, जानवरों, पेड़ों, पौधों, पत्थरों, पहाड़ों की पूजा की जाती है। वह आदरणीय का अनादर कैसे कर सकता है?

मानव जीवन की पूर्णता और सार्थकता प्रत्येक जीवित प्राणी के प्रेम को विकसित करके ही सफल मानी जाती है। इसके अभाव में, यहाँ तक कि स्वयं भगवान भी उनकी पूजा को स्वीकार नहीं करते हैं, क्योंकि उनमें भक्ति की भावना नहीं है। तुच्छता की भावना झगड़ालू स्थितियों के निर्माण का आधार बन जाती है। ईश्वर ने हर जीव को खुशी देने के लक्ष्य के साथ सृजन किया है और यह केवल हृदय में प्रेम का विकास संभव है। प्रेम पवित्रता को अपना रहा है। श्रद्धा से पवित्रता आती है। ईश्वर की कृपा से विश्वास प्राप्त होता है। भगवान की कृपा पुण्य की प्रधानता से होती है। पुण्य की प्राप्ति से सत्कर्म और सद्भावना का विकास होता है। सत्कर्म और अच्छे ज्ञान की वृद्धि के साथ, मनुष्य को देवता की श्रेणी प्राप्त होती है। और जो देवता हैं, भगवान उनकी हार मानते हैं, क्योंकि भगवान की रचना भगवान द्वारा संरक्षित है।

जबकि संस्कृति और सभ्यता की सभ्यता समृद्ध है, वहाँ सुख और शांति की वर्षा होती है। शांति आ रही है लड़ता असुर संस्कृति की पहचान है। प्रत्येक मनुष्य इन दुर्गों से बचने के लिए बुद्धिमान होने के बारे में जानता है। विवादों से संस्कृति दूषित होती है। इससे बचना आवश्यक है।

आकर्षण की शक्ति एवं क्षमता

[भावनाएं और विचार पहले आते हैं, शब्द बाद में आते है। जब हम यह कहते है कि 'गुलाब के फूल की खुशबू कितनी अच्छी है।' इसका मतलब है कि खुशबू हमें पहले प्राप्त होती है जो हमारे मन को खुशनुमा एहसास देती है, शब्द बाद में सृजित होते है। विचार शब्दों के अलावा कार्यरुप में भी परिवर्तित होते है। प्रेम का आकर्षण ऐसा है जो दुनिया के सारे दुख-दर्द से हमें मुक्ति दिला सकता है।]

हम जीवन को जो देते हैं, वही हमें वापस प्राप्त होता है। ऐसा आकर्षण के सिद्धान्त के कारण होता है। देते समय का आकर्षण वापसी तक हमसे जुड़ा रहता है। दुनिया में एक समान लोग सदैव आकर्षित होते हैं। यह सार्वभौमिक आकर्षण का नियम है। दुनिया में सब कुछ आकर्षण की शक्ति के कारण ही बंधा है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति प्रकृति पर सभी को संतुलित रखती है। यह गुरुत्वाकर्षण का आकर्षण है। चुम्बक में भी आकर्षण की शक्ति होती है। पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति और चुम्बक की शक्ति जिस प्रकार दिखाई नहीं देती है, उसी प्रकार प्रेम के आकर्षण की शक्ति भी दिखाई नहीं देती है, लेकिन इस शक्ति का अनुभव पूरी प्रकृति करती है। हम जिस वस्तु से सकारात्मक शक्ति महसूस करते है, हम उससे प्रेम करते है और जिस वस्तु से नकारात्मक शक्ति आती है उससे हम प्रेम नहीं करते है। संसार में केवल दो ही बाते होती है। दुनिया में प्रेम के प्रति सकारात्मकता हैं या नहीं है। आकर्षण का सर्वशक्तिमान नियम असंख्य आकाशगंगाओं से लेकर सूक्ष्म अणुओं और परमाणुओं तक को बांधे हुए हैं। आकर्षण का नियम ही प्रेम का नियम है। यह ब्रह्माण्ड की हर जीव और अजीव में सक्रिय है। आकर्षण की शक्ति ही प्रेम की शक्ति है। आकर्षण की शक्ति से ही हम दूसरों की ओर खींचते जाते है। इस शक्ति के कारण कोई खेल में तो कोई संगीत के प्रति रुझान रखता है।

न्यूटन का नियम कहता है कि हर क्रिया की उसी के बराबर और विपरीत प्रतिक्रिया होती है। इस प्रकार देने की हर क्रिया पाने की ही प्रतिक्रिया

है। हम जो भी देते है, वह हमारी ओर अवश्य लौटता है। हम यदि प्रकृति के जीव-अजीव को सकारात्मकता देते हैं, तो हमें बदले में उनसे सकारात्मकता मिलती है। सकारात्मकता में अच्छी चीजों और तनाव रहित ऊर्जा और नकारात्मकता में बुरी चीजों की भरमार होगी। ऐसे में हम कह सकते है कि हमारे विचार और भावनाएं सकारात्मक या नकारात्मक होने के लिए जिम्मेदार है। ये भावनाएं ही हमारे जीवन का सृजन करती है। उदाहरण के तौर पर जब हम किसी पर क्रोध करते है तो वह क्रोध हमारे जीवन में नकारात्मक परिस्थितियों के रुप में लौटता है। जब हम मुश्किलों के बारे में सोचते है, तो तनाव होने लगता है। मुश्किलों और तनाव के बारे में पहले से ही सोचने से तनावपूर्ण परिस्थितियों को हम आकर्षित करने लगते हैं। विचार और भावनाएं चुम्बक की तरह होती है। ऐसे में यदि हम सकारात्मकता को गले से लगाए रखे तो सकारात्मक चीजे हमें अपनी ओर आकर्षित करती रहेंगी। धन-दौलत के बारे में भी यदि हम नकारात्मक विचार रखे तो धन-दौलत के प्रति नकारात्मक विचार रखने वालों को हम अपनी ओर आकर्षित करने लगते है। ऐसे में धन की कमी होने लगती है। धन-दौलत के प्रति सकारात्मक विचार धन-दौलत को हमारी ओर आकर्षित करेंगी। आकर्षण का नियम प्रतिक्रिया करता है। भावनाएं और विचार पहले आते हैं, शब्द बाद में आते है। जब हम यह कहते है कि 'गुलाब के फूल की खुशबू कितनी अच्छी है।' इसका मतलब है कि खुशबू हमें पहले प्राप्त होती है जो हमारे मन को खुशनुमा एहसास देती है, शब्द बाद में सृजित होते है। विचार शब्दों के अलावा कार्यरुप में भी परिवर्तित होते है। प्रेम का आकर्षण ऐसा है जो दुनिया के सारे दुख-दर्द से हमें मुक्ति दिला सकता है। नकारात्मक बाते नकारात्मक विचारों को आकर्षित करती है।

प्रेम एक ऐसा सत्य है, जिसके बारे में ज्ञान हो जाने पर पिंजरे के कैद से मुक्ति मिल जाती है। प्रेम की शक्ति के वश में घिरने पर सब कुछ संभव है। हमारे समक्ष युद्ध जैसी परिस्थितियां ही क्यों न हो प्रेम हमें सभी परिस्थितियों से मुक्त कर देता हैं। हमारे जीवन में कुछ भी संयोगवश नहीं है। हम जो देते हैं, उसी के आधार पर उतना ही हमें वापस मिलता है। जैसे कुएं के मुख पर खड़े होकर बोले तो उसकी अनुगूंज हमें वापस सुनाई देती है, जीवन भी एक

अनुगूंज की तरह ही है। प्रेम सृष्टि की महानतम शक्ति का परिणाम है। जब हम प्रकृति के हर जीव व अजीव के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार करते है तो हम सृष्टि की सबसे शक्तिशाली शक्ति का इस्तेमाल कर रहे होते है। भावना एक रहस्य की तरह है, जो हमारे अन्तर्तम के गहरे सागर की तली तक अपने को आच्छादित किए रहती है।

हम सभी भावनात्मक जीव है। एहसास के लिए हमारे पास इन्द्रियां हैं। भावनाओं के अनुसार ही हममें विचार पनपते हैं। इसीलिए कहा जाता है कि हम केवल विचारों और शब्दों से सृष्टि की ऊर्जा का प्रयोग नहीं कर सकते। मन में अनेकों विचार आते हैं, कुछ विचार निरर्थक होते है, ये निरर्थक इसीलिए हैं, क्योंकि इन विचारों को लेकर कोई प्रबल भावना नहीं बनी होती है। भावना में सकारात्मक विचार हो तो हमारा दूसरों के साथ सम्बन्ध निश्चित ही बेहतर होगा। हम जितना निराश होते है, हमारी भावनाएं उतनी ही नकारात्मक होती जाती हैं। इसमें बदलाव तभी होता है जब भावनाएं बदलती हैं। हम जितना बेहतर महसूस करते है उतना ही प्रेम हमसे बाहर फैलने लगता हैं। इस फैलते प्रेम के एहसास के बदले में प्रेम की प्राप्ति होने लगती है। अच्छा महसूस करने का मतलब ही है कि हमारे विचार प्रेमपूर्ण भावनाओं के कारण सकारात्मकता से बंधे हुए है। एहसास ही वह पैमाना है जो बताता है कि हम प्रकृति को क्या दे रहे है। दुख, क्रोध, निराशा, डर, भय, चिंता ये सभी नकारात्मक भावनाओं की विभिन्न श्रेणियां हैं। मन में अच्छी भावना के आने का मतलब ही है कि हम प्रेम की शक्ति से जुड़ गए है। ऐसे में उक्त भावनाओं का सृजन बंद हो जाता है। चूंकि प्रेम ही समस्त अच्छी भावनाओं का स्रोत है। इसलिए सृष्टि की अद्भुत शक्ति प्रेम के आकर्षण में बंधकर जीवन को शांतिपूर्ण, प्रेममय और रस-सरसमय भावनाओं में डूबाएं रखना ही जीवन की वास्तविक सकारात्मकता है।

झूठ चलने के साथ दौड़ता भी है

झूठ ! झूठ एक ऐसी चीज़ है जिसके बारे में हमें बचपन से यही सिखाया जाता है की कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिए. मुझे याद है मेरी बचपन की किसी हिंदी या नैतिक शिक्षा की किताब में एक अलग पाठ था, जो ये शिक्षा देता था क इंसान को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए. और तो और एक कविता भी थी, "गडरिये और भेड़" वाली, जिसमें वो गडरिया हमेशा झूठ बोलकर गांववालों को परेशान करता रहता है और एक दिन सच में भेड़िया आकर उसकी भेड़ ले जाता है और उसकी मदद को कोई नहीं आता क्यूकी सब सोचते हैं की वो फिर से झूठ बोल रहा है। ये कविता तो मुझे आज भी याद है और बहुत अच्छी भी लगती है. हम इसे छोटे बच्चों को सिखाते भी हैं, जिससे की वो लोग कभी झूठ न बोले।

पर मुद्दा यहाँ ये नहीं है की बचपन में हमने कितने पाठ और कवितायेँ पढ़ीं हैं झूठ न बोलने के बारे में. सोचना तो ये है की जो बात हम लोगों को बचपन से हमेशा सिखाई गयी उसका अनुसरण हम अपने जीवन में कितना करते हैं? अरे हाँ हम तो भूल ही गए थे जब थोड़े बड़े हुए, शायद क्लास 6th में, एक और बात सिखाई गयी की झूठ अगर किसी की भलाई के लिए बोला जाये तो वो सच से बढ़कर होता है. हाँ अब उस भलाई में किस किस तरह की भलाई शामिल है वो शायद नहीं बताया गया था।

लोग अक्सर ही अपने रोज़मर्रा के जीवन में झूठ का सहारा लेते हैं, कभी खुद की भलाई के लिए और कभी दूसरों की ! मेरा मतलब कभी खुद को बचाने के लिए झूठ बोलते हैं और कभी दूसरों को, कभी खुद को सही साबित करने के लिए झूठ बोलते हैं और कभी अपने दोस्तों को सही साबित करने के लिए, कुछ नहीं तो मज़ाक में तो झूठ चलता ही है, कुछ भी बोलो और फिर कह दो "अरे यार मैं तो मज़ाक कर रहा था"

झूठ भी सिर्फ झूठ नहीं होता, इसके भी कई रूप होते हैं. झूठ किसी ने अपने फायदे के लिए बोला और आपने समझ लिया तो वो इंसान स्वार्थी

नज़र आता है. किसी ने झूठ अपने किसी दोस्त को मुश्किल से बहार निकालने के लिए बोला तो वो परोपकारी नज़र आता है. और झूठ अगर मज़ाक में बोला गया हो तो उसका तो कोई अर्थ ही नहीं, अरे वो तो मज़ाक था, तो वो इंसान भी बड़ा मजाकिया किस्म का नज़र आता है! हालांकि मुझे विश्वास नहीं की वो मज़ाक ही होता है या कुछ और?

इस तरह झूठ हमारे जीवन का एक अहम् हिस्सा बनता जाता है और बिना इसके जीवन ही बड़ा मुश्किल नज़र आता है. और बचपन का सिखाया गया पथ वहीँ बचपन की किताबों में रहता है जिसे अब दुसरे बच्चे पढ़ रहे हैं. पर वो भी सीख नहीं रहे होंगे क्यूंकि जब हमने ही नहीं सीखा तो हमारे आने वाली पीढ़ी के बच्चे कैसे सीखेंगे. और याद रखिये की पाठ पढने और सीखने में बहुत अंतर होता है. और सीखे गए पाठ को अपने जीवन में उतारना तो बिलकुल ही अलग काम है और शायद कई गुना कठिन भी..!!

परम सुख

संसार का प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है। कोई भी व्यक्ति उदासी, अभाव की स्थिति को पसंद नहीं करता है, लेकिन क्या आपको केवल इच्छा होने से खुशी मिलती है? नहीं, अगर कोई पुरुष खुशी चाहता है, तो उसे खुशी पाने के लिए अपने स्नेह से चिपके रहना होगा। उदाहरण के लिए, जब आप प्यासे होते हैं, तो पानी की तलाश करें। कुएँ, पोखर, तालाब, झरने, नदी के पास पहुँचकर अपनी प्यास बुझाओ। यदि कोई व्यक्ति रेगिस्तान में प्यासा है और पानी की तलाश करता है, तो क्या उसकी इच्छा पूरी हो सकती है? कोई रास्ता नहीं। जब आप पानी की तलाश में वहां जाएंगे, तो आप जीवन में और मुसीबत में मर जाएंगे।

इसी तरह, आज मनुष्य भी वास्तविक सुख के साथ भौतिक सुखों को भ्रमित कर रहे हैं। सभी रिद्धि-सिद्धि के शिक्षक होने के बावजूद, उन्होंने एक भिखारी के रूप में एक जगह से दूसरी जगह ठोकर खाने के लिए गलत रास्ता चुना है। वह धन, इच्छा, वासना में खुशी ढूंढ रहा है, जो नश्वर हैं। सच्चे आनंद का भंडार उसके भीतर भरा है। परमेश्वर ने उसमें अपना अंश छिपाया है, जो परम सुख, शांति का स्रोत है। जैसे मृग की नाभि में अनमोल सीप होते हैं, लेकिन वह नहीं जानता। यदि ज्ञात हो, तो उस सुगंध को प्राप्त करने के लिए जंगल में घूमने की आवश्यकता नहीं है।

मनुष्य ने आज के भौतिक सुखों के पीछे आध्यात्मिक सुखों को भी नजरअंदाज कर दिया है। यह समझा जाता है कि मानव जीवन का उद्देश्य पशु जीवन जीना है। भौतिक सुखों की उपलब्धि के पीछे, वह भूल गया है कि वह भगवान का हिस्सा है। भगवान सभी पहलुओं में अमीर हैं, लेकिन उनका बेटा गरीब हो गया है। इसका कारण यह है कि आज के मनुष्य ईश्वर से अलग हो चुके हैं। अगर वह अपने भीतर देखने की कोशिश करता है, अगर वह परमात्मा से जुड़ता है, तो उसे शाश्वत सुख मिलने लगेगा।

पुरुष समन्दर तो स्त्री समर्पण

पुरुष का प्रेम समुंदर सा होता है..गहरा, अथाह..पर वेगपूर्ण लहर के समान उतावला।

हर बार तट तक आता है, स्त्री को खींचने, स्त्री शांत है मंथन करती है, पहले ख़ुद को बचाती है इस प्रेम के वेग से.. झट से साथ मे नहीं बहती। पर जब देखती है लहर को उसी वेग से बार बार आते तो समर्पित हो जाती है समुंदर में गहराई तक, डूबने का भी ख़्याल नहीं करती, साथ में बहने लगती है।

समुंदर अब शांत है, उछाल कम है, स्त्री उसके पास है। पर स्त्री मचल उठती है इतना प्रेम देख प्रतिदान के लिए, वो उड़कर बादल बन जाती है, अपना प्रेम दिखाने को तत्पर हो वो बरसने लगती है, पहले हल्की हल्की, समुंदर को अच्छा लगता है वो भी बहने लगता है, कभी कभी वेग से उछलता है प्रेम पाकर, फिर शांत हो जाता है।

पर स्त्री बरसती रहती है लगातार झूमकर दो दिन, तीन दिन, बहुत दिन तक। मगर अब पुरुष से इतना प्रेम समेटना मुश्किल होने लगता है..अंदर अथाह प्रेम होने पर भी समुंदर को ऊपर से शांत रहना है क्यूँकि उसे सब देखना है, आते जाते जहाज, उगता डूबता सूरज, तट पर लोग। मगर स्त्री प्रेम के उन्माद में बरस रही है, अंदर तक घुलने को व्याकुल..

लेकिन जब अंदर उमड़ते घुमड़ते ख़्यालों के कारण सुनामी आने के डर से, समुंदर से संभलता नहीं, तो वो रुकने कहता, किसी और देश जाने कहता। पर प्रेम में समर्पित स्त्री को रोकना असंभव है, जब देखती है कि समुंदर अब नहीं चाहता तो वो दर्द के आवेग में बरसती है पास बुलाने को, स्त्री के आँसू ख़तरनाक होते हैं, बाढ़ आने लगती, पुल टूटने लगते, पानी घरों में जाने लगता, सब तहस नहस होने लगता। फिर धीरे धीरे बादल ख़त्म होने लगते हैं, आँसू सूख जाते हैं, सूखा, अकाल आ जाता है, स्त्री पत्थर हो जाती है।

पर स्त्री का स्वभाव समर्पण है, वो फिर किसी समुंदर किनारे खड़ी कर दी जाती है, एक नई लहर आवेग में आती है, स्त्री बचती है पर फिर बह जाती है समर्पित होने के लिए भीतर तक..!!

प्रफुल्ल सिंह

क्रोध मानव जीवन की मजबूरी और समस्या दोनों

क्रोध मानव जीवन की समस्या है। मानव जीवन के सभी गुण जिनमें क्रोध एक महान कौशल है, पर चर्चा की जाती है। अक्सर कहा जाता है कि गुस्से की स्थिति में, कोई भी निर्णय लेने से बचें, क्योंकि यह निश्चित रूप से गलत होगा। हमारे ग्रंथ भी अधिक क्रोध से बचने की सलाह देते हैं। वास्तव में, क्रोध मानव मन को प्रभावित करता है। यदि क्रोध किसी भी व्यक्ति के स्वभाव में व्याप्त है, तो यह अलोकप्रिय हो जाता है। हमारी सोचने की शक्ति क्रोध से फैलने लगती है। इससे हमारा मन बेचैन रहता है। एक व्यक्ति बेचैन मन से कभी प्रगति नहीं कर सकता।

कई बार हमें लगता है कि एक व्यक्ति को विनम्र चुंबन सफलता के शिखर पर कम योग्यता होने के बावजूद। वहीं, अधिक क्षमता होने के बावजूद स्वभाव का व्यक्ति सफल नहीं होता है। क्रोधी व्यक्ति मूर्खतापूर्ण व्यवहार करने लगता है। अंत में, उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है। जिस व्यक्ति की बुद्धि नष्ट हो जाती है, वह खुद को और दूसरों को नुकसान पहुंचाने से पीछे नहीं हटता है। वह स्वतः ही इसके विनाश के लिए एक रास्ता बनाना शुरू कर देता है।

गौतम बुद्ध ने कहा: "मन में क्रोध का होना, गर्म कोयले को किसी अन्य व्यक्ति पर फेंकने के इरादे से रखने जैसा है। आप बस इसी से जलें।" यह स्पष्ट है कि क्रोध व्यक्ति को उतना नुकसान नहीं पहुंचाता है जितना कि सामने वाला व्यक्ति। कई बार वे खुद को नुकसान पहुंचा लेते हैं। इंद्रियों के नियंत्रण से क्रोध पैदा होता है। हमें खुद को नियंत्रित करने की क्षमता विकसित करनी चाहिए। जब क्रोध हावी होने लगे तो हमें खुद को अकेलापन देना चाहिए। अकेलापन हमारे गुस्से को नियंत्रित करने की शक्ति रखता है। क्रोध के उत्प्रेरक तत्वों से हमेशा दूर रहना उचित है। योग, ध्यान और भक्ति क्रोध के

मूल लक्षणों को नष्ट करते हैं। जब गुस्सा आना शुरू हो जाता है, तो अपने आप को रोकने की कोशिश करें।

ईश्वर एक विश्वास

ईश्वर विश्वास पर ही मानव प्रगति का इतिहास टिका हुआ है। जब यह डगमगा जाता है तो व्यक्ति इधर- उधर हाथ पाँव फेंकता विक्षुब्ध मनः स्थिति को प्राप्त होता दिखाई देता है। ईश्वर चेतना की वह शक्ति है जो ब्रह्माण्ड के भीतर और बाहर जो कुछ है, उस सब में संव्याप्त है। उसके अगणित क्रिया कलाप हैं जिनमें एक कार्य इस प्रकृति का- विश्व व्यवस्था का संचालन भी है। संचालक होते हुए भी वह दिखाई नहीं देता क्योंकि वह सर्वव्यापी सर्वनियंत्रक है। इसी गुत्थी के कारण कि वह दिखाई क्यों नहीं देता, एक प्रश्न साधारण मानव के मन में उठता है- ईश्वर कौन है, कहाँ है, कैसा है ??

मात्र स्रष्टि संचालन ही ईश्वर का काम नहीं है चूंकि हमारा संबंध उसके साथ इसी सीमा तक है, अपनी मान्यता यही है कि वह इसी क्रिया- प्रक्रिया में निरत रहता होगा, अतः उसे दिखाई भी देना चाहिए। मनुष्य की यह आकांक्षा एक बाल कौतुक ही कही जानी चाहिए क्योंकि अचिन्त्य, अगोचर, अगम्य परमात्मा- पर ब्रह्म- ब्राह्मी चेतना के रूप में अपने ऐश्वर्यशाली रूप में सारे ब्रह्माण्ड में, इको सिस्टम के कण- कण में संव्याप्त है।

ईश्वर कैसा है व कौन है, यह जानने के लिए हमें उसे सबसे पहले आत्मविश्वास- सुदृढ़ आत्म- बल के रूप में अपने भीतर ही खोजना होगा। ईश्वर सद्गुणों का- सत्प्रवृत्तियों का- श्रेष्ठताओं का समुच्चय है जो अपने अन्दर जिस परिमाण में जितना इन सद्गुणों को उतारता चला जाता है, वह उतना ही ईश्वरत्व से अभिपूरित होता चला जाता है। ईश्वर तत्व की- आस्तिकता की यह परिभाषा अपने आप में अनूठी है ईश्वर "रसो वैसैः" के रूप में भी विद्यमान है तथा वेदान्त के तत्त्वमसि, अयमात्मा ब्रह्म के रूप में भी। व्यक्तित्व के स्तर को "जीवो ब्रह्मैव नापरः" की उक्ति के अनुसार परिष्कात कर परमहंस- स्थित प्रज्ञ की स्थिति प्राप्त कर आत्म साक्षात्कार कर लेना ही ईश्वर दर्शन है- आत्म साक्षात्कार है- जीवन्मुक्त स्थिति है।

एक जटिल तत्त्व दर्शन जिसमें नास्तिकता का प्रतिपादन करने वाले एक- एक तथ्य की काट की गयी है, को कैसे सरस बनाकर व्यक्ति को आस्तिकता मानने पर विवश कर दिया जाय, यह विज्ञ जन वाङ्मय के इस खण्ड को पढ़कर अनुभव कर सकते हैं। ईश्वर के संबंध में भ्रान्तियाँ भी कम नहीं हैं। बालबुद्धि के लोग कशाय कल्मषों को धोकर साधना के राज- मार्ग पर चलने को एक झंझट मानकर सस्ती पगडण्डी का मार्ग खोजते हैं। उन्हें वही शार्टकट पसन्द आता है। वे सोचते हैं कि दृष्टिकोण को घटिया बनाए रखकर भी थोड़ा बहुत पूजा उपचार करके ईश्वर को प्रसन्न भी किया जा सकता है व ईश्वर विश्वास का दिखावा भी, जब कि ऐसा नहीं है। उपासना, साधना, आराधना की त्रिविध राह पर चल कर ही ईश्वर दर्शन संभव है यह समझाते हैं व तत्त्व- दर्शन के साथ- साथ व्यावहारिक समाधान भी देते हैं।

ईश्वर कौन है, कैसा है- यह जान लेने पर, वह भी रोजमर्रा के उदाहरणों से विज्ञान सम्मत शैली द्वारा समझ लेने पर किसी को भी कोई संशय नहीं रह जाता कि आस्तिकता का तत्त्व दर्शन ही सही है। चार्वाकवादी नास्तिकता परक मान्यताएँ नहीं। यह इसलिए भी जरूरी है कि ईश्वर विश्वास यदि धरती पर नहीं होगा तो समाज में अनीति मूलक मान्यताओं, वर्जनाओं को लाँघकर किये गए दुष्कर्म का ही बाहुल्य चारों ओर होगा, कर्मफल से फिर कोई डरेगा नहीं और चारों ओर नरपशु, नरकीटकों का या " जिसकी लाठी उसकी भैंस का" शासन नजर आएगा। अपने कर्मों के प्रति व्यक्ति सजग रहे, इसीलिए ईश्वर विश्वास जरूरी है ॥ कर्मों के फल को उसी को अर्पण कर उसी के निमित्त मनुष्य कार्य करता रहे, यही ईश्वर की इच्छा है जो गीताकार ने भी समझाई है।

ईश्वर शब्द बड़ा अभव्यंजनात्मक है। सारी स्रष्टि में जिसका ऐश्वर्य छाया पड़ा हो, चारों ओर जिसका सौंदर्य दिखाई देता हो- स्रष्टि के हर कण में उसकी झाँकी देखी जा सकती हो, वह कितना ऐश्वर्यशाली होगा इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती। इसीलिए उसे अचिन्त्य बताया गया है। इस सृष्टि में यदि हर वस्तु का कोई निमित्त कारण है- कर्त्ता है, तो वह ईश्वर है। वह बाजीगर की तरह अपनी सारी कठपुतलियों को नचाया करता है व ऊपर से बैठकर तमाशा देखता रहता है। यही पर ब्रह्म- ब्राह्मी चेतना जिसे हर श्वाँस में हर कार्य में, हर पल अनुभव किया जा सकता है- सही अर्थों में ईश्वर है। प्राणों के समुच्चय को

जिस प्रकार महाप्राण कहते हैं, ऐसे ही आत्माओं के समुच्चय को- सर्वोच्च सर्वोत्कृष्टता को- हम सब के परमपिता को परमात्मा कहते हैं, ईश्वर के संबंध में एक गूढ़ विवेचन का सरल सुबोध प्रतिपादन हर पाठक- परिजन को संतुष्ट कर उसे सही अर्थों में आस्तिक बनाएगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

दूसरे के भले से खुद का भला

हमें ज़िंदगी को जी भरके जीना सीखना चाहिए।किसी से यह बात छिपी नहीं है कि छोटी-सी ज़िंदगानी है।सब कुछ यहीं रह जाता है। हम ऐसा कोई काम न करें जो देश और समाज के लिए अहितकारी हो। सगे-संबधियों या मित्रों की भूलों या गलतियों को हृदय में सदा-सदा के लिए बैठा लेना कतई उचित नहीं।

यदि आप अपनी भलाई चाहते हैं तो आपको माफ़ करना आना ही चाहिए। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई गलती करके भी अपने को सही ही साबित करते रहता है,तब भी आपको उदारता से काम लेना चाहिए।व्यक्ति का अहं उसे झुकने नहीं देता है।और वह अपने को सत्य सिद्ध करने लिए अपना ही तर्क गढ़ लेता है।तब हम क्यों उसके पीछे अपना समय बर्वाद करें?हो सकता है कि आपके सद् व्यवहार से एक दिन उसे स्वतः अपनी नादानियों का एहसास हो जाए।

आप चाहकर भी किसी की प्रवृत्ति बदल नहीं सकते हैं।हाँ,अपने को हम सच्चाई के रास्ते पर ही चला सकते हैं।यदि बुराइयों से हम अपने को बचाए रख सकें तो बहुत बड़ी बात होगी।इसके 'आत्मबल' की आवश्यकता होती हैं।

कई बार देखा गया है कि कुछ लोग हरदम एक-दूसरे की टाँग खींचने में ही लगे रहते हैं।अगर वैसे व्यक्ति से आज आपका मधुर संबंध है तब इस बात की कोई गारंटी नहीं है कि कल वह व्यक्ति आपकी बुराई न करने लगे।इसलिए जहाँ तक हो सके 'बुरे लोग' से दूर ही रहें। काजल की कोठरी से सयाने लोग भी बिना दाग लगाए निकल नहीं पाते हैं।यह आप गाँठ बाँध लीजिए।

किसी भी व्यक्ति को प्रतिष्ठा पाने के लिए अपनी सारी उमर गुजार देनी पड़ती है। प्रतिष्ठा पाना जितना कठिन है उससे भी मुश्किल है उसे बचाए रखना। एक बार आपको गरिमा और महिमा मिल गई तो आप सामान्य से विशेष बन जाते हैं। जब कोई व्यक्ति सामान्य से 'विशेष' बन जाता है तो उसकी हरेक छोटी-बड़ी गतिविधियों पर समाज की नज़र लगी रहती है। ऐसे में आपको सावधान रहने की आवश्यकता है। आप कुसंग से बचे रहें, नहीं तो

आपकी उपार्जित प्रतिष्ठा को धूल-धूसरित होते देर नहीं लगेगी।कई बार बुरे व्यक्ति के माध्यम से आप-हम अपना काम निकालते हैं। फलस्वरूप जानते हुए भी हम उसके दोषों और अवगुणों को नज़र अंदाज़ कर देते हैं। यदि आप ऐसे 'दुष्ट' या 'दुर्जनों' का संग लेते हैं या देते हैं,तो भगवान ही आपका मालिक है। छोटे-मोटे काम निकालने के चक्कर में आप अपना बहुत भारी नुकसान कर लेते हैं।

देखने में आता है, कई लोग धन प्रपंच या छल से प्राप्त कर लेते हैं। ऐसे व्यक्ति भले ही ऊपर-ऊपर सुखी दिखाई देते हैं। मगर उनकी अंतरात्मा सदा उन्हें धिक्कारते ही रहती है। हम भले ही देवता नहीं बन सकते तो मानव बनकर तो रह ही सकते हैं। इससे दुनियाँ से सारे झगड़े-फ़साद ही मिट जाएँगे। सारा जहान सुंदर और सुखद हो जाएगा।

आस-पास के लोगों को बदलना हमारे बस में नहीं है परंतु हमें किसके साथ में रहना है। यह हमारे और आपके हाथ में है।अतः हम भले व्यक्ति के साथ खड़े रहें और भले का ही साथ लें। आपके इस छोटे-से प्रयास से संसार बदलेगा।हम आदमी हैं तो आदमी बनकर रहें। यदि दूसरों का हम भला नहीं कर सकते हैं तो कम-से कम किसी का अहित भी न करें।

हम सबसे ही है इतिहास

हर एक व्यक्ति की अपनी-अपनी क्षमता और प्रतिभा होती है।हमें अपनी प्रतिभा को निखारने की जरूरत है और उसके अनुरूप अपना लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए।आज हो रहा है सबकुछ उल्टा। लोग भेड़-चाल में चल रहे हैं।इस संसार में रास्ते बहुत हैं, आपको अपने लिए एक सही रास्ता चुनना है।सब जगह भीड़ है।मुकाबला भी कठिन है।संघर्ष आपको ही करना है।जीवन का नाम ही संघर्ष है।बाधाएँ आती ही रहती हैं।उससे पार पाने के लिए आपको मजबूती के साथ अपने लक्ष्य के संग खड़ा होना होगा।अगर संघर्ष के बाद सफलता मिलती है तो खुशियाँ भी कई गुनी बढ़ जाती हैं।

आपको स्वयं का अपना दोस्त बनना होगा।सच्चा मित्र,जो भले-बुरे की पहचान करा सके।जब भी अवसर मिले तो अपने आप से बातें कीजिए।अपनी खूबियों को पहचानिए।लोग सराहें या न सराहें,स्वयं अपने आपको शाबाशी देने में कभी कोताही मत कीजिए।

साकारात्मकता को अपने जीवन का हिस्सा बनाइए।आप इस दुनिया में सबसे अलग हैं।जो आप में हैं, वह औरों के पास नहीं हैं।सदा मन में उच्च भाव को प्रतिष्ठित रखिए।दूसरे क्या कर रहे हैं उस पर ध्यान देने से सिवाय इस बात का ध्यान दीजिए कि आप स्वयं क्या कर सकते हैं?और आप जो कर सकते हैं,उसमें अपनी पूरी ऊर्जा लगाइए।ईश्वर आपकी सहायता करेगा।लोग भी आपके साथ चलने लगेंगे।आपका कुछ भी करने का तरीका नवाचार से प्रेरित हो तो कहना ही क्या? काम सब करते हैं पर जो व्यक्ति सामान्य काम को भी विशेष बनाकर करता है,वही इतिहास बनाता है।

आत्मविश्लेषण प्रगति का द्वार खोलता है।हमारा स्वभाव है,यदि कोई हमारी गलतियों या कमियों की ओर इंगित करता है तो मन में भारी कोफ़्त होती है।मेरा तो मानना है आपका कम -से-कम एक मित्र ऐसा अवश्य ही होना चाहिए जो समय-समय आपको डाँट-पट भी सके।कहने का आशय है कि वह आपको सही सलाह देने वाला हो।केवल हाँ में हाँ मिलानेवाला नहीं। यदि

आपका ऐसा कोई दोस्त नहीं है तो कोई बात नहीं।आप अपनी गलतियों या भूलों पर अपने आप को डाँटना सीखिए।शुरु-शुरु में यह काम थोड़ा कठिन लगेगा।मगर इसमें एक बहुत बड़ा लाभ छिपा हुआ है।धीरे-धीरे ऐसे मौके कम आएँगे जब आपको अपने किए पर पछताना पड़ेगा।और आपके चरण निरंतर प्रगति के पथ पर गतिमान रहेंगे।

हाँ ,एक बात और आपसे कहने से मैं अपने को रोक नहीं पा रहा हूँ।आप वही कीजिए जो आपको पसंद है।पसंद के काम करने में जो अपूर्व आनंद मिलता है उसकी अनुभूति अलौकिक है।जब हम किसी काम को भार मान कर करते हैं तो कठिन लगने लगता है।फिर उस कार्य में सफलता की संभावनाएँ भी घट जाती हैं।

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि जिस क्षेत्र को आपने चुना है उसमें चुनौतियाँ ही चुनौतियाँ भरी पडी हैं।डरिए मत लड़िए।जीत आपकी होगी।कोई आपको अपने लक्ष्य तक पहुँचने से रोक नहीं सकता है।कोशिश करने वालों की हार नहीं होती है।और कोशिश आपको ही करना होगा।आनेवाले तूफानों से आपको खुद ही मुकाबला करना है।आप कभी भी अपने को अकेला मत समझिए।कोई आपका साथ दे या न दे।आपको अपना साथ खुद देना है। यदि आप अपने साथ खड़े हैं तो दुनियाँ आपका साथ देने लगेगी।बढ़ना है आपको बहुत ही आगे तक। चलते ही रहना है।रुकना मौत की निशानी है।हौसलों के साथ अपने कदम बढ़ाइए।आपके हाथों में जादू है।उस 'जादू ' से आप मनचाही मुरादें पूरी कर सकते हैं।दुनिया को बदलने वाले आपके और हमारे जैसे लोग ही होते हैं मगर उनके अंदर एक बेचैनी होती है जो उन्हें कभी चैन से बैठने नहीं देती है।और वह छटपटाहट ही उन्हें ऐसे-ऐसे काम करने के लिए प्रेरित करती है जिसे देखकर लोग दाँतों तले उंगलियाँ दबाने लगते हैं।इतिहास आपकी भी प्रतीक्षा कर रहा है।आप अपना काम दिल से कीजिए, निश्चय ही आपकी विजय होगी।

सम्पूर्ण कौन है

आज के समय मे जो तन और धन से सक्षम है उसी को सम्पूर्ण इंसान समझा जाता है अगर कोई तन से विकलांग है या उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नही है तो उसे सब एक अपूर्ण और नकारा इंसान समझते है हेय दृष्टि से देखते है यही मानसिकता है सम्पूर्णता की।

मेरी दृष्टि मे ऐसी सोंच रखने वाला हर वो इंसान अपूर्ण और विकलांग है जो स्वयं को महत्वपूर्ण और दूसरो को महत्वहीन समझता है सबको अपनी सोंच की कसौटी पर तोलता है। सबको तोलते वक्त वो स्वयं को तोलना भूल जाता है क्योकि उसे तो अभिमान होता है स्वयं की सम्पूर्णता का अपने ज्ञान का वैभव का वो ये कभी जान ही नही पाता वो कितना अपूर्ण है जिसे वो विकलांग या छोटा समझकर हेय दृष्टि से देखता है उसकी अपूर्णता तो सबकी नजरे देख पाती है क्यूकि वो तो प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है परंतु जो मानसिक रुप से विकलांग है अपूर्ण है अपनी सोंच और विचारो से सबसे छुपाये रहता है अपनी कमजोरी को हर एक पर अपनी झूठी शान का धाक बनाना चाहता है कि वो तो सम्पूर्ण है कुछ भी कर या कह सकता है।

ऐसे लोगो की दिनचर्या ही स्वयं को श्रेष्ठ साबित करना होता है चाहे जैसे भी इनके जीवन का सबसे श्रेष्ठ और अहम मुद्दा होता है औरो को नीचा दिखाना , अपमानित करना इसी से शुरुवात होती है इनके दिन की चाहे घर रहे या बाहर जी हुजूर सूनना इनके कानो को बहुत अच्छा लगता है । दूसरो को तिरस्कृत करके इनकी जुबान मीठी हो जाती है। अपमानित करने का स्वाद ही निराला होता है जिसे ये जब चाहे जहाँ चाहे मजे से ले लेते है सम्पूर्ण जो होते है।

परंतु ये भूल जाते है कि दिखाई देने वाली कमियां तो किसी न किसी तरह पूरी की जा सकती है मगर आंतरिक विकलांगता को स्वयं ही दूर करना होता है संकीर्ण मन या सोंच रखने वाला इंसान बोझ होता है क्यूकि दूसरो को

खाली और खुद को महानता से लबालब भरा पाता है कभी स्वीकार ही नही पाता की उसमे भी त्रूटि या कमी है।

सबकुछ तो है फिर कैसी कमी मान, प्रतिष्ठा, दौलत , सोहरत और क्या चाहिए पर क्या इन सबमे इंसानियत भी है, हम भी है कही?

यही सवाल खुद से करना भूल जाते है भटकते रहते है उस मृग की तरह जिसकी कस्तूरी उसकी ही नाभि मे होती है परंतु उसकी महक उसे भटकाती रहती है वो जान ही नही पाता कि जिस महक के लिए वो भटक रहा है वो उसी की है ठीक वैसे ही अधिक से अधिक पा लेने की हमारी तृष्णा हमे कभी तृप्त ही नही होने देती हमारी जिंदगी हमेशा तुलनात्मक ही रहती है। भावनात्मक तो हम हो ही नही पाते बस तुलना ही करते रह जाते है दूसरो की उनके पास ये है तो हमारे पास क्यूँ नही इसी मे उलझे जीवन के अनमोल पलो को खोते रहते है जितना मिला था उसे भी हर पल नष्ट करते रहते है सिर्फ लालसा और तृष्णा के पीछे भागते रहते है।

मेरी सोंच तो यही कहती है शारीरिक और भौतिक सम्पूर्णता से ज्यादे महत्वपूर्ण मानसिक सम्पूर्णता होती है तन अगर कमजोर भी हो तो अगर मन सुदृढ और मजबूत है तो हम कुछ भी कर सकते है। मेरी नजर मे हर वो इंसान सम्पूर्ण और सक्षम है जो इंसानियत को सर्वोपरी मानता है, स्वयं को जानता और समझता है, अगर किसी को झुकाना जानता है तो झुकता भी है। सम्मान चाहता है तो सम्मान देता भी है।

छल,कपट,फरेब का जाल हमारे चारो ओर फैला है पर जो इन सबसे परे हो, सच्चा हो, ईमानदार हो,स्वाभिमानी हो किसी की आर्थिक स्थिति देखकर सम्मान न देता हो बल्कि उसके विचारो को उसकी अभिव्यक्ती के आधार पर एक इंसान होने के नाते उसे सम्मान पूर्वक देखता हो वही सम्पूर्ण और नेक इंसान है।

क्यों ना दिखावे का जीवन छोड़कर स्वयं को स्वयं की अपूर्णता का भान कराए उसे स्वयं ही दूर करे। एक सम्पूर्ण और नेक इंसान बने जो सिर्फ तन और धन से ही नही बल्कि इंसानियत से सक्षम हो।

परिपूर्ण हो मानसिक और व्यवहारिक रुप से यही हमारी वास्तविक संम्पूर्णता होगी।

सच की मानवीयता

मन में सदा अच्छे विचारों को स्थान दीजिए। दूसरे के लिए अच्छा सोचने वाले का अपना भी सब कुछ अच्छा होता ।यदि किसी के मन में दुर्भावनाएँ स्थायी रूप से अपना घर बना लेती हैं तो उस व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को बिगाड़कर रख देती है।

कहा भी गया है कोई किसी के लिए गड्डा खोदता है,उसके लिए खाई तैयार हो जाती है।इसलिए मन में हमें शुभ विचारों को प्रश्रय देना चाहिए। आप किसी की भलाई करते हैं तो मन में संतुष्टि का भाव उठता है और शुभकामनाओं के निकले शब्दों से हृदय शीतल हो जाता है।आत्मिक शांति मिलती है।

सत्य की अपनी प्रतिष्ठा है।सत्य बोलने वाले सबके प्रिय पात्र होते हैं।यह भी देखा गया है कि कुछ लोग अक्सर झूठ की खेती करते हैं मगर दूसरे से उनकी अपेक्षा रहती है कि वह सत्य को साथ लेकर उनके सामने आए।ऐसा इसलिए कि झूठा व्यक्ति को भी सत्य ही प्रिय होता है।झूठ का सहारा लेने वाले को भी आप सच का कद्र करते देख सकते हैं।अक्सर हमें किसी एक झूठ को छिपाने के लिए हजार झूठों का सहारा लेना पड़ता है।तब फिर सत्य बोलकर आप-हम निश्चिंत क्यों न रहें?हाँ,जब किसी के प्राण बचाने हों या जहाँ किसी की भावना या प्रतिष्ठा आहट हो रही हो या प्रेम-सौहार्द्र को बनाए रखना हो,वहाँ झूठ बोलना चलता है।लेकिन बात-बात में झूठ का सहारा लेने वाले व्यक्ति को कोई भी नहीं पसंद करता है।लोग उनकी बातों पर विश्वास नहीं करते और समाज की नज़रों में जरा भी उसकी इज्ज़त नहीं होती है।

शब्द को ब्रह्म कहा गया है। इसके दुरुपयोग से हमें बचना चाहिए।कहा भी गया है कि धनुष से छुटे बाण और मुख से निकले शब्द कभी वापस नहीं आते हैं।वाणी-संयम का अपना महत्व है।हमें व्यवहार में सोच -समझ कर शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।शरीर के घाव भर जाते हैं परंतु वाणी से आहट

हृदय सदा दग्ध रहता है।अक्सर देखा जाता है कि किसी भी दो व्यक्तियों के बीच का मनमुटाव की शुरुआत 'बात' से ही होती है।

इसलिए हमारी कोशिश रहनी चाहिए कि किसी के दिल को अपनी बातों से न दुखाएँ। यदि किसी के हृदय को आपकी बातों से दुःख पहुँचा हो और संयोग से पता चल जाए तो क्षमा माँगने में जरा भी देर मत कीजिए।

ज़िंदगी दो दिनों का मेला है।दुनिया से कूच करने के बाद सब कुछ यहीं छुट जाता है। आप अपना व्यवहार अच्छा रखिए।अच्छा बनकर किसी से भी मिलिए,सब कुछ अच्छा ही होगा।आप प्यार बाँटिए चलिए निश्चय ही बदले में आपको प्यार ही मिलेगा।

संस्कृत हमारी संस्कृति

विश्व की प्राचीनतम भाषा और आज के योग की कई भाषाओं की जननी कही जाने वाली देव भाषा संस्कृत की भारत में उपेक्षा किसी से छुपी नहीं है। देव भाषा संस्कृत के प्रति जहा देश में अलगाव की स्थिति है जिसका कारण हम सभी हैं। मगर अब जाकर कुछ संस्थान इस आवाह्न हेतु आगे आये है की देवभाषा संस्कृत को उसकी गरिमा फिर से दिलाई जा सके।

आश्चर्य की बात यह है कि संस्कृत शब्दों का विपुल भंडार है। खास बात यह है कि किसी और भाषा के सापेक्ष संस्कृत में सबसे कम शब्दों में वाक्य पूरा हो जाता है. नासा से अंतरिक्ष में भेजे जाने वाले प्रक्षेपण यान में अगर किसी अन्य भाषा का प्रयोग किया जाए तो अर्थ बदलने का खतरा रहता है, लेकिन संस्कृत के साथ ऐसा नहीं है, क्योंकि संस्कृत के वाक्य उल्टे हो जाने पर भी अपना अर्थ नहीं बदलते। संस्कृत वैश्विक पटल पर एकमात्र ऐसी भाषा है जिसे बोलने में जिह्वा की सभी मांसपेशियों का प्रयोग होता है।

संस्कृत मात्र एक भाषा नहीं अपितु एक संस्कृति है जिसे संजोने की जरुरत है। इसलिए यह अति आवश्यक है कि वर्ष में एक दिन हर भारतीय को यह स्मरण कराया जाए कि उसके अपने देश की भाषा कहीं पीछे छूटती जा रही है। संस्कृत के लोग इसलिए भी कम समझते हैं क्योंकि इसे लोगों ने भारत में अंग्रेजी भाषा जैसा स्थान नहीं दिया है।

राष्ट्र की अस्मिता के संवर्धन के लिए मैं अपनी व्यवहारिक भाषा में संस्कृत शब्दों का उपयोग करूंगा, उसी प्रकार अपने दैनंदिन व्यवहार में संस्कृत के छोटे-छोटे वाक्य, श्लोक, मंत्र का उपयोग कर सतत संस्कृत सीखने और सिखाने के लिए प्रयत्नशील रहूंगा।

प्रफुल्ल सिंह

सपनो की क़द्र करने वाला लायक और अपनों की क़द्र करने वाला नालायक

सत्र 2017 नवम्बर माह में आगरा से लखनऊ आ रहा था। रेलवे स्टेशन से घर के लिए एक बस में बैठ गया। मेरे पास में एक बुजुर्ग बैठे थे और उनके पास ही एक नौजवान खड़ा था जो उनका पूरा ख्याल रख रहा था। जब भी चालक ब्रेक लेता वो नौजवान उस बुजुर्ग के सर के पास हाथ रख देता ताकि उसके पिता जी को थोड़ा भी चोट न आये। उन्हें अपने हाथों से पानी पिलाता,ग्लूकोज़ देता और बस में चढ़ाता उतारता, या कहे तो उस बुजुर्ग का लाठी था वो नौजवान। उसके बिना उनका हर काम ही अधूरा था ,खाना, पीना,चलना, उठना ,बैठना, सम्भलना ,सबकुछ ।उनका पैर भी वही था उनका हाथ भी वही, उनका आँख भी वही उनका कान भी वही।

सफर आधी दुरी तय कर चुकी थी अचानक उस बुजुर्ग के एक पुराने मित्र मिल गए। उन्हें देखते ही बुजुर्ग के एक सूखे सिकुड़े हुए चेहरे पर एक हल्की सी लहराती मुस्कान आ गयी और अपने तोतले आवाज में बोले पांडेय जी आप कहा से ।पांडेय जी भी अपने पुराने मित्र को देखकर अति प्रसन्न हुए और बोले अरे बस शर्मा जी कुछ काम से आया था अब वापस घर जा रहा हु। साथ में खड़ा नौजवान बड़े सज्जनता से पांडेय जी का पैर छूता और आशीर्वाद लेता है। पांडेय जी उसे देख कर प्रसन्न होते हुए शर्मा जी से सवाल करते है ये आपका छोटा वाला रवि है न ? शर्मा जी भी सहमति से सर हिलाते है। फिर पांडेय जी उस नौजवान से पूछते है, क्या करते हो बेटा ? नौजवान कुछ बोल पाता उस से पहले शर्मा जी उदास होते हुए बोल पड़े कुछ नहीं बस ऐसे ही एक छोटा सा दुकान है वही देखता है और क्या करेगा और उनकी आवाज फँसने लगी। तभी पास खड़ा वो नौजवान पॉलिथीन से एक दवा और गिलास में पानी लेकर बोलता है, पापा यह दवा खाने का समय हो गया। दवा खाने के बाद शर्मा जी फिर से अपने मित्र की ओर देखते है और

बिना पूछे फिर से शुरू हो जाते है। इस बार शर्मा जी काफी खुश होकर बोलते है । जानते है पांडेय जी मेरा बड़ा वाला बेटा दिनेश MBA करके अमेरिका में रहता है इतना बड़ा आदमी बन गया है कि ऑफिस का सारा काम उसे ही देखना पड़ता है उसे फुर्सत ही नहीं की घर आये । 3 साल हो गये है, उसे आये हुए। फिर शर्मा जी आगे और प्रसन्न होते हुए बोले की बीच वाला मुकेश तो और बड़ा आदमी बन गया है इंजीनियर है और अपने कम्पनी का सारा प्रोदेक्ट(ठीक से प्रोजेक्ट भी नहीं बोल पा रहे थे) खुद ही देखता है ।अभी कम्पनी के काम से 2 साल से विदेश में है। 1 लाख सैलरी है पुरे एक लाख पांडेय जी ।ये सब कहते हुए शर्मा जी के आँखों में चमक थी। और फिर आखिर में अचानक से वो नौजवान के तरफ देखते है और फिर उदास मन से पांडेय जी के तरफ मुखातिब होते हुए बोलते है-और ये मेरा तीसरा और सबसे छोटा बेटा रवि, एक यही नालायक निकला पढ़ने में मन नहीं लगा और किसी तरह एक नौकरी भी मिली चेन्नई में तो छोड़ कर आ गया। और बहाने बनाता है कि पापा आपके पास रहना है और नालायक एक किराना दुकान चलाता है घर पर ही। इसे शर्म नहीं आती की इसके भाई कहा पहूँच गए और ये कहा पड़ा हुआ है। पांडेय जी सब चुप चाप सुन रहे थे और उस नौजवान के तरफ गर्व से देख रहे थे और मन ही मन कोस रहे थे की हाय रे कलयुग भाग दौड़ की दुनिया में तू कितना बदल गया है सपनो की कद्र करने वाला लायक और अपनों की कद्र करने वाला नालायक, ये कैसा इन्साफ है।

अचानक बोलते बोलते शर्मा जी की उल्टियां शुरू हो गयी और वो नौजवान बिना एक पल गवाये अपना हाथ उनके मुंह के सामने रख दिया और एक हाथ से सर सहलाने लगा। पांडेय जी के मन में बहुत सारी बातें दौड़ रही थी और उनकी गर्व भरी आँखे आँसुओ के बूंदों से चमक रही थी और एकटक उस नौजवान के तरफ देखे जा रही थी। पलके थी की ढलने को तैयार नहीं। फिर जब पांडेय जी बस से उतरने लगे तो शर्मा जी से बोले आप जरूर कोई महान आत्मा है शर्मा जी क्योंकि आपकी तपस्या, आपका सम्पति ,आपका अहंकार ,आपका जन्नत ,आपका बचपन, आपका जवानी, आपका हीरा , ये सबकुछ आपके करीब है। इतना कह कर पांडेय जी मुस्कुराते हुए

चले गए। शर्मा जी अपने छोटे बेटे की तरफ देखते रहे और पांडेय जी की बातों को सोचते रहे।

मैं भी ये सारा किस्सा देखकर बस एक गहरे समुन्द्र के भाति शान्त था। मेरी नजर उस नौजवान पर गर्व से देख रही थी जिसे सामाज अपने नजर से नालायक की तरह देखता है क्योंकि उसे अपने सपनो से ज्यादा अपनों की कद्र है। उसे अपने पिता के इस हालात में देख 1 लाख की पैकेज और बड़ी बड़ी कंपनियां नहीं दिखती जहाँ पैसे है पर वक़्त नही की जिसने उसे इस लायक बनाया उसे एक ग्लास पानी भी दे सके। तभी मेरा स्टॉप आ गया। मैं उस नौजवान का किस्सा, शर्मा जी और पाण्डेय जी के वार्तालाप और समाज की सच्चाई के उस बेमेल मिश्रण को अपने जेहन में लिए बस से उतर गया। और बार बार हर एक शब्द और वो छोटी कहानी मेरे दिमाग में घूमता रहा।

अपनी ही तलाश में

जीवन हर पल नया होता है इसलिए इसे किसी भी एक रूप में परिभाषित नहीं किया जा सकता। हर दिन के अलग-अलग अनुभव,कभी अच्छे तो कभी बुरे और कभी कुछ खास नहीं,सामान्य। यह तो सभी जानते हैं कि यही उतार-चढ़ाव जीवन का रूप हैं,यही जीवन है पर फिर भी सदा यही समझ नहीं आता कि कौन से रूप को जीवन कहा जाए और यदि ये रूप ही जीवन हैं तो फिर जीवन का अपना अस्तित्व कया है? क्या वो स्वयं अस्तित्वहीन है और अभी वो अपनी ही तलाश में है। अनेकानेक सवाल उपजते हैं मन मे जवाब की तलाश में। अनेकों रूप तो दिखते हैं पर जीवन नहीं कयोंकि इन रूपों की अपनी वजह है,अपना वजूद है अतः ये जीवन नहीं। इनका स्वतंत्र रूप ही इनकी पहचान है और 'रूप' में आप सुख-दुख,हास्य-क्रोध,अमीरी-गरीबी जैसी हजारों भावनायें महसूस कर सकते हैं,जिनके आधार पर जीवन के मायने तलाशने लगते हैं-किंतु 'जीवन' जिसकी स्वयं की कोई पहचान नहीं उसके मायने ?

'हम खुश हैं तो जीवन अच्छा हम दुखी जीवन बुरा'यही सब मानते हैं लेकिन अच्छा या बुरा हमसे जुड़ा है जीवन से नहीं फिर इस जीवन के विषय में इतनी चर्चा क्यों,हर ज़ुबाँ पर इसी का नाम क्यों।

शायद! अस्तित्वहीन चीज़ें अपने अस्तित्व की पहचान के लिए अधिक शोर मचाती हैं ताकि कोई तो उन्हें उनकी पहचान एक नाम दिला सके,और जीवन इसमें सर्वोपरि है तभी वो हर रूप,हर बात,हर क्षण खुद को अपनी मौजूदगी बताता है और अपने होने की शिनाख़्त चाहता है। तरस आता है जीवन पर,इसकी तमाम कोशिशों पर जो भटक रहे हैं अपनी ही तलाश में..!!

समय की महत्ता

समय का सदुपयोग नामक इस शब्द से तात्पर्य है। समय की महत्ता को समझते हुए अपने जीवन के हर क्षेत्र में समय का कुशलता पूर्वक प्रयोग करना। समय एक ऐसी चीज है, जो किसी भी स्थिति में अपने निरंतरता में बाध्यता नहीं आने देती है। यह हर पल चलती ही रहती है। हम मानव के जीवन में इसका सबसे अधिक महत्व है।

हमारी सफलता और असफलता इसी पर निर्भर करती है। क्योंकि सदियों से हमारे जीवन में ऐसा होता आया है कि, अगर सही समय पर हम किसी भी काम को सही ढंग से करते हैं। तो हमें निश्चित रूप से सफलता हासिल होती है। परंतु उसी काम को सही ढंग से करने के बावजूद भी अगर उसे सही समय पर नहीं करते हैं। तो हमारा असफल होना निश्चित सा हो जाता है। समय हमारे जीवन का वह बहुमूल्य तथ्य है। जिसे एक बार खो देने के बाद, पुनः हाँसिल नहीं किया जा सकता है। अतः निश्चित रूप से हमें अपने जीवन में सफल होने के लिए इसके महत्व को आत्मसात करना आवश्यक है।

हमारे जन्म से लेकर मृत्यु तक "समय नामक यह शब्द हमारे जीवन का एक अहम हिस्सा होता है। अपने जीवन में समय का कुशलता पूर्वक उपयोग करना ही कहलाता है। समय किसी का इंतजार नहीं करती है। यह हर-हमेशा चलती ही रहती है। इसकी अमूल्यता का अनुमान हम इन बातों से भी लगा सकते हैं कि, हर सफल आदमी से अगर उसकी सफलता का मूल मंत्र पूछा जाता है। तो, उनके सभी बातों के अलावा एक बात "समय को पहचानना" निश्चित जुड़ा होता है। जो मनुष्य जीवन में समय की मूल्यता को नहीं समझता है। उसके द्वारा जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफलता हाँसिल करना असंभव है।

जिस प्रकार दूध से एक बार दही बना देने के बाद उसे पुनः दूध के रूप में प्राप्त नहीं किया जा सकता है। ठीक उसी प्रकार जीवन में जो क्षण बीत जाता है। उसे पुनः प्राप्त करना संभव नहीं है। हर मनुष्य के जीवन में एक सीमित समय होता है और जब इसका अंत हो जाता है। तो हमारे जीवन का भी अंत

हो जाता है। समय वह रत्न है, जिसका सही ढंग से उपयोग करने पर गरीब भी अमीर बन जाता है और गलत ढंग से प्रयोग करने पर अमीर-से-अमीर व्यक्ति भी गरीब हो जाता है। अर्थात जो लोग समय को बर्बाद करते हैं। समय उसे बर्बाद कर देती है। समय के महत्तता और निरंतरता को ध्यान में रखते हुए कविवर कबीरदास जी ने ठीक ही लिखा है _ "काल करै सो आज कर, आज करै सो अब, पल में परलै होएगी, बहुरी करौगे कब॥"

अर्थात हमें शीघ्रता से समय रहते अपना काम पूरा कर लेना है। अन्यथा हम मुंह ताकते रह जाएंगे। अतः निश्चित रूप से किसी भी मनुष्य को अपने जीवन के लक्ष्य तक पहुंचने के लिए समय का सदुपयोग करना अनिवार्य है मानव जीवन का प्रत्येक क्षण अमूल्य है। यदि एक क्षण का भी दुरुपयोग होता है। तो मानव सभ्यता का विकास चक्र रुक जाता है। एक पल की शिथिलता जीवन भर का पश्चाताप बन जाती है।

संसार में आज तक जिस मनुष्य ने समय के मूल्य को पहचाना है और उसका सदुपयोग किया है। उन्होंने ही दुनिया के समक्ष अपना लोहा मनवाया है। हम मानव समय के साथ निरंतर चल नहीं पाते हैं। जबकि समय नामक अमूल्य संपदा का भंडार हमेशा हमारे पास होता है। और जब हम इस मूल्यवान संपदा को बिना सोचे समझे खर्च कर देते हैं। तब हमें इसकी महत्ता समझ में आती ।है परंतु यह एक ऐसी चीज है। जिसे एक बार खो देने के बाद हमें पछताने के सिवा कुछ हाथ नहीं लगता है। इसलिए तो विद्वानों ने भी कहा है कि, समय रहते हमें समय की महत्ता को समझ लेनी चाहिए तभी हम जीवन में सफल हो पाएंगे। इतना ही नहीं कई विद्वानों ने तो समय की महत्ता को स्पष्ट करने हेतु अपना विचार भी लिखे हैं।

समय ही एक ऐसी चीज है। जो हमें ऊंचाई की शिखर तक पहुंचा सकती है। और हमें गर्त में भी ले जा सकती है। समय दुनिया के उन चीजों में अपना स्थान रखती है जिस पर दुनिया के किसी भी चीज का वश नहीं चलता है। क्योंकि इसे न कोई शुरू कर सकता है, न अंत। न कोई खरीद सकता है, न कोई बेच सकता है। कुल मिलाकर कहें तो, समय पूर्ण रूप से स्वतंत्र है। यह एक ऐसा शासक है, जो दुनिया के समस्त संपदा को अपने अनुसार चलाती है। यहां तक कि हमारी प्रकृति भी समय के अनुसार ही चलती है।

मानव खोए हुए स्वास्थ्य को भी बुद्धिमान वेदो की सम्मति पर चलकर, पुष्टि-कारक औषधियों का सेवन करके तथा संयम जीवन व्यतीत करके एक बार फिर प्राप्त कर लेता है। भूली हुई और खोए हुए प्रतिष्ठा को मनुष्य थोड़े से शर्म से पुनः प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। सदियों के भूले-बिछड़े मिल जाते हैं। परंतु जीवन के जो छन एक बार चले गए। वह फिर इस जीवन में नहीं मिलता। कितनी अमूल्यता है क्षणों की, कितनी तीव्रता है, इसकी गति में। जो न आते मालूम पड़ते हैं, न जाते। परंतु चले जाते हैं।

जो अपने एक क्षण का भी अपव्यय नहीं करते, अपितु अधिक से अधिक उसका उपयोग अर्थात समय का सदुपयोग करते हैं। यही कारण है कि, संसार का महान से महान और कठिन से कठिन कार्य भी उनके लिए सुलभ हो जाता है। अब यह आपके ऊपर है कि, इन क्षणो का आप कैसे उपयोग करते हैं?

निद्रा में या निजी कार्य पूर्ति में, विद्या में या विवाद में, मैत्री में या कलह में, रक्षा में या परपीडन में। समय की अमूल्यता की घोतक कबीर की पंक्तियां भी कितनी महान है। “काल करै सो आज करै, आज करै सो अब, पल में परलै होएगी बहुरी करैगा कब"..!!

गुरुकुल शिक्षा ही हमारी पहचान

वैदिक ऋषियों ने अज्ञान को नष्ट करने वाले ब्रह्म रूपी प्रकाश को गुरु की संज्ञा दी है। अखंड मंडलाकारं व्याप्तं येन चराचरं, तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरुवे नम: कह कर भारतीय मनीषा ने जिस गुरु तत्व की अभ्यर्थना की है, वह अपने आप में अनूठी है। हमारी सनातन संस्कृति में गुरु को महज व्यक्ति नहीं ऐसी मार्गदर्शक सत्ता माना गया है जो भ्रम व अज्ञान के सभी आवरण हटाकर शिष्य के अन्तस को आत्मज्ञान की ज्योति से आलोकित कर देता है। इसी चिर पुरातन गुरु-शिष्य परम्परा के कारण प्राचीन काल में हमारा भारत आत्मविद्या के शीर्ष पर था। संस्कृति के पुण्य प्रवाह में हमारी आध्यात्मिक धरा के तप:पूत आचार्यों के आत्मज्ञान की प्रखर ऊर्जा ने समूचे राष्ट्रजीवन को प्रकाशमान किया था तथा अपने सुपात्र शिष्यों के माध्यम से इस दिव्य आत्मविद्या के सतत प्रवाहमान बने रहने की व्यवस्था भी सुनिश्चित की थी। शाश्वत जीवन मूल्यों और सुसंस्कारों के सतत बीजारोपण की इस अमूल्य परम्परा ने हमारे भारत को दुनिया का सर्वाधिक महान राष्ट्र और विश्वगुरु बनाया था।

भारत की गुरु-शिष्य परम्परा की महत्ता को उजागर करता पाश्चात्य दार्शनिक शोपेनहॉवर का यह कथन वाकई काबिलेगौर है कि विश्व में यदि कभी कोई सर्वाधिक प्रभावशाली व सर्वव्यापी सांस्कृतिक क्रांति आई है तो वह केवल उपनिषदों की भूमि-भारत से। जिज्ञासु शिष्यों ने ज्ञानी गुरु के समीप बैठकर उनके प्रतिपादनों को क्रमबद्ध कर उपनिषदों के रूप में दुनिया को जो दिव्य धरोहर दी है, उसका कोई सानी नहीं है। शोपेनहॉवर का कहना था, 'यदि मुझसे पूछा जाए कि आकाश मंडल के नीचे कौन सी वह भूमि है, जहां के मानव ने अपने हृदय में दैवीय गुणों का पूर्ण विकास किया तो मेरी उंगली भारत की ओर ही उठेगी। यदि मैं स्वयं से पूछूं कि वह कौन सा साहित्य है जिससे अब तक ग्रीक, रोमन व यहूदी विचारों में पलते आये यूरोपवासी प्रेरणा ले सकते हैं तो मेरी उंगली केवल भारत की ओर ही उठेगी।'

विश्वमंच से भारत की पुरातन ज्ञान सम्पदा का गौरवगान करने वाले स्वामी विवेकानंद का कहना था, हमें गर्व है कि हम अनंत गौरव की स्वामिनी इस भारतीय संस्कृति के वंशज हैं, जिसके महान गुरुओं ने सदैव दम तोड़ती मानव जाति को अनुप्राणित किया है। समय की प्रचण्ड धाराओं में जहां यूनान, रोम, सीरीया, बेबीलोन जैसी तमाम प्राचीन संस्कृतियां बिखरकर अपना अस्तित्व खो बैठीं, वहीं एकमात्र हमारी भारतीय संस्कृति इन प्रवाहों के समक्ष चट्टान के समान अविचल बनी रही क्योंकि हमें हमारी आत्मज्ञान सम्पन्न दिव्य-विभूतियों का सशक्त मार्गदर्शन सतत मिलता रहा।

भारत की गुरु-शिष्य परंपरा की प्रासंगिकता के बारे में गायत्री महाविद्या के महामनीषी युगऋषि पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य बेहद तर्कपूर्ण बात कहते हैं, गुरु-शिष्य परम्परा यानी आत्मज्ञान की पूंजी को आने वाली पीढियों तक पहुंचाने का दिव्य सोपान। प्राचीनकाल में जब किसी आत्मज्ञान के जिज्ञासु साधक के अंतस में अन्त्तप्रज्ञा जाग्रत होती थी तो वह किसी ऐसे सुपात्र को खोजता था जिसे उस आत्मज्ञान को हस्तांतरित कर सके। भारत में यह सिलसिला बिना किसी बाधा के सदियों तक लगातार चलता रहा। पौराणिक युग में परशुराम, कणाद, वशिष्ठ, विश्वामित्र, भारद्वाज, गौतम, अत्रि, सांदीपनि, व्यास, द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, अगत्स्य आदि ऋषि महर्षियों की सुदीर्घ श्रंखला ने हमारे देश को ऐसे-ऐसे नररत्न दिये, जिनका आज भी कोई सानी नहीं है। वन प्रांतों के शांत, शुद्ध व यज्ञधूम्र से पवित्र गुरुकुलों में तत्वदर्शी गुरु अपने अंतर्ज्ञान को अटूट विश्वास, पूर्ण समर्पण और गहरी घनिष्ठता के माहौल में अपने शिष्यों तक पहुंचाते थे।

भारत सदा से विद्या का उपासक रहा है। शास्त्रज्ञ कहते हैं- सा विद्या या विमुक्तये अर्थात सच्ची विद्या वह है जो हमारे अन्तस से प्रभुत्व को मिटाकर देवत्व की भावना जाग्रत करती है, हमें जीवन का सत्य स्वरूप और सन्मार्ग दिखाती है। पश्चिमी चिंतन में गुरु का कोई महत्व नहीं है, इसीलिए वे लोग शिक्षा व विद्या का भेद नहीं जानते।

भारत का जीवन-दर्शन रहा है शिक्षा-विद्या, भोग योग, भौतिकता आध्यात्मिकता, शरीर-आत्मा, प्रकृति परमात्मा आदि का सन्तुलन एवं समन्वय। हम भारतीय अज्ञान के नहीं, ज्ञान के उपासक रहे हैं। जीवन के हर

क्षेत्र में विशुद्ध रूप में ज्ञान की प्रतिष्ठापना करना हमारी संस्कृति की विशेषता रही है। पश्चिमी जगत मनुष्य का आकलन इस बात से करता है कि तुम्हारे पास क्या है! क्योंकि उनका जीवन दर्शन भोगप्रधान है। जबकि भारतीय चिंतन में व्यक्ति को इस तराजू पर तौला जाता है कि तुम क्या हो! क्योंकि हमारा भारतीय दर्शन आत्मप्रधान है। एक समय हमारी देवभूमि की इसी ज्ञान-संपदा ने विश्व को दिशा देने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारतीय समाज में बेकारी की समस्या नहीं थी। भारतीय समाज में कर्म के अनुसार जातियां तो थीं पर जातिवाद नहीं था। दो शताब्दियों की गुलामी ने हमें पाश्चात्य सोच का गुलाम बना दिया। यदि इस दृश्य को बदलना है तो हमें गुरु शिष्य परम्परा को पुनर्जीवित करना ही होगा।

प्रफुल्ल सिंह

लेखन बाजारीकरण नहीं

भारत के युवा लेखक (हिन्दी) बाज़ारोन्मुख नहीं। दूसरे शब्दों में पश्चिम के बाज़ारवादी लेखन से अलग वे बाज़ार के लिये नहीं लिखते। यह प्रचार भ्रामक हो सकता है। यह एक ऐसी मानसिकता को जन्म देता है जहां मांग-आपूर्ति के स्वाभाविक सिद्धांत का उल्लंघन ही नहीं होता वरन जिससे एक किस्म की अराजकता भी उत्पन्न होती है।

लेखन का मूल और अंतिम उद्देश्य क्रय-विक्रय नहीं, यह सच है। लेकिन क्रय-विक्रय के केन्द्र में जो मांग-आपूर्ति, गुणवत्ता, उपयोगिता और स्पर्धा जैसे साकारात्मक तत्त्व हैं उनपर विचार करना आवश्यक है। स्वांत: सुखाय किस्म का लेखन एक अलग किस्म का लेखन है और उसकी उपयोगिता सिद्ध होने के लिये एक लेखक को संत होने की प्रक्रिया से गुजरना और संत होने की शर्त भी शामिल है, यह ध्यान में रखा जाना चाहिये। हर स्वांत: सुखाय किस्म का लेखन उच्च कोटि का लेखन हो ऐसा जरूरी नहीं और हर उच्च कोटि का लेखन स्वांत: सुखाय हो ऐसा भी जरूरी नहीं। एक उच्च कोटि के लेखन का क्या मापदंड होना चाहिये वह विचारणीय है। किसी भी प्रकार के लेखन के लिये आवश्यक तत्त्व है उसका उपयोगी होना - व्यक्ति, समाज, देश और काल के लिये। अगर कोई वस्तु उपयोगी है तो हम उसका मूल्य भी देने के लिये तैयार होते है। इसलिये एक अच्छे लेखन के लिये उसका बाज़ार में बिक पाना एक सहज ही मापदंड हो जाता है।

आज अगर हम हिंदी समाज में हो रहे लेखन की मात्रा पर गौर करे तो वह आशातीत लगती है। यह एक साकारात्मक रूख है। लेकिन उसके बाज़ार पर ध्यान दें तो स्थिति अगर दयनीय नहीं भी तो बहुत अच्छी भी नहीं। और अगर एक स्वतंत्र हिंदी लेखक की आर्थिक दशा पर गौर करें तो स्थिति और भी साफ हो जायेगी। आज का अधिकांश हिंदी लेखक दोहरी जीवनवृत्ति अपनाने के लिये बाध्य है। और इसके कारण भी हैं। लेकिन ऐसा होने के कारण लेखक अपने और अपने लेखन के साथ पूरा न्याय न कर सकने के

कारण वह स्वयं वह सब नहीं पा पाता जो उसे मिलना चाहिये और भाषा-साहित्य-समाज को वह सब नहीं मिल पाता जो उसे मिल सकता था। यही नहीं यह कई किस्म की कुरीतियों को भी जन्म देता है - वैचारिक गुटबंदियां, सरकारी पदों-अनुदानों और पुरस्कारों की होड आदि जिसका खामियाजा न सिर्फ़ साहित्य बल्कि पाठकों और समाज को भी भरना पडता है।

अक्सर यह सुनने को मिलता है कि हिंदी साहित्य का बाज़ार बहुत बडा नहीं है। यह सच है। लेकिन यह जानना जरूरी है कि अगर भारत में अंग्रेजी साहित्य का बाज़ार हिंदी साहित्य से बडा है तो उसके कारण क्या हैं । बात फिर भारत के मध्यवर्ग पर आकर ठहरती है। पिछली सदी से मध्यवर्ग दो टुकडों में बंट या खिंच गया है। उच्च मध्यवर्ग ने उच्च वर्ग की तरह ही साहित्य और समाज से अपने सरोकारों को खत्म कर लिया। निम्न मध्यवर्ग जिसका सरोकार आज भी साहित्य और समाज से ज्यादा है अपने दैनंदिन की उहापोह और समाज के बदले तेवर के बीच आधुनिकता, प्रगतिशीलता और संस्कारों के तिराहे पर किंकर्त्तव्यविमूढ की तरह खडा नज़र आ रहा है। ऐसे में साहित्य की उपयोगिता ही संदिग्ध है तो इसके बाज़ार के अस्तित्व का खतरे में पड जाना स्वाभाविक ही है। तो क्या यह मान लेना चाहिये कि अब कुछ भी नहीं हो सकता ?

आज हम चुनौतियों के बीच जी रहे हैं और ऐसा कोई पहली बार नहीं हो रहा है। हर सभ्यता-साहित्य-संस्कृति के इतिहास में ऐसी परिस्थितियां आती रही हैं । जिन्होंने इनका न सिर्फ़ सामना किया बल्कि इनसे सीखते हुए अपना मार्ग निर्धारित और प्रशस्त किया वे दृढ से दृढतर होते चले गये।

लेखन के उद्देश्य निर्धारित होने चाहिये। समय और समाज के बदलते तेवर के साथ सामंजस्य स्थापित होना चाहिये। लेखन की मात्रा और गुणवत्ता के बीच संतुलन होना चाहिये। लेखकों को लेखन का प्रशिक्षण लेना चाहिये। अभिव्यक्ति के अन्य लोकप्रिय माध्यमों (मीडिया, फ़िल्म, टीवी आदि) के साथ मिलकर एक दूसरे को और उपयोगी और उन्नत होने में मदद करनी चाहिये।

मन में यह विश्वास होना चाहिये कि अगर आज भी सूर, तुलसी, मीरा, प्रेमचंद, प्रसाद, रेणु, मोहन राकेश, निर्मल वर्मा आदि की पुस्तकें बाज़ार में

बिकती है, उनकी मांगे हैं तो आज का हिंदी लेखक भी अपने प्रयासों के बल पर आज की पीढी ही नहीं बल्कि आने वाली अनेकानेक पीढियों के बीच अपने लेखन की मांग को न सिर्फ़ बनायेगा बल्कि कायम भी रख पायेगा। इसके लिये हर किसी को बना बनाया रास्ता चुनना नहीं बल्कि स्वयं बनाना और उस पर बढना होगा।

कहानियों का महत्व एवं उपयोगिता

कहानी सुनाना सीखने-सिखाने की सबसे पुरानी और शक्तिशाली विधि है। दुनिया भर की संस्कृतियों ने हमेशा से ही विश्वास, परंपराओं और इतिहास को भविष्य की पीढ़ी तक पहुंचाने के लिए कथाओं / कहानियों का उपयोग किया है। कहानियां कल्पनाशीलता को बढ़ाती हैं , कहानी कहने और सुनने वाले के बीच समझ स्थापित करने के लिए सेतु का काम करती है और बहुसांस्कृतिक समाज में श्रोताओं के लिए समान आधार तैयार करती है।

कहानी सुनाने का उद्देश्य मनोरंजन के साथ साथ समसामयिक जीवन को समझने, उसमें अपनी भूमिका को देखने, पात्रों के बारे में चर्चा के माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों को समझने व उसके अनुसार व्यवहार करने की समझ दीर्घकाल में विकसित करना होता है। कहानी सुनने का आनंद सर्वोच्च है और बाकी सारी चीज़ें अनायास ही एक सार्थक प्रयास से पूरी होती जाती है। मनुष्य में मौखिक भाषा के उपयोग से सिखाने , समझाने और मनोरंजन करने की स्वाभाविक क्षमता होती है , इसी कारण से कहानी का उपयोग रोजमर्रा की जिंदगी में बेहद प्रचलित है।

भारत के संदर्भों में जहाँ बहुसांस्कृतिक समाज है , कहानी स्कूलों में शिक्षण शास्त्र का एक सशक्त माध्यम हो सकती हैं । राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा इस बात की अनुशंसा करता है कि स्कूली ज्ञान को समुदाय के ज्ञान से जोड़ा जाए। विभिन्न समुदायों में ज्ञान के संसाधन के रूप में प्रचलित कहानियां , स्कूल को समुदाय से जोड़ने का एक अच्छा साधन है। कहानियाँ बच्चों को समूह में चुप्पी तोड़ने , समुदाय से सीखने , कहानी लिखने , कहानी की घटनाओं पर आधारित रचनात्मक चित्र बनाने और अर्थपूर्ण सीखने के अनुभव बनाने के लिए प्रेरित करती हैं। स्कूलों में यह महत्वपूर्ण विधा बच्चों के लिए उपयोगी शिक्षण उपकरण है। कहानी के उपयोग से विषयों में भी रोचकता आ जाती है। भाषा का कहानी कहने की कला से स्वाभाविक जुड़ाव

होता है । दूसरे विषयों में भी कहानी के उपयोग से जांच पड़ताल / खोजबीन का काम किया जा सकता है।

कहानी को परिभाषित करने से पहले एक बात स्पष्ट करना जरूरी है कि जिस प्रकार गीली मिट्टी को अलग अलग रूपों में ढ़ाला जा सकता है , उसी प्रकार हमारी कहानियां भी अपनी प्रकृति , सुनने / पढ़ने वालों और परिस्थिति के अनुसार अपने आप को अलग-अलग रूपों में ढ़ाल सकती हैं।

कहानी किसी सच्ची या काल्पनिक घटना का इस प्रकार का वर्णन है जिसमें कहानी सुनने वाला सुनकर कुछ अनुभव करता है या कुछ सीखता है। कहानी जानकारी , अनुभव , दृष्टिकोण या रुख को समझाने का एक माध्यम भी है। हर कहानी के लिए एक कहानीकार और एक सुनने वाला होता है। माध्यम चाहे कोई भी हो , यह जरूरी है कि एक कहानी कहने वाला और एक कहानी को ग्रहण करने वाला होना ही चाहिए।

हम सब रोज कहानियां कहते हैं। ज्यादातर अपने आप से। किसी विषय पर अपने विचार बनाने , भविष्य के बारे में कल्पना करने , अपने आप को कुछ याद दिलाने , समझाने आदि के लिए हम अपने आपको कहानी सुनाते हैं। हम सभी के अंदर कहानी सुनाने का एक तंत्र होता है और सामग्री से भरपूर होता है । यही वो जगह है जहां कहानियों का जन्म होता है। इस प्रकार पहले कहानीकार और कहानी के पहले श्रोता हम स्वयं ही हैं।

कहानी 'एक उत्सव' भी है इस आयोजन से जहां स्कूल और समुदाय की दूरी घटी , वहीं शिक्षक समुदाय में एक नयी चर्चा शुरु हुई कि सामुदायिक-ज्ञान स्कूली-ज्ञान का आधार है और समुदाय के सांस्कृतिक प्रसंगो की मदद से भाषा , विज्ञान , सामाजिक जीवन आदि का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

कहानी-उत्सव के आयोजन के पश्चात स्कूलों में बहुत सी सामुदायिक कहानियां और उनसे संबंधित चित्र उपलब्ध हुए जो दीवार-पुस्तिका , बड़ी और छोटी किताब , आदि बनाने के लिए उपयोगी साबित हुए। साथ ही बच्चों की रचनात्मक प्रतिभा उनके स्कूल की गतिविधियों का हिस्सा बनीं।

मेरी प्रार्थनाओं का स्पर्श तुम्हें सदा सुरक्षित रखेगा

जीवन कोई उपहास नहीं घुटन सी होती है कभी-कभी। सोचता हूँ क्या सीमाओं का बाँध ज़रूरी है? मुझे प्रतीत होता था नहीं। क्या आँखों को आँसुओं की अभिलाषा होती है? नहीं बिल्कुल नहीं पर ये आँसू आँखो में रहना चाहते हैं, शायद उनकी नमी में सपने पल रहे होते हैं।

पर जब ये नमी हृदय में पहुँची तो शत्रु बन गई वेदनाएं पनपने लगी बिना सोचे समझे। मेरे अपने विवेक ने भी मेरा साथ नहीं दिया सारी क्षमताएं एक सीमा पर आकर मौन होकर ठहर गई किसी अपरिचित की तरह। सच है ये पर न जाने क्यों मन इससे अपनत्व नहीं करना चाहता। संकीर्णताओं का आस-पास होना हमेशा बाधक बन जाता है, विचारों की स्पष्टता में उसके विस्तार में

कोई नहीं सुनता भावनाओं का क्रंदन, अधिकारों पर आघात का कष्ट, यहाँ तक कि किसी को अपार पीड़ा देकर भी कोई बोझ नहीं होता जीवन पर निर्दोष होकर भी, समय की तपती लपटे झुलसने पर मजबूर कर देती है। कुछ घाव समय के साथ भी नहीं भरते लाख प्रयत्नों के बाद भी। कुछ पीड़ाएं, कुछ अनुभव सीमाओं में बाँधकर मृत कर देते हैं मनुष्य को किससे कहूँ कुछ भी ।

मुझे आभास है मैं अकेला हूँ, अकेला होकर भी प्रेम की सम्पूर्णता को जीना चाहता हूँ। अपने जीवन ने ही ऐसे पाठ पढ़ाए तो तमाम किताबों से भी नहीं मिला। सम्बन्ध औपचारिकता मात्र नहीं होते उन्हे जीवित रहने के लिए,विश्वास रूपी साँसों की आवश्यकता भी होती है।सर पर हाथ होने का आभास मात्र ही जीवन जीने के लिए काफी होता है। पर एकान्तता की चीखे विचलित कर देती है मन को। परिस्थितियों से लड़कर हम जीत सकते थे, पर अब मेरे पास तो कुछ भी नही बचा कुछ भी नहीं। न सुकून, न खुशी न कोई आशा कुछ भी नहीं। शायद यही नियती थी या फिर मेरा भाग्य। जो कुछ भी हो नहीं पता पर हाँ...

मेरी प्राथनाओं का स्पर्श तुम्हें सदा सुरक्षित रखेगा, दूर नहीं रह सकता तुम्हारे हृदय से। दूर होकर भी साथ रहूंगा पर हां तुम्हें आभास भी न होगा।।

युवा वर्ग साहित्य से मीलों दूर

युवा वर्ग साहित्य से दूर होता जा रहा है। इसका पहला संभावित कारण है कि साहित्य व्यावहारिक नहीं रहा। दूसरा कारण है कि युवा करियर की स्पर्धा में है तथा उनका रुझान सोशल मीडिया व इंटरनेट की ओर है। इसके अलावा अध्ययन व अध्यापन में साहित्य का घटता दायरा भी इसके लिए जिम्मेवार है। युवाओं के साहित्य से दूर होने के क्या कारण हो सकते हैं, युवाओं में साहित्य पढ़ने के लिए न तो समय, न ही रुचि है।

सोशल मीडिया में पूरी तरह व्यस्त आज का युवा साहित्य से दूर होता जा रहा है। साहित्य में उसकी रुचि कम होती जा रही है। बहुत कम ही युवा ऐसे हैं जो साहित्य में रुचि रखते हैं। दरअसल साहित्य पढ़ने के लिए उनके पास समय ही नहीं है। अगर थोड़ा-बहुत समय है भी, तो उनकी साहित्य में रुचि नहीं बन पाती है। युवा सोशल मीडिया पर इतना व्यस्त है कि उसे साहित्य पढ़ने का तो क्या, उसे पलटने तक का समय नहीं है। समाज के लिए यह चिंता का एक विषय है। साहित्य से युवा क्यों दूर होता जा रहा है।

"साहित्य जनता की चित्तवृत्तियों का संचित प्रतिबिम्ब होता है " वर्तमान में साहित्य के, युवा वर्ग के और उससे जुड़े सरोकार के अर्थ पूरी तरह बदल गए हैं। समय बदल गया है। लेखन बदल गया है और इससे अधिक युवा पीढ़ी की सोच बदल गई है। पाठ्यक्रमों से सद्-साहित्य नदारद है। पढ़ने-पढ़ाने का सिलसिला लगभग खत्म हो गया है। अब हर जरूरत के लिए " गूगल पंडित" मौजूद है। शिक्षाप्रद साहित्य का स्थान मनोरंजक साहित्य ने ले लिया है।

युवा ही क्यों ? सभी आयु वर्ग के कहीं न कहीं हल्के-फुल्के मनोरंजन की तलाश में रहने लगे हैं। स्तरीय पत्र-पत्रिकाओं की प्रसार संख्या तेजी से घट रही है। रही-सही कसर हर हाथ में उपलब्ध मोबाइल, कम्प्यूटर से दुनिया मुट्ठी में आ गई है। इस मुट्ठी में क्या "बंद" हो रहा है, यह बताने की किसी को भी जरूरत नहीं है।

दो-तीन दशक पहले पढ़ने से ज्यादा सरल और सस्ता कोई मनोरंजन नही था। चंदामामा, नंदन, चंपक कॉमिक्स आदि हमारे ज्ञानवर्धन और मनोरंजन तथा आंनद के साधन थे, किंतु अब हम बिना पठन-पाठन के ही आंनदित और अलंकृत होना चाहते हैं।

गिरावट का यह दौर हमारे समाज और राष्ट्र के नैतिक परिवर्तन का कारण बनता जा रहा है, बावजूद इसके साहित्य के क्षेत्र में अनेक नाम ऐसे हैं जो अपने लेखन से समाज को दिशा देने के लिए कटिबद्ध हैं। इनका लेखन भी नई पौध को आकर्षित कर रहा है। यह भी सही है कि अब पत्र-पत्रिकाओं का स्वरूप भी डिजिटल होता जा रहा है जिसे उपलब्धि के रूप में ही देखा जाना चाहिए। "युवा वर्ग" इसका सद् उपयोग करें, अच्छा साहित्य पढ़ें, अच्छे लेखकों से जुड़ें - यह अपेक्षा तो रहेगी ही । वर्तमान में फेसबुक को इसके लिए मैं एक सशक्त मंच के रूप में देखता हूं। युवा मित्र यदि इसका बखूबी उपयोग करें और इसमें पोस्ट लेख, कहानियां, रिपोर्ताज , व्यंग्य, कविताएं पढ़कर उस पर अपने विचार लिखें, तो इससे उनकी विचार शक्ति, शब्द् कोष तो बढ़ेगा ही, लेखन के प्रति सम्मान भी बढ़ेगा और वे भी लिख पाएंगे, अच्छा लिख पाएंगे। यही उनका साहित्य और समाज से सरोकार भी होगा।

साहित्य है क्या ? जो समाज का हित करे, वही तो साहित्य है। हम सब जानते हैं कि हमारे अंदर उमड़ते-घुमड़ते विचारों की जब तक किसी भी रूप में अभिव्यक्ति नहीं हो जाती तब तक हम तनाव और अवसाद में रहते हैं। क्रोधित भी होते हैं तो इन्ही अंदर के विचारों, आकांक्षाओं और लालसाओं को विविध तरीके से प्रकट कर तनाव मुक्त हो जाते हैं। ऐसा ही कुछ लेखन के साथ भी करें। शांत और एकाग्र मन से किसी विषय पर चिंतन करें और कागज पर उसे उतार दें, हो गया लेखन। फिर यह परिष्कृत तो धीरे-धीरे बढ़ते अध्ययन से हो ही जाता है। शुरुआत तो करें। बस इतना ध्यान रखें कि आपके सकारात्मक विचार पाठकों में ऊर्जा और प्रेरणा भरेंगे इसलिए निराशा से बचें। निराशा नकारात्मकता पैदा करती है जो हमेशा सबके लिए घातक होती है।

अंत में इसी अपेक्षा के साथ युवा साहित्यिक मित्रों से कहना चाहूंगा कि वे लिखने से पहले पढ़ें जरूर। और ऐसे पढ़ें, जैसे मनोरंजन के लिए पढ़ रहे हों। धीरे-धीरे जब हम उसमें रमने लगेंगे, तो ऐसा लगेगा जैसे पढ़ने से सस्ता कोई

मनोरंजन नहीं और लिखने से अच्छा कोई आंनद नहीं। एक बात और, किताबों को या डिजिटल माध्यमों को मित्र, गुरु और सलाहकार बनाइए। कहा भी गया है - कि किताबें मित्रों में सबसे अधिक शांत और स्थिर होती हैं। सलाहकारों में सबसे सुलभ और बुद्धिमान होती हैं। यही नहीं, किताबें सबसे ज्यादा धैर्यवान शिक्षक भी होती हैं। इसीलिए कहा - इन्हें मित्र, गुरु और सलाहकार बनाइए। ये आपको अवसाद और तनाव से भी मुक्त रखेंगी क्योंकि आज युवा वर्ग की यह भी एक त्रासद स्थिति है।

प्रफुल्ल सिंह

जिंदगी धूप छाँव सी

कई बार जीवन में बहुत कुछ अनापेक्षित ही मिल या घट जाता हैं जिसकी हम कभी कल्पना भी नही किये होते हैं पर शायद इसी का नाम जिन्दगी हैं धूप-छावं सी जिस पर हम चाहकर भी प्रतिबंध नही लगा सकते उसे घटित होने से नही रोक सकते हैं।

कई बार ये परिवर्तन सुखदायी और कई बार अत्यंत पीड़ा दायक और कष्टकारी होता हैं असहनीय हो जाता हैं जिसे सह पाना नामुमकिन सा लगने लगता हैं जीने की आकांक्षा ही मिट जाती हैं हम स्वयं में ही हम टूट से जाते हैं वक्त वही ठहर जाता है।

यूँ लगता हैं अब सबकुछ खत्म हो गया कुछ नही बचा क्यूकिं मन का टूटना, दुनिया की हर चीज़ के टूटने से ज्यादा दुःखदायी होता है और विश्वास का टूटना, मनुष्यता का विनष्ट होना है हम सोंचते है हमे दुःख हमारी गलतियों की वजह से मिला हमने गलत राह चुन ली पर यथार्थ बिल्कुल विपरीत ही होता है हम रास्ते नही चुनते, रास्ते चुनते हैं हमें।

परिस्थितियां कुछ यूँ बन जाती है कि हमें आभास भी नही होता ना ही एहसास की क्या सही और क्या गलत कठपुतली की तरह नियति के हाथो नाचते रहते है हर एहसासों को भोगने के लिए नियति बार बार हमे ले जाती है असह्य पीड़ा अपरिमित प्रतीक्षाओं की ओर..

शायद, अपने ही कर्मों के अनुबंध से बंधे होते हैं रास्ते खुशियों के और गमों के संघर्षों और पीड़ाओं असहनीय यातनाओं के इसीलिये स्वयं को दोषी मानकर जो हो रहा हैं स्वीकार कर ठहरे नही अपितु बढ़ते रहे अपनी सोंच को सकारात्मक रखे सब कुछ कभी नष्ट नही होता कुछ न कुछ अवश्य रह जाता है जैसे- लकड़ी जल जाने के बाद राख बची रह जाती है।

वैसे ही मन टूटने के बाद भी कही न कही इच्छा शक्ति शेष रह जाती है जिसकी वजह से आप खुद को टूटा महसूस कर रहे थे उसी को जीने की

वजह बना लीजिये जीने के लिए वही पर्याप्त हैं बस अपना दृष्टिकोण बदलने की जरूरत हैं।

कहना बस इतना ही हैं कि जीवन बहुत मूल्यवान है इसे यूँ ही नष्ट नही करना चाहिए जहां भी लगे अंत हैं वही से शुरू करें। रास्ते चाहे जितने भी अनजाने क्यूँ न हो खत्म तो कही न कही होगें ही। अनजानी डगर की भी मंजिल होती है हताश या निराश होकर लौटने की बजाय उसी पर निरन्तर आगे बढ़ते रहे एक दिन आप स्वयं देखेंगें कि आप ने वो पा लिया जो असम्भव था।

विश्वास

दुनिया का सबसे गहरा रंग विश्वास का रंग जो ना ही आसानी से चढ़ता है और ना ही उतरता है आत्मा एक बार जिसके विश्वास के रंग मे रंग जाती है बस उसी की होकर रह जाती है।

अगर किसी के आत्मा पर आपके विश्वास का रंग चढ़ा हो कोई उस रंग से सजा, संवरा हो तो कोशिश करियेगा की उसका वो रुप रंग कभी फीका न पड़े क्यूकि ये रंग जब उतरता है तो जिंदगी बेरंग हो जाती है जीने की चाह मिट जाती है जिस किसी के लिए आप महत्वपूर्ण और विश्वसनीय हो तो कभी भी अपने महत्व को उसकी नजरो मे कम मत होने दीजियेगा।

क्यूकि किसी के रंग मे रंगने के लिए अपना असतीत्व खोना पड़ता है ऐसे लोग बहुत दुर्लभ होते है जो विश्वास के रंग मे रंगते है आप पर यकीन करते है खुद से ज्यादा, खुद को भुला देते है आपके लिए ऐसे लोगो का प्यार, विश्वास और सम्मान ही ईमान होता है।

जिसने भी आपके लिए सम्मान से अपने दिल का दरवाजा खोल रखा हो और आप विश्वास रूपी मेहमान बनकर उसके दिल मे दाखिल हुए हो और उसने पूरी आत्मियता से आपका स्वागत किया हो तो सर्वदा उसके स्वागत सत्कार का मान करियेगा आप भी उन्हे वही सम्मान दीजियेगा जो उन्होने आपको दिया। आप भी उसी तरह उनके विश्वास का मान रखियेगा जिस तरह उन्होने आपका सम्मान से रखा..!!

व्यक्तित्व

व्यक्तित्व की भी अपनी वाणी होती है, जो बिन शब्दों के ही अंतर्मन को छू जाती है। हम सब एक दूसरे से भिन्न हैं, तन और मन दोनो से हर व्यक्ति में अंतर होता है सभी में कुछ खूबियां और खामियां दोनो ही होती हैं। बात तो सिर्फ उन्हें पहचानने और अच्छे गुणों को आत्मसात करने और बुरे गुणों को त्याग करने की है।

हर व्यक्ति का अपना - अपना व्यक्तित्व होता है जिसके वजह से वह भीड़ मे भी अपनी अलग छवि के कारण पहचान लिया जाता हैं।

जीवन में व्यक्तित्व का विशेष महत्व होता है सूरत कैसी भी हो, लेकिन सीरत अच्छी होनी चाहिए क्योंकि सीरत ही हमारे व्यक्तित्व को दर्शाती है।

हमारे इर्द - गिर्द बहुत से खूबसूरत चेहरे रहते हैं जो हमारी आँखों को तो भाते हैं पर मन को नही लुभा पाते कुछ लोग बहुत सुंदर दिखते है, लेकिन संयोग से कभी हम किसी ऐसे शख़्स से मिलते हैं जो दिखने मे एकदम साधारण सा लगता हैं लेकिन उसका व्यक्तित्व हमे लुभाता हैं। हमारे मन पर गहरी छाप छोड़ देता है।

जो दिखने मे तो साधारण है पर स्वयं मे असाधारण हैं बिलक्षण प्रतिभा का स्वामी हैं उसके चेहरे पर छायी मधुर मुस्कान, उसके व्यवहार में शिष्टाचार और बातचीत करने का सलीका इत्यादि हमारे दिलो - दिमाग में एक खास पहचान बना लेता है और हम उससे प्रभावित हो जाते है।

किसी का व्यक्तित्व उसके केवल एक गुण के कारण नहीं बनता, बल्कि इसमें उसकी संपूर्ण छवियां जैसे - ज्ञान, अभिव्यक्ति, सहनशीलता, गम्भीरता, प्रस्तुतीकरण, मधुर व्यवहार आदि होती है। यदि हमारी सोंच हमारी छवि सकारात्मक होती हैं तो हम दूसरो के सामने प्रशंसा के पात्र बनते है।

इसीलिये सदैव सकारात्मक विचार रखें और हमेशा सृजनात्मक कार्य करें, अपनी छवि को सदैव उज्जवल रखें। सूरत से नही बल्कि सीरत से क्यूकिं हमारा व्यक्तित्व ही हमे समाज मे स्थापित करता हैं दूसरो मे अवगुण देखने की

बजाय उनके गुणों का अनुसरण करे, अनुशासित और मर्यादित जीवन जीने के लिए प्रतिबद्ध रहे क्यूकिं व्यक्ति की सम्पूर्ण छवि का नाम ही व्यक्तित्व है। जो वह दूसरों के सामने बनाता है।

भीड़ का हिस्सा नही भीड़ मे भी पहचान बने अपने व्यक्तित्व का निर्माण करें, विषय नहीं अपितु विशेष बने जिससे हर कोई प्रभावित हो आपका अनुसरण करे।

सार्थक मृत्यु

आज की सुबह की शुरुआत बहुत अच्छी थी। मन में बहुत से विचार टहल रहे थे। सोचा था कुछ लिखूंगा। मगर तभी एक करीबी की आत्महत्या की खबर मिली। वो मुझसे उम्र में छोटा था। उसकी जिंदगी मुझसे कहीं बेहतर थी। बस एक कठिन दौर और उसने ज़िंदगी का हाथ छोड़ दिया। जब भी कोई ऐसे अचानक मरता है तो मुझे ऐसा लगता है जैसे वो मुझे धिक्कार रहा हो। जैसे कह रहा हो कि देखो मुझे मैंने सहने की जगह मुक्ति चुनी। और एक तुम हो जो इस बदतर ज़िन्दगी को ढोये जा रही हो। आखिर तुम्हें ज़िंदगी से इतना लगाव क्यों है। तुम डरपोक हो, जब एक झटके में अपनी तकलीफों से मुक्ति मिल सकती है तो क्यों सहते हो?

मेरे पास इन प्रश्नों का कोई जवाब नही होता। मौत के बारे में जितना मैं सोचता हूँ, शायद ही कोई इतना सोचता होगा। मुझें मौत से डर नही लगता ये उतना ही सच है जितना कि दिन और रात। एक बार किसी खास ने मुझसे कहा था कि "अगर तू मर गया होते तो अब तक हम सब तुझे भूल गये होते"। बस यही मैं नही होने देना चाहता। मैं मरने से नहीं डरता मैं भुलाए जाने से डरता हूँ। लोग अपनी ज़िंदगी को लेकर जितने कल्पनाएं करते हैं न उतनी कल्पनाएं मैं अपनी मौत को लेकर करता हूँ। मैं ऐसे ज़िंदगी से हारकर नही मर सकता। ज़िंदगी भले ही साधारण हो मगर मुझे मौत साधारण नही चाहिए। एक सार्थक मृत्यु मेरा सपना है। मैं नहीं चाहता कि मेरी मौत के बाद लोग चंद आँसू बहाकर मुझे भूल जाएं। मैं चाहता हूँ कि मेरी मौत उनके दिलों में क़भी न मिटने वाला खालीपन छोड़ जाए।

हाँ माना कि ज़िंदगी बहुत हठी है, ये हमेशा कोशिश करती हैं मेरी मुस्कुराहटें छीनने की। मगर मेरी उम्मीदें और भी ज्यादा ज़िद्दी हैं। लोग उम्मीदों का दामन थामते है, मगर उम्मीदों ने मुझे अपनी बाहों में थाम रखा है। इतनी मजबूती से कि कोई भी तूफ़ान मुझे गिरा नही सकता। मैं दुनिया में बेशक

ख़ाली हाथ आया हूँ, मगर मैं ख़ाली हाथ इस दुनिया से जाऊँगा नही। मुझे प्रेम कमाना है और प्रेम लुटाना है।

उम्मीद पर सब कायम

कभी खुशी तो कभी गम,कभी होठों पर हंसी तो कभी आंखें नम, यही है जिंदगी की हकीकत। एक कभी ना बदलने वाली,कभी न खत्म होने वाली हकीकत। ठहाकों की महफिल वीरानगी में बदल जाती है, जिंदगी में मायूसी घर कर जाती है, तब जिंदगी बद् से बद्तर हो जाती है, इस मायूसी से बाहर निकलना जरूरी हो जाता है।

उम्मीद ही वो रास्ता है जो जिंदगी को जीने के काबिल बनाता है। जहां दुख ने डेरा जमाया है,वहां उसे बसना नहीं होता है। सुख-दुख, यह तो बंजारे हैं, कभी आते हैं तो फिर कहीं दूर चले जाते हैं। जब तक जिंदगी में इंसान के दिल में उम्मीद का चिराग जलता है, तब तक वह जिंदा रहता है।जब तक वह खुश रहता है, जिंदगी को जीता है। जिंदा रहने और जिंदगी को जीने में फर्क है। जिंदा रहना महज़ साँसों और जिस्म के ताल्लुक की बात है, मगर जिंदगी को जीना इंसान की जिंदादिली से, उसके जीने के ढंग से ताल्लुक रखती है। खुदा ने जिस खूबसूरत जिन्दगी का तोहफा में दिया है उसे संभालना, सलामत रखना हमारा फर्ज है। उम्मीद और जिंदादिली का दामन इस तरह थाम लो की उदासी अपना रुख बदल ले।

जिंदगी की हकीकत से टकराते टकराते, कभी-कभी ऐसा भी होता है कि इंसान बस जिंदा रह जाता है, पर जीना भूल जाता है। उम्मीद को कभी दिल से जुदा ना करो उम्मीदें पैदा करो, जीने का मकसद खोजो।

उम्मीद खुदा का वो फरिश्ता है जो उम्र भर इंसान का साथ निभाता है। उसे जिंदगी से बेज़ार होने से बचाता है। जब सारी दुनिया अपने पराए सब अजनबी बन जाते हैं,तब भी उम्मीद दामन छुड़ा कर दूर नहीं जाती। एक मद्म से रोशनी की तरह घुप अंधेरे में टिमटिमाती है। अंधेरों को चीर कर सारे माहौल को रोशन कर देने का जज्बा रखती है। जब इंसान दुख के समंदर में डूब जाता है, तब उम्मीद की मौज उसे खुशियों की जमीन पर छोड़ दिया

करती, उसके जज्बातों को ताउम्र महफूज रखती हैं-उम्मीद, उसे जिंदा रखती है-उम्मीदें।

जिन्दगी को मकसद देती है, खुशगवार बनाए रखती है। अपनी उदासी से निकलकर उम्मीद का दामन थाम लो मुस्कुराओ और खुश रहो, खुशियां दो, खुशी और गम के साथ-साथ उम्मीद भी हकीकत है।

आज के दौर में इस तेज रफ्तार जिंदगी में जीवन में मानसिक तनाव ने जगह लेनी शुरू कर दी है। क्यों?? हमारे बड़ों से हमें सीखना चाहिए किस तरह हर कठिनाइयों से संघर्ष करते हुए उन्होंने उम्मीद का साथ ना छोड़ते हुए, यह जीवन पार किया। हमारे प्रेरणा स्रोत है वे, हमें अपने अंदर परिस्थितियों से जूझने का साहस और ईश्वर के प्रति प्रबल विश्वास का भाव पैदा करना चाहिए।

कैद में पड़ी बातें

जी हां कुछ बातें हमेशा कैद में पड़ी रहती है। वे जन्म लेती है हृदय में भावों की गहराई से और वहीं अपना जीवन गुजार देती है। उन्हें मिली कैद का भी कारण होता है, उन्हें शांति बिगाड़ने की शंका में मिलती है कैद। क्योंकि हृदय भयभीत होता है, कि यदि इन्हें आज़ाद कर दिया तो सब बदल जाएगा। हो सकता है कि बदलाव सकारात्मक हो परन्तु नकारात्मक का संदेह सदैव अधिक ही रहता है। इसलिए हृदय बचता है जोखिम मोल लेने से और ये बातें कैद में पड़ी रहती है। पर ये बातें सदैव चाहती है स्वतंत्रता ,चाहती है होंठों में घूमते हुए बाहर जाना,हवा में बहना, जहां कोई इन्हें सुन सकें। और कभी कभी ये आज़ादी इसे नसीब भी हो जाती है। परंतु इसके भी केवल दो मार्ग हैं पहला हृदय को सकारात्मक बदलाव का आश्वासन या कम से कम जोखिम का वादा, हालांकि इसके लिए लंबी पेशी होती है हृदय व मस्तिष्क के बीच, पर यह तब भी बेहतर मार्ग होता है पूरी तरह वैधानिक और वैधानिक प्रक्रियाओं की ही तरह अत्यंत धीमा। और दुसरा मार्ग होता है जो अचानक खुलता है भावनाओं के अत्यधिक दबाव के बीच जब होंठों के सारे ताले टूट जाते हैं , मस्तिष्क का नियंत्रण छूट जाता है तब ये बातें हो जाती है आज़ाद, पूर्णतः अनियंत्रित और भयावह रूप से।

पर मैं इन बातों को ना तो पेशी में जीता पाया ना कभी मस्तिष्क का कड़ा पहरा कमजोर हुआ। इसलिए मैंने एक सुरंग बनाई जो हाथों की मदद से इन्हें कागज पर उतार देती है। जहां ये प्रतीक्षा में रहते हैं कि कोई इन्हें पढ़कर आजाद कर दे।

किस्मत की सौदेबाजी

किसी भी प्रकार की जंग हो, जब हम कहतें हैं कि किस्मत से ज्यादा न किसी को मिला है न मिलेगा ,तब आधी से ज्यादा जंग हम उसी पल हार जाते हैं। हाँ किस्मत सौदेबाज़ हो सकती है तो सौदा करिए उससे, और सौदेबाजी में आप जीतें इसके लिए आपको करना होगा अथक परिश्रम और दृढ़ निश्चय।

हाँ किस्मत भी चाहती है कि आप बहुत मेहनत करें और यह कुछ गलत भी नहीं, जब हम विद्यालय में पढ़ने जाते थे तब हमारी टीचर्स भी तो यही कहती थीं कि मेहनत करने पर ही नंबर मिलेंगे, तो बस जब शुरू से यही सीखा है हमने तो मेहनत से क्या घबराना??

कभी -कभी यह भी होता है कि जिस चीज के लिए हम प्रयत्न करते ,हैं उसमें जीत हासिल नहीं होती पर जिसको प्रयत्न और परिश्रम की आदत पड़ गई वह जीवन में कुछ बेहतर हासिल कर ही लेगा। तो किस्मत हमें कामयाब बनाए न बनाए, लेकिन बहुत कुछ सिखा देती है।

बहुत बार लोग अपनी किस्मत को बेहतर बनाने के लिए अंधविश्वास की चपेट में आ जाते हैं और अपनी संपूर्ण शक्ति ,उसी में व्यर्थ कर देते हैं। यह गलत है, हमें इससे बचना चाहिए। किस्मत को कोसने की बजाए, उससे सीख लीजिए। अपनी संपूर्ण शक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लगा दें, और डटे रहें ।

बारिश की पहली बूंद

कभी महसूस किया है बारिश की पहली बूंद को जब वो धीरे से आपकी आंखों को छूती है मानों लगता है कि कोई अर्से बाद दिल पर दस्तक़ देने को तैयार खड़ा है वो भी बिना कोई पहचान बताये..

बारिश की हर बूंद मानो कह रही हो कि देखो अब ये उदासी छोड़ दो की तुम्हारे चेहरे पर बस मुस्कान अच्छी लगती है कि अब मैं आ गयी हूं तुम्हें इस दुनियां से दूर कहीं ले जाने के लिए ऐसी जगह जहां तुम मुझे महसूस कर पाओगे, मुझमें अपने सपनों के रंगों को घोल पाओगे, और तुम्हें तुम्हारें रंगीन सपनों को सच करने की हिम्मत मिलेगी।

हर बारिश की बूंद अपने आप मे बहुत कुछ समेटे हुए है मानो ये आंखमिचौली खेलती हो खुद से ही कि कोई गहरे राज़ ग़लती से भी ज़ाहिर ना हो पाए...

ये बारिश की बूंदें ही तो है जो सिखा जाती है अक्सर आकर की ग़म को कैसे छिपाना है,, कैसे अपना ग़म भुलकर दूसरों के चहेरे की मुस्कान बन जाना है..कि कैसे बिखरकर भी सबको समेटना है,कि कैसे मिट्टी पे पड़कर उसको ज़िंदा कर देना है, हमें अक्सर ये छोटी-छोटी बारिश की बूंदे ही तो सिखाती हैं।

हां फ़र्क सिर्फ इतना सा है, कोई इनके जज़्बातों को समझ लेता है और कोई सिर्फ पानी का नाम देकर किनारा कर जाता है, पर यकीं कीजिये मेरा किसी रोज़ जब आप इनके जज़्बातों को समझेंगे तो महसूस कर पायेंगे वो सब जो अब तक अनदेखा,अनसुना और अनजाना सा रह गया है..!!

ज्ञान की बेड़ियां

समय की रफ़्तार पहेली बन गई है इन दिनों। ऐसा लगता है, बहुत धीमे चल रहा है। फिर किसी दिन तारीख़ सुनकर चौंक जाता हूं। इतना समय कब बीत गया! ये सारा समय एक साथ तो नहीं बीता होगा। उसे तो उन्हीं बंधे-बंधाए बराबर टुकड़ों में बहना चाहिए था। समय ने अपनी रीत निभाई ही होगी। मैं ही मौजूद नहीं था, उसे गुज़रता देखने के लिए।

कुछ कहते न बनेगा, अगर कोई पूछ ले कि कहां व्यस्त रहे। कहीं भी तो नहीं! बेसुध होना अलग बात है, व्यस्त होना और। जैसे कोई आंख खोले सो रहा हो। कौन सी आवाज़ कानों में पड़ी, पता नहीं। क्या देखा आंखों ने, याद नहीं। विचारमग्न भी तो नहीं रहा। कुछ चिंतन करके नए विश्वास ही गढ़ लिए होते, वह भी तो नहीं हो सका।

एक परिधि बन गई है मन के गिर्द, जिसके भीतर कुछ नहीं पहुंचता। न कलरव, न रूदन; न उम्मीद, न निराशा। याद भी नहीं, पछतावा भी नहीं। शायद यह भी पूरी तरह सच नहीं है। भावशून्यता का आभास भी तो एक भाव ही है। हर सांझ देहरी पर एक चिट्ठी मिलती है, जिसमें लिखा होता है कि आज कोई चिट्ठी नहीं आई।

ज्ञान की उपयोगिता को लेकर भी मन में कई संदेह पनप रहे हैं। इधर पाता हूं कि अध्ययन जितना बढ़ रहा है, उतनी ही वैचारिक दरिद्रता का आभास हो रहा है। किसी विषय पर टिप्पणी करना, पक्ष-विपक्ष चुनना कठिन हो रहा है। सत्य-असत्य का भेद धुंधलाने लगा है।

देखता हूं कि पीछे बहुत अवसरों पर मेरी जो प्रतिक्रिया रही थी, वह विषय के किसी एक पक्ष के अध्ययन-चिंतन से ही आई थी। फिर पूछता हूं कि अपना पक्ष रखने की जल्दी क्यों थी? जवाब मिलता है, बौद्धिक सुख की क्षुधापूर्ति के लिए। यह बताने के लिए, कि मैं भी जानता हूं।

ऐसा लग रहा है कि अब तक जितनी भी बातें कहता आया हूं, वह मेरी अपनी नहीं थीं। जिन विचारों को मैं अपना कहता रहा, वे मेरे भीतर से नहीं

उपजे थे। मेरी कही हुई हर परिभाषा दूसरों के शब्दों की खोल ओढ़े हुए थीं। जिन बातों को अनेक बार दुहराकर भ्रम पाला कि इनमें मेरा दृष्टिकोण है, उन पर किसी अन्य के सिद्धांत की छाप थी।

कुछ दिन हुए, मैंने लिखा था कि ज्ञान अहंकार को जन्म देता है। कई लोगों को यह बात अनुचित लगी। मेरा तात्पर्य उस ज्ञान से था, जो हमने बाहर से उधार लेकर अपने अंदर भर लिया होता है। और अहंकार के भी अर्थ पर मैंने विस्तार से नहीं लिखा था, सो लोगों को बात तर्कयुक्त नहीं लगी।

किताबों से इकट्ठा कर लिया गया ज्ञान बड़बोला होता है। जिन तथ्यों को हमने अपनी याददाश्त में भर लिया, उनसे जुड़ी कोई बहस हो रही हो तो तुरंत ही बीच में कूदने को तैयार। यह आतुरता ही अहंकार है। तर्कपूर्ण और बौद्धिक व्यक्ति के रूप में स्वीकार किए जाने की कामना को मैं अहंकार ही कहूंगा। कितना ही प्रयास करें, एक सूक्ष्म रूप में वह बना ही रहेगा। यह मेरे अंदर भी है, आपके अंदर भी।

'अहम्' का भाव छोड़ पाना आसान भी नहीं होता। हमारा पूरा जीवन एक ही स्तंभ पर खड़ा है- 'मैं'। मेरा जीवन, मेरी बुद्धि, मेरा प्रेम, मेरा दुख, मेरा विचार। अपनी महत्ता सिद्ध हो सके, इसी के लिए सारा प्रबंध है। पढ़ भी रहे हैं तो इसलिए नहीं ताकि सत्य के निकट पहुंचें, बल्कि इसलिए ताकि अच्छा लिख सकें। अच्छे श्रोता बनने का प्रयास भी इसलिए ताकि कुशल वक्ता बन सकें।

हम इतिहास के पन्ने पलटकर आदमी की महत्वाकांक्षाओं के परिणाम पर चिंतन नहीं करते, बल्कि तारीखें और वंशावलियां याद करने में लग जाते हैं। प्रयोजन यही है कि किसी प्रतियोगिता में बोलना पड़े तो ज्ञान का प्रदर्शन कर सकें। शास्त्र पढ़कर अपने चित्त की दशा का ठीक-ठीक आकलन करने की बजाए शब्दों को रट लेने पर ध्यान लगाते हैं। किसी को उपदेश दें तो लगे कि कोई बुद्ध पुरूष बोल रहा है।

इसी अहंकार की तुष्टि के लिए हम रास्ते में मिलने वाला हर तरह का ज्ञान उठाकर अपने बस्ते में भरते जा रहे हैं। उसे देखने का या उस पर विचार करने का समय नहीं है। यह जानना आवश्यक नहीं लगता कि उस बात को

हमारी बुद्धि मानती है या नहीं। तथ्यों का संग्रह केवल इसलिए करते जा रहे हैं कि इनसे हमारे पक्ष को दृढ़ता मिलेगी।
ऐसी ही दुविधाओं में घिरा पाता हूं ख़ुद को। कोई भी एक वाक्य कहने के पहले देर तक यही विचार होता रहता है कि इस बात पर मुझे पूरा भरोसा है या नहीं। इसलिए जितना सोचता हूं, उससे कम ही कहता हूं। कोई बात अनुचित लगती है तो भी प्रतिक्रिया नहीं करता। डर रहता है कि कोई ऐसी बात न कह दूं, जिस पर बाद में पछतावा हो। बिल्कुल संभव है कि आज जिस बात पर भरोसा है, कल न रहे। अभी सबकुछ अनिश्चित और अस्थायी है। फिर नाहक क्यों किसी से झगड़ा करना!
कुल बातों का मर्म यही कि जो ज्ञान हमें मुखर होने को उत्तेजित करता हो, बेहतर और कमतर के गणित में उलझाता हो, दूसरों को पराजित करने का भाव पैदा करता हो, उस पर पुनर्विचार करना चाहिए और हो सके तो उसका त्याग कर देना चाहिए। ज्ञान वही उपयोगी है, जो निज के लिए दर्पण बन जाए। विचार वही सार्थक है, जो स्वबोध की हवा के लिए बुद्धि का किवाड़ खोल दे।
अपनी कमियां और खोखलापन देख लेने के बाद तर्क-वितर्क में हम दूसरों के प्रति भी सदाशयता रखेंगे। असहमति द्वेष का कारण नहीं बनेगी। शब्दों और व्यवहार से हिंसक होने के अपराध का बोझ मन पर नहीं आएगा। एक हल्का मन ही सुख की सीढ़ी का पहला पायदान बन सकता है।

प्रेम प्रकृति का अमूल्य उपहार

प्रेम अंतर्मन की एक भावना है। प्रेम एक अभिव्यक्ति है, जो एक जीवात्मा को दूसरे जीवात्मा से जोड़ती है। आसान शब्दों में कहें तो प्रेम ही वह धागा है जो इस संपूर्ण जगत को आपस में जोड़ कर रखता है।प्यार ईश्वर का एक वरदान है जो उन्होंने अपने पुत्र स्वरूप सभी जीवो को प्रेम स्वरूप भेंट किया है। या यूं कहे कि प्रेम ही ईश्वर का स्वरूप है, अर्थात प्रेम के रूप में ईश्वर ही सभी प्राणियों के हृदय में निवास करते हैं, ताकि सृष्टि का सृजन और पोषण अनवरत चलता रहे।

प्रेम का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण ईश्वर का जगत के प्रति प्रेम है। ईश्वर ने हम सभी जीवो को लाखों प्रकार के पेड़-पौधे फल-फूल और खाद्य सामग्री दी है। हमारे जरूरत की प्रत्येक वस्तु दी है ताकि हम सुख पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर सके। यह ईश्वर का प्रेम ही है, ईश्वर हमारी छोटी बड़ी गलतीयों को माफ कर देते हैं और हमें सही मार्ग दिखाते हैं। हमें हर मुश्किल से निकालते हैं। यह ईश्वर का निस्वार्थ प्रेम ही है जिसे हम करुणा कहते है। इसी प्रेम के प्रभाव से सृष्टि के दो विपरीत लिंग वाले प्राणियों का शारीरिक संबंध स्थापित होता है। जिसके फलस्वरूप एक नए जीव का जन्म होता है। प्रेम के इस प्राकृतिक प्रक्रिया के द्वारा ईश्वर सृष्टि का सृजन करते हैं। एक मां अपने बच्चे को निस्वार्थ भाव से स्तनपान कराती है जिसे हम ममता कहते हैं। एक शिष्य अपने गुरु की निस्वार्थ भाव से सेवा करता है इस प्रेम को हम श्रद्धा कहते हैं।

प्रेम के प्रभाव से ही सृष्टि के सभी मनुष्य एक दूसरे की सहायता करते हैं, एक दूसरे के जीवन में सहयोग करते हैं। इसके अतिरिक्त प्रेम के और भी कई सारे रूप होते हैं, जैसे पति-पत्नी का प्रेम भाई-बहन का प्रेम, मित्र-मित्र का प्रेम या प्रेमी-प्रेमिका का प्रेम, परंतु इन सभी प्रेमों में जगह और वक्त के अनुसार से प्रेम का स्तर बदलता रहता है। हालांकि प्रेम तो वही रहता है बस उसके मायने बदल जाते हैं। परंतु निस्वार्थ प्रेम जहां रहता है वहां आनंद ही आनंद देता है। प्रेम के बिना जीवन का अस्तित्व ही निरस और अधूरा है।

जरा एक बार कल्पना कीजिए, क्या प्रेम के बिना जीवन संभव है, कदापि नहीं। इसलिए कहा जाता है कि प्रेम ही जीवन है। श्रद्धा, भक्ति, ममता, करुणा, और स्नेह ये सब प्रेम के वास्तविक स्वरूप है। और एक बात हमेशा याद रखें : वास्तविक प्रेम हमेशा निस्वार्थ होता है, स्वार्थ तो लोग उसमें जोड़ देते हैं। जो इस निस्वार्थ प्रेम को विकृत बना देता है।

अब हम विकृत प्रेम के बारे में समझते हैं। जिसका निर्माण मनुष्य के अज्ञान और स्वार्थ के द्वारा होता है। इस प्रेम का नाम है वासना। वासना प्रेम का विकृत स्वरूप है, इसलिए इस प्रेम से कामना, क्रोध दुख और निराशा उत्पन्न होते हैं। फिर इन्हीं भावनाओं के दुष्प्रभाव से अपराध और अधर्म का जन्म होता है जो मनुष्य को पतन की ओर ले जाता है। आज हमारे दुनिया में जो मानवीय भावनाओं का असंतुलन पैदा हो रहा है। उसका कारण है, निस्वार्थ प्रेम की कमी। समाजिक रिश्तो की तो बात ही छोड़िए, आजकल पिता-पुत्र में प्रेम की कमी है, भाई-बहन में प्रेम की कमी है, पति-पत्नी में प्रेम की कमी है, जो इस निस्वार्थ प्रेम की कमी का संकेत है। जो बचा-खुचा प्रेम है वह भी मनुष्य के स्वार्थ का शिकार हो गया है।

इसलिए आजकल हर जगह प्रेम में भ्रांतियां सुनने को मिलती है। कुछ लोगों को तो प्रेम के नाम से ही नफरत है, क्योंकि प्रेम का सही अर्थ तो किसी ने समझा ही नहीं है। प्रेम का सही अर्थ है निस्वार्थ भाव से किसी के प्रति अपना सर्वस्य समर्पित कर देना। अपने प्रेमी के हित और खुशी के लिए अपनी खुशियों का खुशी-खुशी त्याग कर देना। प्रेम जीवन देता है जीवन लेता नहीं है। प्रेम तो परमात्मा के समतुल्य पवित्र और महान है परंतु मनुष्य ने इस पवित्र और महान प्रेम को उसके स्तर से गिरा कर कामना और वासना तक ही सीमित कर दिया है। इसलिए आज यह स्वार्थी प्रेम हत्या और आत्महत्या का सबसे बड़ा कारण बन गया है। जिस तरह इस स्वार्थी प्रेम का दुष्प्रभाव हमारे समाज में दिन- प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है, वह निश्चित ही सृष्टि के विनाश का सूचक है। इसलिए अगर प्रेम करें तो निस्वार्थ प्रेम करें अन्यथा इस पवित्र प्रेम को दूषित ना करें।

भौतिक प्रेम और अध्यात्मिक प्रेम

कृष्ण अपने शिष्य अर्जुन से कहते हैं, कि "केवल वासना ही है जो सब कुछ खा जाने वाली, संसार की पापमयी शत्रु है." वैदिक भाषा में भौतिकवादी "प्रेम" के लिए कोई शब्द नहीं है, जैसा कि हम वर्तमान समय में कहते हैं. काम शब्द वासना या भौतिक इच्छा का वर्णन करता है, न कि प्रेम का, लेकिन वास्तविक प्रेम के लिए वेदों में जो शब्द हमें मिलता है, वह प्रेम है, जिसका अर्थ है ईश्वर का प्रेम. भगवान के इतर प्रेम की कोई संभावना नहीं है. बल्कि, केवल वासना है. तत्व के इस वातावरण में, मानव के कर्मों की संपूर्ण श्रंखला-और केवल मानव की ही सभी गतिविधियाँ नहीं बल्कि सभी प्राणियों के कर्म-काम वासना, पुरुष और स्त्री के आकर्षण, पर आधारित हैं, प्रोत्साहित हैं और प्रदूषित हैं. उसी यौन जीवन के लिए, पूरा ब्रह्मांड चारों ओर घूम रहा है- और दुख उठा रहा है! वह कठोर सत्य है. यहाँ तथाकथित प्रेम का अर्थ है कि "तुम मेरी इंद्रियों को तृप्त करते हो, मैं तुम्हारी इंद्रियों को तृप्त करूंगा," और जैसे ही वह संतुष्टि बंद हो जाती है, तुरंत तलाक, अलगाव, झगड़ा और घृणा होने लगती है. प्रेम की इस झूठी अवधारणा के तहत बहुत सी बातें चल रही हैं. वास्तविक प्रेम का अर्थ है भगवान, कृष्ण का प्रेम।

हर व्यक्ति किसी ऐसे पात्र में अपनी प्रेममयी प्रवृत्ति को स्थापित करना चाहता है जिसे वह अपने योग्य समझता है. लेकिन प्रश्न केवल अज्ञानता का है, क्योंकि लोगों को इस बारे में कम ज्ञान है कि उस परम प्रेम पात्र को कहाँ खोजा जाए जो स्वीकार करने योग्य हो और उनके प्रेम का उत्तर देता हो. लोगों को बस पता नहीं होता. कोई भी उचित जानकारी नहीं है. जैसे ही आपको किसी भौतिक वस्तु से लगाव हो जाता है, वह आपको आघात पहुँचाती है, आपका क्षरण करती है, और निराश करती है. आपको अंसुष्ट और निराश करना ही उसकी नियति है।

भौतिक चेतना में हम उसे प्रेम करने का प्रयास करते हैं जो प्रेम करने योग्य है ही नहीं. हम कुत्तों और बिल्लियों को प्रेम देते हैं, जिससे जोखिम

रहता है कि मृत्यु के समय हम शायद उनके बारे में सोचें और परिणामस्वरूप बिल्लियों या कुत्तों के परिवार में जन्म लें. इस प्रकार जिस प्रेम में कृष्ण नहीं है नीचे की ओर ले जाता है. ऐसा नहीं है कि कृष्ण या भगवान कोई अस्पष्ट वस्तु या कुछ ऐसा है जिसे केवल कुछ चुने हुए लोग ही प्राप्त कर सकते हैं. चैतन्य महाप्रभु हमें सूचित करते हैं कि प्रत्येक देश में और प्रत्येक शास्त्र में भगवान के प्रेम के कुछ संकेत मिलते हैं. दर्भाग्य से कोई भी यह नहीं जानता कि भगवान का प्रेम वास्तव में क्या है. हालाँकि, वैदिक शास्त्र इससे अलग हैं क्योंकि वे व्यक्ति को भगवान से प्रेम करने का उचित ढंग बताते हैं. अन्य शास्त्र इस बात की जानकारी नहीं देते हैं कि कोई व्यक्ति भगवान से किस प्रकार प्रेम कर सकता है, और न ही वे वास्तव में परिभाषित करते हैं या वर्णन करते हैं कि वास्तव में भगवान क्या है या कौन हैं. हालाँकि वे आधिकारिक रूप से भगवान के प्रेम को बढ़ावा देते हैं, लेकिन उन्हें यह ज्ञान नहीं है कि इसे क्रियान्वित कैसे किया जाए।

वृंदावन में कृष्ण और गोपियों के बीच के प्रेम प्रसंग भी पारलौकिक हैं. वे इस भौतिक संसार के साधारण प्रसंगों के जैसे ही दिखाई देते हैं, लेकिन उनमें बहुत बड़ा अंतर है. भौतिक संसार में वासना का अस्थायी जागरण हो सकता है, लेकिन तथाकथित संतुष्टि के बाद वह गायब हो जाती है. आध्यात्मिक संसार में गोपियों और कृष्ण के बीच प्रेम लगातार बढ़ रहा है. यही पारलौकिक प्रेम और भौतिक वासना के बीच का अंतर है. इस शरीर से उत्पन्न वासना, या तथाकथित प्रेम, शरीर के समान ही अस्थायी है, लेकिन आध्यात्मिक संसार में अनन्त आत्मा से उत्पन्न होने वाला प्रेम आध्यात्मिक स्तर पर होता है, और यह प्रेम शाश्वत भी है. इसलिए कृष्ण को सदाबहार कामदेव भी कहा गया है।

रिश्तों में उलझन या कशमकश

रिश्तों में किसी भी उलझन या कशमकश का होना, उस रिश्ते की खूबसूरती के लिए अभिशाप है। किसी भी रिश्ते में कोई भी उम्मीद या उलझन रखना, उस रिश्ते की खूबसूरती को ख़त्म करने जैसा हैं। हम अपने जीवन में कितने ही ऐसे लोगों से मिलते हैं जिनकी सूरत हमें भा जाती हैं या फिर किसी की बातें दिल को छू जाती हैं, हर कोई किसी ना किसी रूप में हमें अच्छा लगने लगता है.. अब अगर इस खूबसूरत से अहसास को उम्मीदों और इच्छाओं की अग्नि में जला दिया जाये, तो आगे कभी भी कोई भी रिश्ता उतना खूबसूरत नहीं रह जायेगा जैसा वो पहले पहल के अहसास में था। रिश्तों में कोई उलझन नहीं होनी चाहिए.. अगर ऐसा हो तो या तो खुद को इतना परिपक्व करो की वो रिश्ता जैसा हो वैसा ही स्वीकार किया जाये, या फिर अपना व्यक्तित्व ऐसा रखो की किसी के भी लिए मन में कोई भाव ही ना आने दो। इतना उलझोगे खुद में और किसी के अस्तित्व में तो ना तो खुद के साथ रह पाओगे ना ही किसी भी रिश्ते की ख़ूबसूरती को समझ पाओगे..!!

प्रफुल्ल सिंह

खुशियों को गले लगाएँ

इंसान को हर क्षण जिसकी तलाश होती है, वह उसे पाना चाहता है, पर उसे मिलती नहीं, उसे पाने के लिए इंसान एड़ी-चोटी का जोर लगा देता है, पर उसके हिस्से में वह चीज कम ही आ पाती है. जानते हैं क्या है वह चीज, वह अदृश्य चीज हे खुशी. होती तो यह हमारे भीतर ही है, पर हम उसे तलाशते रहते हैं वहाँ, जहाँ वह होती ही नहीं. बल्कि उसे तो हमारे भीतर ही पाया जा सकता है.

खुशी एक अहसास है, एक ऐसा अहसास जिसे केवल महसूस किया जा सकता है, इसे दिखाया नहीं जा सकता क्योंकि जो दिखाया जाता है, वह केवल उसका बनावटीपन ही होता है. प्रदर्शन में खुशी अपनी मौलिकता खो देती है. लेकिन फिर भी यह जीवन की रीत है कि इंसान की खुशी भी उसके स्वभाव में झलकती है और उसका गम भी छुपाए नहीं छुपता।

आखिर यह खुशी है क्या? इसे बाजार में तो बिकते नहीं देखा? न किराने की दुकान, न सुपर मार्केट और न ही इंटरनेट कैफे पर यह मुँहमाँगी कीमत पर भी देखने को नसीब हुई. फिर आखिर इसे हम लाएँ कहाँ से? बड़ी सीधी और सच्ची बात है, यह जो दो अक्षर की छोटी-सी खुशी है, वह न तो सुपर मार्केट की शोभा है और न ही इंटरनेट पर क्रेडिट कार्ड पर बिकने वाला खुबसूरत उपहार. यह तो मनुष्य के मन के भीतर की आवाज है, एक गुनगुनाहट है, सुर है, ताल है और झंकार है. खुशी बाहर ढूंढ़ने से नहीं मिलती. यह कस्तूरी मृग की तरह मन के भीतर छुपी होती है. इसकी सुगंध जब बिखरती है, तो पूरा जीवन महक उठता है. खुशी एक कुदरती शक्ति है, जो जीवन को सबल बनाती है।

कई बार ऐसा होता है कि मनुष्य जीवन के कुएँ को आंसुओं से लबालब देखकर दु:खी हो जाता है, हताश हो कर वह कुछ भी नहीं सोच पाता किंतु इसी कुएँ के जगत के पास उग आई छोटी सी दूब को देखोगे, तब उसे एक बार अपने हाथों से छूकर देखने की कोशिश करना, कितना मुलायम सा

अहसास होगा. यही है खुशी. अब इसी दूब को प्यार से सहलाओ, तब आपको लगेगा कि अरे! इसे ही तो मैं ढूँढ़ रहा था. काश पहले ही कुएँ के बजाए इसे देख लेता, तो हताशा ही फटक नहीं पाती.

खुशी और गम एक सिक्के के दो पहलू हैं, इन्हें एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता. जीवन के तराजू में हम खुशी और गम के बीच लटक रहे हैं. कभी खुशी का पलड़ा भारी होता है, तो कभी गम का, लेकिन दोनों ही हालात में हमारा लटकना तय है. हम जिस छोटे से मिट्टी के गमले में फूल उगाकर उसकी महक से खुश होते हैं वही गमला कभी कुम्हार की भट्टी में तपकर गम के अहसास को छूकर पकता है और हमें इस सुगंध का हकदार बनाता है. बंसी की जो धुन मन को मोह लेती है, हमें आत्मिक सुख या खुशी देती है, उसी बंसी को अपनी छाती में तेज धारदार चाकू का प्रहार झेलना पड़ता है. पीड़ा की यही छटपटाहट ही बाद में कोमल संगीत पैदा करती है. जब यही बंसी किसी दु:खी इंसान के होठों से लगती है, तो दर्द की रागिनी छेड़ती है।

आशय यह है कि हम केवल परिणाम को ही देखते हैं. सृजन के पीछे की पीड़ा हम देखना ही नहीं चाहते या देखकर भी अनदेखा कर जाते हैं. ये सच्चाई हमारी ईमानदारी पर चोट करती है, नतीजा यह कि हम न तो पूरी तरह से खुश हो पाते हैं और न ही पूरी तरह से दु:खी.

कहते है कि स्त्री धरती की तरह होती है, किंतु केवल स्त्री को ही नहीं इस पूरे मानव समुदाय को धरती की तरह होना चाहिए. धरती जो अपनी छाती पर हल की नोक से एक टीस के साथ पीड़ा झेलती है, इसके परिणाम में वह हल चलाने वाले को देती है एक लहलहाता विश्वास. उसी तरह इंसान को भी अपना दु:ख-दर्द छुपाकर हमेशा खुशियों को बिखेरने वाला होना चाहिए. खुशी को जितना बाँटोगे, वह दोगुनी हो कर हमारे पास आएगी.

खुशी वहीं हैं, जहाँ हमारी इच्छाएँ हैं, हमारे सपने हैं यानि कि हमारे मन में, हमारी ऑंखों में, विचारों में, व्यवहार में, पल-पल बीतते पलों में और लम्हों में. बस जरुरत है चिंताओं की लकीरों को कुरेद कर इस खुशी को नया आकार देने की. हमारे आसपास का वातावरण जो हमें उदासी या गम देता है,

कई बार उसी वातावरण में पूरी तरह से डूब जाने पर, उसके प्रति स्नेह जगाने पर हमें उसी गम में बेपनाह खुशी महसूस होती है।

अंजान शख़्स

बचपन में सुना करता था कि कभी-क़भी जब कुछ भी आपकी जिंदगी में अच्छा नहीं हो रहा हो, तब उस एक पल आपकी ज़िंदगी मे किसी ऐसे शख़्स का आना होता है जिसका आना कभी आपने सोचा भी नहीं होता...जो बिना उम्मीद आपकी उलझनों को सुलझाता है,जो आंखों से आंसू चुरा लेता हो,जो आपकी एक मुस्कान के लिए खुद से भी लड़ सकता है..जिसे आपसे कुछ नही चाहिए लेकिन अपना सब कुछ आपके नाम कर जाए.. जिसे खुद की परेशानियों का पता हो ना हो पर आपकी सारी परेशनियां अपने नाम कर ले...एक ऐसा शख़्स जो आपकी कल्पनाओं को कहीं ना कहीं सच कर दे।जब आप ऐसे किसी शख़्स से मिलते हो हकीक़त में तो आप समझ नहीं पाते कि ये काल्पनिक है या वास्तिवक... अक्सर जब आप अकेले बैठकर उस एक शख़्स के बारे में सोचते हो तो आपको महसूस होता है कि वो जिसने आपकी सारी परेशानी को पल भर में ख़त्म कर दिया वो शख़्स आपमें ही कही है..जिसे आप खुद में हर पल महसूस कर सकते हो जो गलत,सही की सभी खोखली सम्भावनाओं से कहीं ऊपर है किसी देव दूत की तरह कि जिसे पाया नहीं जा सकता ना ही जिसके बिना रहा जा सकता है..बस उसे हर पल खुद में कहीं महसूस किया जा सकता औऱ दुआ में सिर्फ उसका कल्पिनक साथ मांगा जा सकता है क्यों वास्तविकता में ये आपकी कल्पना भी हो सकती है जिससे आप कभी मिले ही नहीं....तो जब भी मिले आप ऐसे किसी शख़्स से तो उसे पाने की बजाय ख़ुद में सिर्फ महसूस करने की कोशिश करें क्यों कि कहीं ना कहीं कल्पनाएं आत्मा से जन्म लेती है..!!

प्रफुल्ल सिंह

अवसर को पहचानें और इतिहास रचें

समय को बहुत बड़ा डॉक्टर कहा गया है. यह हर तरह के घाव को भर देता है. समय में एक बात तो है कि वह हर वक्त चलता ही रहता है. यह उसका स्वभाव है, लक्ष्मी और पानी का स्वभाव भी चंचल होता है, गतिमान रहना इनका स्वभाव है. पानी ठहर जाए, तो वह दुर्गंध देने लगता है, बहना इसकी पकृति है, इसे बहते रहने देना चाहिए. समय का एक रूप अवसर है, जो हर इंसान के सामने अपनी सेवा देने के लिए प्रस्तुत होता है, पर इसका रूप ऐसा होता है कि इंसान उसे अनदेखा कर देता है, उसे नोटिस में नहीं लेता, जो इसे पहचानने की दृष्टि रखते हैं, वह उस अवसर को हाथ से नहीं जाने देते. उसे पहचानने के लिए अंतर्दृष्टि याने भीतर की ऑखें. जिसने भी अपनी इन ऑखों से समय या अवसर को पहचाना, सफलता ने आगे बढ़कर उसके कदम चूमे।

किसी चित्रकार ने समय का चित्र बनाया है, जिसमें एक साधारण व्यक्ति को बताया गया है. उसके पंख हैं और वह उड़ रहा है, बालों से उसका चेहरा ढँका हुआ है, याने उसे कोई देख नहीं सकता, पंख से उसके सदैव गतिमान होने को दर्शाया गया है. चेहरा ढाँककर यही बताने की कोशिश की गई है कि समय को देखा तो नहीं जा सकता, पर पहचाना अवश्य जा सकता है. अवसर को गँवाने का दु:ख सबको होता है, सभी कभी न कभी यह अवश्य स्वीकार करते हैं कि हम चूक गए. हमसे गलती हो गई, हम अवसर को पहचान नहीं पाए, हमारे हाथ से एक अच्छा अवसर निकल गया. हमारी थोड़ी-सी लापरवाही ने हमें कहीं का नहीं रखा. उस वक्त ऐसा कर लिया होता, तो आज यह वक्त नहीं देखना पड़ता. ये सारे जुमले उन लोगों के हैं, जिन्होंने अवसर को पहचानने में भूल की या देर की. इतना तो तय है कि अवसर रूप बदलकर ही सही, हम सबके सामने आया, याने समय ने हमें आगे बढ़ाने में कोई कसर नहीं छोड़ी, अब यह बात अलग है कि हम उसे पहचान नहीं पाए।

ईश्वर ने जब हम सभी को भेजा है, तो कुछ अच्छा काम करने के लिए ही भेजा है. नाकाम वही होते हैं, जिनके पास बहाने होते हैं, जिस क्षण बहाने नहीं होंगे, सफलता सामने होगी. बहाने का सीधा-सादा गणित है कि काम न करने की इच्छा. ये बहाने तो वे बादल होते हैं, जो व्यक्ति और सफलता के बीच अवरोध का काम करते हैं. बहाने हटे कि सफलता सामने. मेहनती इंसान से सफलता अधिक दूर नहीं होती. कभी-कभी बहाने रूपी बादल सफलता को इंसान की ऑंखों से ओझल कर देते हैं।

कोई भी अनुभव कभी बेकार नहीं जाता. सफर के दौरान दो व्यक्तियों के बातें भी हमारे ज्ञान के खजाने में एक मोती की वृद्धि कर सकती है. उस समय हमें स्वयं को एक अच्छा श्रोता साबित करना होगा, संभव वही समय का रूप हो. उनकी बातें और हमारा ज्ञान दोनों मिलकर एक अनुभव को जन्म दें, बस हमें मिल सकता है, एक उन्मुक्त आकाश. जहाँ हम उड़ सकते हैं, अपने तरीके से. अंत में एक छोटी सी बात, निर्माण सदैव विध्वंस के रास्ते आता है।

पहली बार में यह वाक्य आपको सोचने को विवश कर देगा. पर आप ही सोचें कि किसी खंडहर के स्थान पर कोई मकान बनाना है, तो उस खंडहर को तोड़े बिना क्या नया मकान बन सकता है? जब तक हम पुराने विचारों को त्यागेंगे नहीं, तब तक नए विचारों के लिए जगह कहाँ से बनेगी? जगह एक समय की तरह तय है. हमें अच्छे विचारों को समय की तरह पकड़ना है, तो क्यों न दिमाग का कचरा फेंक दिया जाए. कचरे का फेंका जाना ही विध्वंस है और नए विचारों का आना कहलाता है निर्माण. विध्वंस के बाद ही जापान निर्माण के रास्ते पर कितना आगे बढ़ गया! पुराने जमाने की हवेली, इमारत विध्वंस से ही गुजरकर आज आलीशान इमारतों की जगह ले रही है. काम-धंधे में पुत्र इसीलिए पिता से आगे बढ़ जाता है, क्योंकि पुत्र जमाने के अनुसार अपने काम में बदलाव लाता जाता है. उसका पुत्र और भी आगे बढ़ जाता है. क्योंकि वह आगे बढ़ने के गुण अपने पिता और दादा से पाता है. यदि वह समय के अनुसार नहीं चल पाता, तो पिछड़ भी जाता है. ऐसा अक्सर तीसरी पीढ़ी के साथ होता है. या तो धंधा बिलकुल चौपट हो जाता है, या फिर धंधा खूब चल निकलता है. तीसरी पीढ़ी या तो इतिहास रचती है, या फिर पूरा धंधा

चौपट करके रख देती है. अतिहास सदैव नए विचारों, नए निर्माण, नए सपने, नया विश्वास और नई उमंगों के साथ रचा जाता है.

तो आइए, एक नया इतिहास रचने की दिशा में एक कदम ईमानदारी के साथ उठाएँ, मेरा विश्वास है कि कुछ समय बाद आप स्वयं को दस कदम आगे पाएँगे।

मोबाइल, मैसेज और डिप्रेशन की शिकार युवापीढ़ी

बीप.. बीप...बीप...मोबाइल पर मेसेज का सिगनल आया और मोबाइलधारी जो कुछ समय पहले बाहरी दुनिया से जुड़ा हुआ था, वह एकदम से उससे कट गया और पहुँच गया मोबाइल से जुड़ी एक छोटी सी दुनिया में। मोबाइल की दुनिया छोटी इसलिए कि जैसे-जैसे विज्ञान उन्नति करता जा रहा है, लोगों से हमारा जुडाव कम से कमतर हाो चला जा रहा है। एक समय था, जब हमारे पास अपने स्नेहीजनों से मिलने के लिए सशरीर उनके पास पहुँचने के सिवाय और कोई उपाय न था। लोग तीज-त्योहार पर ही नहीं यूँ ही इच्छा होने पर एक-दूसरे के हालचाल जानने के लिए समय निकाल कर घर मिलने के लिए जाते थे। घंटों साथ बैठकर दु:ख-सुख की बातें करते थे। गप्पों की थाली में अपने अनुभवों की वानगी एक-दूसरे को परोसते थे। फिर समय ने करवट ली और पत्र लिखने का दौर आया। अब जब मिलने जाना संभव न होता, तो लोग लम्बे-लम्बे पत्रों के माध्यम से अपने दिल का हाल सामने वाले को सुनाते थे और उसकी खैर-खबर पूछते थे। स्नेह की पाती पर अपनेपन के उभरे हुए अक्षर और अंत में स्वयं के स्वर्णिम हस्ताक्षर से पत्र जब अपनों के द्वार पर पहुँचता था, तो ऑंखों में दूरी का भीगापन भी होता था और दूर होकर भी पास होने की चमक भी झलक आती थी।

पत्रों की यह दुनिया अपनी धीमी रफ्तार से आगे बढ़ ही रही थी कि विकास का एक और साधन हमारे घर की शोभा बन गया। टेलिफोन ने घर-घर में अपना वर्चस्व स्थापित कर लिया। अब लोगों को एक-दूसरे के हालचाल पूछने के लिए मिलने जाने या पत्र लिखने की आवश्यकता नहीं थी। फोन के माध्यम से ही वे एक-दूसरे से बातें कर लिया करते थे। स्वजनों से मिलने का सिलसिला कम होता चला गया। पत्र लिखना तो मानों छूट ही गया। जबकि पत्र अपनी भावनाओं को व्यक्त करने का एक सशक्त माध्यम है। पत्र में जिस

तरह से अपनी भावनाओं को उँडेला जा सकता है, वह फोन में संभव नहीं है। पत्र को लम्बे समय तक सहेजकर रखा जा सकता है। पत्र में लिखे गए अक्षर व्यक्तित्व की पहचान होते हैं। लोगों ने इस बात को महसूस भी किया, किंतु समय की कमी और व्यस्तता के बीच इस प्रगति को स्वीकार करना ही विवशता थी।

आज भी फोन का अपना महत्व है। फोन से लाभ है, तो नुकसान भी। फोन पर की जानेवाली बातचीत में आमने-सामने मिलने जैसी आत्मीयता नहीं होती, किंतु उसके बाद भी ध्वनि के माध्यम से एक-दूसरे की भावनाओं को समझा जा सकता है। अपनी खिलखिलाहट से खुशी जाहिर की जा सकती है, तो सिसकियों के द्वारा अपने दु:ख को भी महसूस करवाया जा सकता है। फोन के माध्यम से अपनेपन को बाँटा जा सकता है, किंतु इससे मिलने वाली खुशी को देखा नहीं जा सकता।

आज है एसएमएस का जमाना। संदेश संप्रेषण का सबसे आधुनिक माध्यम- मोबाइल द्वारा एसएमएस करना और अपनी बात सामने वाले तक पहुँचाना। बात पहुँचने के बाद उस पर उसकी क्या प्रतिक्रिया हुई इस बात से बिलकुल अनजान रहना। क्योंकि यह संप्रेषण का एकतरफा माध्यम है। मोबाइल द्वारा एसएमएस भेजना भावनाओं को व्यक्त करने के बजाए उन्हें छुपाना है। किसी को सॉरी कहने के लिए उसे महसूस करने की कोई आवश्यकता नहीं है। बस, मैसेज बॉक्स में सौरी लिखा और भेज दिया। एक सेकन्ड में यह मैसेज सामने वाले तक पहुँच जाएगा। मैसेज का आदान-प्रदान वन-वे टरेफिक है। आप सामने वाले को आघात तो पहुँचा सकते हैं, पर उसके प्रत्याघात से बचा जा सकता है। एसएमएस के माध्यम से किसी का दिल एक पल में तोड़ा जा सकता है, किंतु उसके टूटने की आवाज को सुना नहीं जा सकता।

एसएमएस का फैशन जिस तेजी से बढ़ रहा है, उतनी ही तेजी से आत्मीयता खत्म होती जा रही है। मोबाइल के द्वारा एसएमएस से विवाह हो रहे हैं, तो एक ही क्षण में तलाक भी लिए जा रहे हैं। एसएमएस की आकर्षक दुनिया लोगों को करीब ला रही है, तो उनके बीच दूरियाँ भी बढ़ा रही है। हॉलीवुड अदाकारा ब्रिटनी ने मोबाइल मैसेज के माध्यम से एक तरफ

मोबाइल का महत्व बढ़ा दिया, तो दूसरी ओर वैवाहिक जीवन के महत्व को भी क्षण भर में कम कर दिया। टेक्स्ट मैसेज का उपयोग बातचीत करने के लिए कम और बातचीत टालने के लिए अधिक किया जाता है। कॉलेज के युवा तो अपने मित्रा से केवल एसएमएस के माध्यम से ही बातें करते हैं। भावनाओं की अभिव्यक्ति को इसने बिलकुल निष्प्राण बना दिया है। आपको आश्चर्य होगा, किंतु सच यह है कि आज की युवापीढ़ी को भावनाओं की अभिव्यक्ति के प्रति रूचि भी नहीं है। वे इसे समय बरबाद करने के अलावा और कुछ नहीं मानती।

इस व्यस्त दिनचर्या और एसएमएस में सिमटी दुनिया युवापीढ़ी को मानसिक रूप से बीमार बना रही है। मोबाइल से भेजे जानेवाले एसएमएस इतने छोटे होते हैं कि उसमें भाषा की दरिद्रता साफ झलकती है। साथ ही विचारों और भावनाओं की दरिद्रता भी छुप नहीं सकती। इसे न तो प्रिंट के माध्यम से अपने पास फाइल में सुरक्षित रखा जा सकता है न ही मैसेज बॉक्स में लंबे समय तक स्टोर किया जा सकता है।

आज के आधुनिक उपकरण मानवीय शक्तियों को बढ़ा रहे हैं, किंतु साथ ही उसकी भावनाओं को कुंठित कर रहे हैं। एक-दूसरे को यूं तो मोबाइल के माध्यम से कुछ सेकन्ड में ही सुन सकते हैं, मैसेज के माध्यम से वैचारिक रूप से मिल भी सकते हैं, किंतु अपनेपन की खुशी या गम बाँटने में ये माध्यम बिलकुल निरर्थक है।

क्रांतिकारी अविष्कार ने युवाओं को अकेलेपन का ऐसा साम्राय दिया है कि उसके मालिक वे स्वयं हैं। इसकी खुशी बाँटने के लिए भी आसपास कोई नहीं है। नीरवता का यह संसार उन्हें लगातार डिप्रेशन की ओर ले जा रहा है। तनाव का दलदल उन्हें अपनी ओर खींच रहा है और युवापीढ़ी है कि मानसिक रोगी बनने के कगार पर पहुँचने के बाद भी हथेली में सिमटी इस दुनिया से बाहर ही नहीं आना चाहती। बीप..बीप.. की यह ध्वनि भविष्य की पदचाप को अनसुना कर रही हैं। फिर भी युवा है कि इस बात से अनजान अपनेआप में ही मस्त है। समाज में बढ़ते इन मानसिक रोगियों के लिए कौन जवाबदार है वैज्ञानिक या स्वयं ये मानसिक रोगी बनाम आज की युवापीढ़ी? जवाब हमें ही ढूँढ़ना होगा।

प्रफुल्ल सिंह

मानवीय संवेदनाओं का मापदंड

हम एक ऐसे समाज का हिस्सा हैं, जिसकी पहचान विविधता से होती है। विविधता प्राकृतिक देन है जो हमारे समाज के सौहार्द को प्रतिबिंबित करती है, परंतु जब विविधता को सही ढंग से संजोने का अभाव हो तो वही तमाम तरह की सामाजिक समस्याओं के पनपने का मार्ग भी प्रशस्त करती है।

एक व्यक्ति के तौर पर ही देखें तो हम कितने तरह के सामाजिक पहचान लिए जी रहे हैं – जाति, धर्म, लिंग, क्षेत्र, भाषा, वर्ण, व्यावसायिक समूह इत्यादि; पहचान के ये समस्त मानक हमारी जीवन-प्रकृति का अंग बन चुके हैं और हमने धीरे-धीरे मनुष्य के रूप में अपनी पहचान खो दी है। जैसे ही हम ऐसे विभाजनकारी मानकों में अपनी पहचान खोजते हैं तो संगठित समाज को 'अपने' और 'पराये' में बंटा हुआ प्रत्यक्षित करने लगते हैं। एक सौहार्दपूर्ण समाज का इस तरह अपने और पराये में विभाजन हर परिप्रेक्ष्य में सामाजिक पतन के रूप में परिणत होता है। यह एक तरफ तो सामाजिक कुरीतियों जैसे- ऊंच-नीच, पक्षपात, पूर्वाग्रह, भय-उन्माद, ईर्ष्या-द्वेष, अनैतिकता व अन्याय आदि को पोषित करता है तो वहीं सामाजिक सौहार्द के स्तंभों और मानवीय मूल्यों की खुली अवहेलना को बल प्रदान करता है। यहीं से सामाजिक विभेद, संघर्ष और सामाजिक हिंसा का बिगुल बजता है जो हमारे समाज की मानवीय संवेदना को कुचलता जा रहा है। ये सभी चीजें लोगों के मानसिक स्वास्थ्य पर बुरा असर डालती हैं और उन्हें प्रत्येक रूप से असुरक्षित कर देती हैं।

मानवीय संवेदना एक ऐसा सार्वभौमिक परंतु व्यक्तिनिष्ठ मनोभाव है जिसका उद्देश्य केवल मनुष्य समाज का ही नहीं, अपितु समस्त जीवों का हित है और जिसकी मूल भावना 'वसुधैव कुटुंबकम' की व्यावहारिक जीवंतता है। मानवीय संवेदना भौतिकवादी समाज की स्वार्थपरक पहुंच से मीलों दूर, व्यक्ति की मार्मिकता, परानुभूति और प्रत्येक मानवीय मूल्य में समाहित ऐसा मूल तत्व है, जिसकी अभिव्यक्ति हमारे भाव, भाषा, धारणा, प्रेरणा, आचरण और व्यवहार में होती है। हम एक ऐसे समाज का हिस्सा हैं जहां सामाजिक

और मानवीय मूल्यों की नींव रखी गई थी और जहां हमारे आचरण और कर्म उत्कृष्ट मानवीय संवेदनाओं और जीवन मूल्यों को सहेज कर रखते थे। क्या आज हम अपने व्यवहार और आचरण में उन आदर्शों का पालन कर पा रहे हैं? समाज में घट रही घटनाएं और विकृत होती मानव प्रवृत्ति हमारे समाज की वास्तविकता को बयां करती है। चाहे गरीबों व मजदूरों के पेट न भर पाने से हुई मृत्यु की खबर हो, जाति और धर्म के आधार पर बर्बरतापूर्ण पीटे जा रहे किसी भी धर्म के अनुयायियों की घटनाएं हों, पुलिस तंत्र का अनैतिक बल प्रयोग और पक्षपातपूर्ण कार्यवाही हो, डॉक्टरों द्वारा पैसे की कमी के चलते गंभीर मरीजों के इलाज से इंकार किया जाना हो, परिवार के सदस्यों द्वारा ही बच्चियों-महिलाओं के साथ हो रही बर्बरता हो, समाज के महत्वपूर्ण स्तंभ किसान और मजदूर के बुरे सामाजिक-आर्थिक स्थिति का विषय हो, पोषण, शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मूलभूत आवश्यकताओं में हो रहे भ्रष्टाचार के विषय हों, और इन चीजों पर सरकार और तंत्र की निष्क्रियता; जैसी सैकड़ों घटनाएं प्रतिदिन के हिसाब से घटना कैसे प्रभावित लोगों के मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ रखेगा? समय के साथ समाज का बड़ा हिस्सा प्रभावितों की श्रेणी में आता जा रहा है। हम मानवीय संवेदना के मामले में व्यक्तिगत, सामाजिक और तंत्र तीनों स्तर पर विफल होते जा रहे हैं। स्वयं की भौतिकता विस्तार में न तो हमारे पास इन विषयों पर सोचने का वक्त है, न ही मानवता के रास्ते से भटकते जा रहे हमारे आचरण-व्यवहार को सही करने की इच्छाशक्ति ही।

मानवीय संवेदनाओं से विमुख और उस पर गहरी चोट करती ऐसी सभी सामाजिक घटनाएं समाज को सम्पूर्ण रूप में तो प्रभावित करती ही हैं, व्यक्तिगत रूप में भी लोगों की भावनाओं और व्यवहार में बड़े बदलाव लाती हैं। ये सभी चीजें हमें मनोवैज्ञानिक अस्थिरता की तरफ धकेल रही हैं, जहां न हमारा चित्त शांत है, न हमारे संवेग। दिन पर दिन संवेगों की नकारात्मकता की तरफ बढ़ता झुकाव और अएकाग्रचित मन हमारे निर्णय प्रक्रिया को भी कमजोर करता जा रहा है। परिणामस्वरूप आज हम मानवीय संवेदना जैसे विषयों पर न तो संजीदा हैं और न ही आत्मचिंतन करने की स्थिति में खुद को सबल पाते हैं।

अगर अपने समाज को एक सभ्य समाज के रूप में परिणत करना है तो हमें हर एक स्तर पर आत्म-विश्लेषण करना पड़ेगा, पर उन सब में सबसे महत्वपूर्ण और प्रभावकारी कदम हमें एक मनुष्य के रूप में लेना पड़ेगा। ऐसा कदम, जिसमें अपने सामाजिक मूल्यों को वरीयता देनी पड़ेगी और आने वाली पीढ़ी में मानवीय संवेदना और मूल्यों की सजीवता संपूर्णता लिए हुए रहे, उनके समाजीकरण में इस बात पर बल देना पड़ेगा। हमारा समाज एक ऐसी विरासत लिए हुए है जहां हम सबको पता है 'अच्छाई क्या है'। हम सब ने देखा, सुना और महसूस किया है, फिर भी अब हम उसे अपने आचरण और कर्म में नहीं ला पा रहे हैं। यह सब आत्म-अन्वेषण का विषय है।

मानव जीवन में अध्यात्म का गूढ़ रहस्य

राष्ट्र, समाज और घर-परिवार की व्यवस्थाओं को इनके दुर्गुणों के साथ अपनाना जीवन का अस्वाभाविक पक्ष है। ममत्व, अपनत्व तथा संवेदनशील मनुष्य जीवन के इस पक्ष को हृदय से स्वीकार नहीं करता। विवशता में वह ऐसी जीवन पद्धति का अंग भले बना रहे, परंतु आत्मिक रूप से वह इससे बाहर आने को छटपटाता रहता है। इसी स्थिति में आध्यात्मिक भावना का विकास होता है।

जब हम अस्वाभाविक अथवा अप्राकृतिक जीवन में अध्यात्म की बातें करते हैं तो यह अध्यात्म प्रवृत्ति के साथ अन्याय करने जैसा होता है। क्योंकि आध्यात्मिकता मनुष्य में भौतिक जगत से अलगाव के बाद ही उपजती है। अध्यात्म का अर्थ कोई सीखने-सिखाने का विषय नहीं। सभी में यह प्राकृतिक रूप से विद्यमान है।

मनुष्य जब हर प्रभाव से मुक्त होकर अपनी आत्मिक शक्ति से संचालित होता है तो वह आध्यात्मिकता के क्षेत्र में प्रविष्ट होता है। यह लगन मनुष्य में प्राकृतिक उपक्रम से उत्पन्न होती है जिसका अस्तित्व और संचालन कृत्रिम न होकर पूर्णत: प्रकृति प्रदत्त होता है। इस दुनिया की सभी नकारात्मक शक्तियां मनुष्यजनित ही हैं। यदि मनुष्य प्रलोभनों, लोभ व स्वार्थ के अंधेरों में न भटकता तो उसे कृत्रिमता पर आधारित जीवन नहीं अपनाना पड़ता। इसी व्यवहार के कारण मानव और प्रकृति के बीच का तारतम्य टूट गया। परिणामस्वरूप मानवीय विचार, भावनाएं तथा ज्ञान पारदर्शी न रहकर द्वंद्वात्मक हो गए। यह इसलिए हुआ क्योंकि मानव जीवन में आत्म-व्यवहार होना बंद हो गया।

हमें यह विचार करना चाहिए कि इस संसार में न तो हमारे जन्म से पूर्व हमें अपने भौतिक अस्तित्व का ज्ञान था और न ही हमारी मृत्यु के उपरांत हमें अपने भौतिक शरीर का भान होगा। तब क्यों हम अपनी स्वाभाविक वृत्ति

आध्यात्मिकता से अलग हो जाते हैं/ आत्मचिंतन से हमें जगत के गूढ़ रहस्यों का आभास होने लगता है। हमारा जीवन भी एक प्रकार से गूढ़ रहस्य ही है। यह अलग बात है कि भौतिक सुख-सुविधाओं अथवा दुख-दुविधाओं को भोगते हुए हमें यह अंतर्ज्ञान नहीं होता। परंतु हमारी वास्तविक प्रवृत्ति एक न एक दिन हमें अपनी ओर आकर्षित अवश्य करती है।

प्राकृतिक घटनाओं के प्रति ध्यानमग्न होकर अपनी अंतर्चेतना को उन्हीं जैसा बनाना अध्यात्म का प्रथम शिक्षण कार्य है। इस आध्यात्मिक अभ्यास में जीवनभर रमण करते रहने से हमें मात्र जीवन की नकारात्मक व्याधियों से ही छुटकारा नहीं मिलता, अपितु जीवन-मृत्यु के गूढ़ रहस्य को सुलझाने का एक आध्यात्मिक सूत्र भी हमारे हाथ लग सकता है। इसके बाद हम संसार के लिए कल्याणकारी कार्यों को करने का एक महान स्रोत बन जाते हैं।

व्यक्ति स्वयं पर अनुशासन कर लेता है तो उसे नि:संदेह आत्मानुभूति होती है। यह जागृत आत्मानुभूति ही अध्यात्म है। कहा जाता है कि जीवन का दूसरा नाम ही अध्यात्म है। लोकतान्त्रिक व्यवस्था में जैसे मुख्य सिद्धांत है- जनता के लिए, जनता के द्वारा, जनता का शासन ठीक उसी प्रकार अध्यात्म व्यवस्था के लिए स्वयं के द्वारा, स्वयं का अनुशासन होता है।

व्यक्ति स्वयं पर अनुशासन कर लेता है तो उसे नि:संदेह आत्मानुभूति होती है। यह जागृत आत्मानुभूति ही अध्यात्म है। इस अनुभूति से व्यक्ति की चेतना अविकार एवं आनन्दमय बनती है।

आज के दौर में अध्यात्म परम्परा को पुन: जागृत कर व्यक्ति जीवन में अध्यात्म साधना की अनुभूति करें, तभी जीवन में अमूल्य निधि का वरण किया जा सकता है।

मनुष्य जीवन में विभिन्न द्वंद्व व्याप्त हैं। इन द्वंद्वों से मुक्त होने का एकमात्र रास्ता अध्यात्म ही है। अध्यात्म की शरण में जाए बिना व्यक्ति जीवन में फैले अंधकार और अनैतिकता के द्वंद्व को नहीं मिटा सकता।

अध्यात्म का शतांश पालन करने वाला व्यक्ति भी जीवन में मुक्ति का मार्ग खोज सकता है। नीतिहीनता के घोर अंधेरे में अध्यात्म ही ऐसा दीपक है जिसके सहारे जीवन के पथ को आलोकित किया जा सकता है।

अध्यात्म का पर्याय अनुशासन है। अनुशासन के बिना न तो साधना के क्षेत्र में प्रवेश किया जा सकता है ओर न ही जीवन में व्याप्त समस्याओं का समाधान खोजा जा सकता है। जीवन की जटिल से जटिल समस्याओं का समाधान अध्यात्म में निहित है।

अध्यात्म के गूढ रहस्यों को समझकर ही व्यक्ति आत्म साक्षात्कार कर सकता है। अध्यात्म साधना के बिना साधक की सभ्यता, कला, ज्ञान आदि विकसित नहीं हो सकते।

अध्यात्म के अभाव में इन सबमें विकास की संभावना नहीं की जा सकती। साधक जीवन में अध्यात्म के सोपान को छूने, इसके लिए आवश्यक है सत्य और अहिंसा का पालन। बिना सत्य और अहिंसा के अध्यात्म के शिखर पर नहीं पहुंचा जा सकता।

कोई भी व्यक्ति अध्यात्म को विस्मृत कर विकास के सोपान नहीं छू सकता। अध्यात्म का प्रयोग करके ही व्यक्ति अपने जीवन में व्याप्त वृतियों को शांत कर सकता है। अध्यात्म के बल पर ही व्यक्ति अपनी कार्यक्षमता का विकास कर सकता है।

अध्ययन से अध्यात्म तक की यात्रा

अध्यात्म ज्ञान मै स्वयं के द्वारा मन, बुद्धि, शरीर, इन्द्रिया, जीव, आत्मा और परमात्मा का अध्यन ही अध्यात्म है मैं स्वयं के द्वारा आत्मा का प्रयोगशाला ही अध्यात्म है इस सम्पूर्ण विश्व मे रहने वाला मनुष्य किसी न किसी प्रकार से दुःख में जी रहे हैं ऐसे बहुत कम ही मनुष्य है जो सम्पूर्ण आनंद में स्थिर है और जीवन में आनंद नही होने के कारण मन में घबराहट उत्पन्न होता है यही घबराहट मन का बंधन है और मन में भाव उत्त्पन होते है जिससे सही या गलत को जान नही पाते और इस जगत में विचरते रहते है।

मनुष्य का मन ही बंधन और मुक्ति का कारण हैं अतः यह समझा जा सकता है कि यदि मन व्यवस्थित किया जा सकता है तो आत्मा और परमात्मा की सारी समस्याओ का समाधान हो सकता है। मनुष्य की बुद्धि प्रकृति का वरदान है जिसकी योग्यता मनुष्य को सृस्टि मे श्रेष्ठ वाना देता है यह मानना होगा की मनुष्य को भी सृस्टि की सीमा मे रह कर नियमो द्वारा निर्धरित क्रमवद्ध प्राणी-धर्म निभाना होता है। जन्म, मृत्यु, वृद्धि व्याधि, जरा,की प्रक्रिया निर्दिष्ट है इन घटनाओ का हम स्वेच्छा से चयन नहीं कर सकते। हम शेष सिमित क्षेत्र मे जीवन और उसकी घटनाओ को संवार सकते हैं, उसी ओर हमारा ध्यान और प्रयास अपेक्षित हैं। स्वीकार्य भाव जो क्षेत्र हमारे सीमा से बाहर है जिन घटनाओ जैसे आती है, उसे वैसे ही स्वीकार करना है उसके प्रति मन के स्तर पर प्रोत्साहन स्वीकार्य भाव जागृत करना होगा।

इन सब समाधानों की पुष्टि अध्यत्म है स्वयं का अध्ययन, अर्थात आत्मा का अनुसन्धान। मै "स्वयं" जगत और उसके नियंता की जिज्ञासा, जीवन जीने की कला जीवन्मुक्ति एव मोक्ष है, मोक्ष क्या है, उसके साधन क्या है, मृत्यु की समझ आदि इस मार्ग पर चलते-चलते हमारे लिए सुगम हो जाता है। आत्म-तत्व अथवा आत्मा और परमात्मा से सम्वद्ध अध्यात्म है।आत्मैवेदं

सर्वम् अर्थात सब कुछ आत्मा ही आत्मा है और इसको जाने बिना मुक्त जीवन संभव नहीं है।

आत्मा को जान कर ही मृत्यु से पार जा सकते है अन्य कोई मार्ग नहीं है। यह सब जानते है कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, चिंता, भय , ईर्ष्या, आदि प्रवृतिया हमारे मुक्त जीवन के मार्ग को रोके रहती है इन सब के मूल ने इच्छा अथवा कामना के भाव ही है। मै स्वयं का भाव होने पर ही कामना ना संकल्प उत्पन्न करती है अपूर्ण होने पर अथवा प्रतिकूल होने पर भाव उत्पन्न होता है और अधिक की भोग इच्छा लोभ उत्पन्न करती है|इच्छित फल प्राप्ति से मोह उत्पन्न हो जाता हैं, जो मेरे की भावना सुदृढ़ करता है। उसके समाप्त होने की चिंता भय उत्पन्न करती है इच्छित वस्तु अन्य को प्राप्त होने से भय ईर्ष्या का उत्पन्न होती है। स्वयं का विचार ही सर्वोपरि है "मै" नहीं तो काम कौन करेगा, मृत्यु का भय भी "मै" के कारण ही होता है। "मै "का संसार से सम्बन्ध नहीं रहता तो जीना कौन चाहेगा !

कर्म के माध्यम से मै आत्मा से परमात्मा तत्व को महसूस किया जाता है कि कर्म मार्ग को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। गृहस्थ व्यक्ति के लिए कर्म अधिक उपयुक्त है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी काम में लगे हुए हैं, और यह शरीर प्रकृति का भाग है इस लिये हम कर्म के रहस्य को नहीं जानते हैं। लेकिन उसके द्वारा किया गया कर्म भी प्रकृति के नियंता के लिये हैं समर्पण भाव कर्म फल से भी मेरा कोई लेना देना नहीं, यही कर्म योग कहलाता हैं। जब मै कर्ता नहीं तो भोक्ता कैसे ? फिर कर्म फल का प्रश्न ही नहीं उठता। यही जीवन्मुक्ति की अवस्था हैं अहं की भावना से किया गया पाप कर्म या पूर्ण कर्म बुरा या अच्छा प्रभाव पड़ता हैं निःस्वार्थ भाव से किया गया कर्म निष्काम कर्म ही हैं |कर्म तो होंगे, लेकिन यह भी सच है कि दुख की उत्पत्ति कर्म से ही होती है। कर्म करो, निष्काम कर्म करो। कर्मयोगी इस कारण से काम करता है कि कर्म करना अच्छा है और इसके पीछे कोई उद्देश्य नहीं है। कर्मयोगी कर्मो का त्याग नहीं करता और कर्मो को दुखों से मुक्त किया जाता है। और वह कभी भी कुछ पाने के लिए चिंतित नहीं होता है वह जानता है कि परमात्मा दे रहा है और बदले में कुछ भी नहीं मांग रहा है और यही कारण है कि वह दुःख की स्थिति में नहीं आता है। वह जानता है कि दुःख का बन्धन 'मै ' स्वयं का

परिणाम है। कर्म मार्ग को बहुत महत्व दिया गया है। भारतीय दर्शन में कर्म को बंधन का कारण माना जाता है। लेकिन कर्म मार्ग में, कर्म का जो रूप तैयार किया गया है, वह बंधन का कारण नहीं है। जब तक शरीर हैं तब तक किस भाव से कर्म किया जा रहा है।

कर्म सिद्धांत का यह सामान्य नियम है कि हमें वही फल मिलते हैं जो हम करते हैं। इस नियम के अनुसार, शुभ कर्मों का फल अच्छे और बुरे कर्मों के प्रभाव के लिए अशुभ होता है। इसी प्रकार सुख और दुख को भी क्रमशः हमारे शुभ और अशुभ कार्यों का फल माना जाता है। जो ऐसे कार्यों से युक्त होते हैं, अब प्रश्न यह है कि कौन से कर्म बंधन उत्पन्न करते हैं और कौन सा नहीं? कर्म परमात्मा के लिए होता हैं, तो वे बंधन उत्पन्न नहीं करते हैं। और पूर्ण परमानन्द को प्राप्त करने में सहायक हैं। इस प्रकार, परमात्मा के लिए कर्म करना, वास्तव में कर्म योग है और इसके अनुसरण से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होता है ज्ञान मार्ग, भक्ति मार्ग और कर्म मार्ग मेँ कर्म मार्ग को अधिक श्रेष्ठ माना गया हैं। कर्म करने ही हैं जब तक शरीर हैं किस भाव से कर्म किया जा रहा हैं केवल कर्म को छोड़ने के कारण, मनुष्य को सिद्धि या परमान्द नहीं प्राप्त होती है। मनुष्य एक क्षण भी कुछ किए बिना नहीं रहता। फिर भी वे कर्म में लगे हुए हैं।

यदि वे कार्य नहीं करते हैं, तो व्यक्ति को मिथ्या आचरण करने वाला कहाँ गया हैं। कर्म करना मनुष्य को कहाँ गया हैं यह लोगों की स्थिति के लिए अनिवार्य हैं जिसके बिना शरीर का निर्वाह संभव नहीं है अज्ञानी मनुष्य फल की आकांक्षा से कर्म करता है उसी प्रकार आत्मज्ञानी मनुष्य को लोकहित के लिए आसक्ति रहित होकर कर्म करना चाहिए। इस प्रकार आत्मज्ञान से संपन्न मनुष्य ही, वास्तविक रूप से कर्मयोगी हो सकता।

जीवन अपना है

हम स्वभावत: उसकी नकल करते हैं जो हमें अच्छा लगता है। उसके व्यक्तित्व से हम इतना प्रभावित रहते हैं कि उसकी जीवन शैली को अपना आदर्श बना लेते हैं। इसी के चलते हम अपनी रुचि को भी उसी के ऊपर थोप देते हैं।

ऐसा करने में हम यह भूल जाते हैं कि उसकी और हमारी शारीरिक और मानसिक क्षमता अलग - अलग है। हमें अपना जीवन अपनी सामर्थ्य के अनुसार जीना चाहिए। भोजन और वस्त्र क्या, हमारे अपने शरीर की मांग अपनी रुचि और अपनी पाचन शक्ति के अनुसार होना चाहिए।

यह ठीक है कि हम तभी सुंदर होंगे जब हम दूसरों को सुंदर लगेंगे। हमारे वस्त्र, हमारा आचरण कैसा लग रहा है - सुंदर है या असुंदर, यह दूसरे ही बता सकते हैं लेकिन हमें समयानुसार अपने को कैसे ढालना है यह हमारे ऊपर निर्भर होना चाहिए। दूसरों की दृष्टि महत्व पूर्ण होती है। परंतु अपनी रुचि भी कम नहीं होती। हम अपनी रुचि की उपेक्षा करके दूसरों की रुचि के अनुसार कैसे रह सकते हैं। इसके अलावा भी, हमें अपनी परिस्थिति देखनी पड़ती है। हमें अपने पैर अपनी चादर के अनुसार फैलाने चाहिए। यदि चादर थोड़ी कम लंबी है तो पैरों को थोड़ा सा समेटना आवश्यक होता है । दूसरों की मर्जी से तो उधार की जिंदगी जी जाती हैं।

अधिकतर ऐसा होता है कि हम दूसरों द्वारा निर्धारित मानकों के अनुसार जीने की कोशिश करते हैं। अपनी रुचि और स्वभाव को नजर अंदाज कर देते हैं। हमें दूसरों के विचारों का स्वागत करना चाहिए लेकिन अपनी जिंदगी को पराया बना कर नहीं। जब अपनी जिंदगी से हम ही खुश नहीं रहेंगे तो दूसरे कैसे खुश रह सकते हैं? इसलिए हमें जो रुचिकर लगे करना चाहिए, लेकिन अनुचित करने से बचना चाहिए।

जिंदगी हमारी है, इसे सुंदर कैसा बनाना है यह हमारी इच्छा पर निर्भर करता है। सभी लोग जानते है कि दूसरों की भलाई, दूसरों से प्रेम और सौहार्द

और सहयोग अच्छा होता है। पर, दूसरे तो तब आते हैं जब हम अपनों के प्रति अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हों। अपने परिवार को यथोचित प्यार नदेकर यदि हम प्यार बाटतें फिरे तो लोग क्या कहेंगे। यह कैसा लगेगा कि हम अपने परिवार को भूखा छोड़कर दूसरों की भूख मिटाते फिर रहे हैं। क्या हमें अपनी अंर्तात्मा क्षमा करेगी?

जीवन सफल तभी होता है जब हम अपने परिवार को पूरी तरह संतुष्ट रखें। हमारे बारे में दूसरों की राय हमारे परिवार से बड़ी नहीं होती। श्रवण कुमार ने अपने माता - पिता को काँवर में बैठा कर तीर्थाटन कराने गए थे। उन्होंने दूसरों की हँसी या उनकी राय की परवाह नहीं की। इसलिए अपनी जिंदगी अपनी इच्छा के बिना किसी टकराव या तनाव के जीवन - यापन करिए , लेकिन इसके लिए किसी की ईच्छा को कुचलिए नहीं।

महिला सशक्तिकरण

स्त्री सशक्तिकरण को लेकर लंबे समय से बहस चल रही है। इसके लिए अनेक अभियान, जन-जागरूकता कार्यक्रम भी चलाए गए। तमाम बहसों, गोष्ठियों में महिला और पुरुष में बराबरी के तर्क दिए जाते हैं। मगर हकीकत यह है कि महिलाओं के प्रति समाज के नजरिए में बहुत बदलाव नहीं आया है। उन्हें दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता, घर की चारदीवारी में कैद करने का प्रयास किया जाता, लड़के और लड़की की परवरिश में भेदभाव किया जाता है। इसी तरह साहित्य और कलाओं में उसके सौंदर्य को ही मुख्य विषय बनाया जाता है, उसकी मेधा को नहीं। स्त्री का सबसे खराब पक्ष विज्ञापन और सिनेमा की दुनिया में देखा जाता है।

जब एक लड़की जन्म लेती है, तो भविष्य की एक मां, एक बहन और एक पत्नी जन्म लेती है। वह चिंता की तरह क्यों आए, चेतना की तरह क्यों नहीं? भारतीय समाज तो लड़की के जन्म को लक्ष्मी या सरस्वती का जन्म कहते हैं, वही लक्ष्मी, सरस्वती आगे चलकर परिवार में बोझ की तरह क्यों देखी जाती है? उसे हमारे बौद्धिक विमर्शों में समानता के नाम पर पुरुष-छवि देने की कोशिश की जाती है। पर वह पुरुष क्यों बने, प्रति-पुरुष क्यों नहीं, पुरुष से बेहतर क्यों नहीं? उसकी छवि को आंसुओं के आईने में ही क्यों देखा जाए, अग्नि-धर्मा के अग्नि-चैतन्य रूप में क्यों नहीं? कवि-लेखक उसका नख-शिख वर्णन ही क्यों करें, उसकी मानवीय संवेदना का क्यों नहीं। उसके अंदर के उस मर्म का क्यों नहीं, जो अपने पति या पिता को भी मातृत्व-भाव से देखती है, निस्वार्थ सेवा करती है। उसे कोई भी अंकशायिनी बना कर आनंदित या गर्वित क्यों होता है, उसे प्राणदायिनी या वीर-प्रसूता क्यों नहीं माना जाता? सच पूछा जाए तो वह सृष्टि है, सृष्टि पर कुदृष्टि का कोप क्यों, जबकि स्त्री पुरुष से अधिक मानवीय है।

एक लड़की परिवार में जैसे-जैसे बड़ी होती है, उसे संस्कार-दीक्षा दी जाती है। उसे एक अच्छी बेटी, अच्छी बहन, अच्छी पत्नी बनने के कई मंत्र

दिए जाते हैं। यहां तक कि उसे पिता और पति के परिवार में एक निर्विरोध और आज्ञाकारी सेविका बनने की भी हिदायतें और मर्यादाएं सिखाई जाती हैं। मगर वह एक स्वतंत्र, स्वायत्त, स्वावलंबी, स्वाभिमानी और वक्त आने पर निर्भीकता पूर्वक अपनी आत्मरक्षा की शक्ति बनने की कोई शिक्षा नहीं दी जाती। एक लड़की को हम परिवार में शक्तिरूपा न मान कर, पराया धन मानते हैं और पति के परिवार के लिए तो वह मानवीय-धन भी न होकर दहेज-धन हो जाती है। कितनी मानसिक यंत्रणाओं और वर्जनाओं में जीना होता है एक लड़की, स्त्री या पत्नी, मां, बहन को! अगर वह नौकरी करती है तो नौकरी के संदेहों और लांछनों में भी क्या यही नारी का 'यत्र नार्यस्तु पूज्यंते' रूप है? अगर उसकी पूजा में देवता का निवास है, तो पुरुष उसे पूजा का देवता बनने के बजाय उसका शोषक क्यों बन जाता है? वह देह से शोषित होती है, मन से शोषित होती है और अगर कमाती है तो कमाई से या दहेज से शोषित होती है। इतने शोषणों में जीते हुए स्त्री समाज की बनाई गुलामी की जटिल रस्सी से मुक्त हो तो कैसे! उसके लिए हर दिशा का दरवाजा या तो बंद है या वहां समाज का तथाकथित पहरेदार सिपाही बैठा है।

कितनी बड़ी विडंबना है कि स्त्रियों को लेकर एक ओर समानता और सशक्तिकरण पर राष्ट्रीय से लेकर अंतरराष्ट्रीय मंचों तक उत्तेजित और आक्रोशभरी बहसें होती हैं, जिनमें पढ़ी-लिखी, सजी-धजी, ऊंचे ओहदे या स्वदेशी-विदेशी संगठनों से जुड़ी विदुषियां शमिल होती हैं। कम्प्यूटर पर प्रेजेंटेशन बड़ी चमक-दमक के साथ दिए जाते हैं। स्कूलों से लेकर विश्वविद्यालयों तक के पाठ्यक्रमों में स्त्री सशक्तिकरण के विषय शामिल किए जाते हैं। वे सब दिखावटी काम केवल ऐसी स्त्रियों के हैं, जो शहरी, संभ्रांत और अन्य मध्यवर्गीय जीवन जीती हैं और उनमें ऐसे पुरुष भी शरीक होते हैं, जो एनजीओ और तथाकथित प्रतिष्ठा-प्राप्त संस्थाओं के पदों पर रह कर दफ्तर में स्त्री का कभी अपमान करते हैं, तो कभी स्त्री के कथित यौन शोषण के आरोप से देश भर के मीडिया और सोशल मीडिया में रोचक समाचार बन जाते हैं। उनका बिगड़ता कुछ नहीं, स्त्री को ही बिगड़ने और बिगाड़ने का दोषी मान लिया जाता है।

स्त्री की शक्ति स्त्री के अपने होने में है। वह मां है तो उसके पास मां की ताकत है, वह बहन है तो बहन की ताकत है, जहां भी जो भी है वहां उसकी वही ताकत है। कमी है तो यह कि स्त्री इन ताकतों का सही समय और अवसर पर प्रयोग नहीं कर पाती या पुरुष वर्चस्व के समक्ष झुक जाती है। स्त्री उस पर पहनाए गए फैशनदार शब्दों के वस्त्र उतार फेंके और अपने मूल रूप में अपने अस्तित्व की पहचान के साथ खड़ी हो, पुरुष से अपने आर्थिक आधार का आधा हक छीन ले और शिक्षा में जितना शील और शालीनता का पाठ पढ़ती है उससे समाज में प्रचलित अश्लीलता और हिंसा को पराजित कर दे, घर से बाहर तक वह इस्पात की स्नायुओं के साथ खड़ी हो और पुरुष से डरने के बजाय अपने नैतिक बल से पुरुष को डरा सके, तभी स्त्री सशक्त भी होगी, स्वतंत्र भी और उसके स्त्रीत्व का स्वाभिमान भी जाग्रत होगा। स्त्री अपने स्त्री रूप में पुरुष से अधिक सशक्त है, नैतिक रूप से भी और मानसिक रूप से भी। वह सशक्तीकरण के नाम की दया पर जीने के बजाय स्वयं शक्ति बन कर खड़ी होगी, तो कभी अशक्त नहीं रहेगी।

प्रफुल्ल सिंह

विफलता से ही सफलता की राह

आप को हर समय सफलता की उम्मीद होना निराशा का एक बड़ा कारण है। आप जो नौकरी में, रिश्तों में, आश्वासनों में, निश्चितता चाहते हैं, असफलता उसका एक आयाम है। जैसे सफलता याद रखने चाहते हैं, वैसे ही आप को कुछ असफलताओं को भी याद रखना चाहिए।

जीवन में असफलता, हमें सफलता से ज़्यादा मिलती है। कौन ऐसा 'सफल' व्यक्ति है जिसने असफलता और तिरस्कार नहीं झेला होगा! जिनको हम दुनिया के सफल व्यक्ति मानते हैं, उनकी कहानी भी रिजेक्शन और असफल प्रयास की बुनियाद पर खड़ी होती है। फिल्म इंडस्ट्रीज से लेकर प्रशासनिक सेवा में सफल रहे लोगों ने असफ़लता का सामना किया है।

हमें जब भी कोई बड़ी निराशा होती है, हम सोचते हैं ऐसा हमारे ही साथ हुआ है, जबकि ऐसी बात नहीं है। आप लोगों के जीवन में झांक कर देखें, जो लोग आपको ज़्यादा खुश दिखते हैं, उनसे बात कर के हमको पता चलेगा, उन्होंने कितने पापड़ बेले हैं! तो ये रिजेक्शन, हम को और रचनात्मक होने, ऊर्जावान होने और बड़े कैनवास पर, काम करने के लिए प्रेरित करता है। जिसने असफलता को महूसस किया है, जो रिजेक्शन को याद रखता है, वो अक्सर दूसरों की इज्जत और मदद ज्यादा करता है। दूसरों को अपना दुःख बताने की बजाए, उनकी बातें सुनता है, हौसला देता है कि- 'सब ठीक हो जायेगा'! हर एक चीज में कुछ सकारात्मक ढूंढने से नकारत्मकता से बचा जा सकता है।

असफलता से लोग गंभीर निराशा में चले जाते हैं। सफल लोगों की असफलता और रिजेक्शन की कहानी, दूसरों के लिए एक प्रेरणा बन सकती है। एक ऐसे समय में जब कॉलेज और यूनिवर्सिटी के छात्र, अपनी एक असफलता और असफल होने की अशंका मात्र से हताशा के शिकार हो रहे हैं

उनके शिक्षक उनके लिए प्रेरणा बन सकतें हैं। इससे दूसरों को निराशा से उबरने में मदद मिलेगी।

तो चलिए, अपनी कुछ असफलता को जग ज़ाहिर करें, दूसरे युवा लोग, जो आप को सफल समझते हैं, उनको लड़ने और संघर्ष करने की प्रेरणा मिलेगी। रिजेक्शन को स्वीकार करें, गले लगाएँ क्योंकि सफलता के शिखर पर भी कुछ कमी रह जाती है और एक असफलता भी जीवन को कुछ कदम आगे बढ़ा देती है। दुनिया में ऐसे उदहारण भरे पड़े हैं जिन्होंने, कुछ असफलताओं के बावजूद, बुलंदियों को छुआ है। आप भी मुट्ठी तान के खड़े हो जाइये, दुनिया आप का लोहा मानेगी।

प्रफुल्ल सिंह

भारतीय संस्कृति की मान्यताएं एवं नैतिक मूल्य

स्वभाव की गंभीरता, मन की समता, संस्कृति के अंतिम पाठों में से एक है और यह समस्त विश्व को वश में करने वाली शक्ति में पूर्ण विश्वास से उत्पन्न होती है।

अगर भारत के संदर्भ में बात की जाए तो भारत एक विविध संस्कृति वाला देश है, एक तथ्य कि यहाँ यह बात इसके लोगों, संस्कृति और मौसम में भी प्रमुखता से दिखाई देती है। हिमालय की अनश्वर बर्फ से लेकर दक्षिण के दूर दराज में खेतों तक, पश्चिम के रेगिस्तान से पूर्व के नम डेल्टा तक, सूखी गर्मी से लेकर पहाड़ियों की तराई के मध्य पठार की ठंडक तक, भारतीय जीवनशैलियाँ इसके भूगोल की भव्यता स्पष्ट रूप से दर्शाती है। एक भारतीय के परिधान, योजना और आदतें इसके उद्भव के स्थान के अनुसार अलग-अलग होते हैं।

भारती संस्कृति अपनी विशाल भौगोलिक स्थिति के समान अलग-अलग है। यहाँ के लोग अलग-अलग भाषाएँ बोलते हैं, अलग-अलग तरह के कपड़े पहनते हैं, भिन्न-भिन्न धर्मों का पालन करते हैं, अलग-अलग भोजन करते हैं किंतु उनका स्वभाव एक जैसा होता है। चाहे कोई खुशी का अवसर हो या कोई दुख का क्षण, लोग पूरे दिल से इसमें भाग लेते हैं, एक साथ खुशी या दर्द का अनुभव करते हैं। एक त्यौहार या एक आयोजन किसी घर या परिवार के लिये समिति नहीं है। पूरा समुदाय या आस-पड़ोस एक अवसर पर खुशियाँ मनाने में शामिल होता है, इसी प्रकार एक भारतीय विवाह मेल-जोल का आयोजन है, जिसमें न केवल वर और वधु बल्कि दो परिवारों का भी संगम होता है। चाहे उनकी संस्कृति या फिर धर्म का मामला क्यों न हो। इसी प्रकार दुख में भी पड़ोसी और मित्र उस दर्द को कम करने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

भारत का इतिहास और संस्कृति गतिशील है और यह मानव सभ्यता की शुरूआत तक जाती है। यह सिंधु घाटी की रहस्यमयी संस्कृति से शुरू होती है और भारत के दक्षिणी इलाकों में किसान समुदाय तक जाती है। भारत के इतिहास में भारत के आस-पास स्थित अनेक संस्कृतियों से लोगों का निंरतर समेकन होता रहा है। उपलब्ध साक्ष्यों के अनुसार लोहे, तांबे और अन्य धातुओं के उपयोग काफी शुरूआती समय में भी भारतीय उप-महाद्वीप में प्रचलित ये, जो दुनिया के इस हिस्से द्वारा की गई प्रगति का संकेत है। चौथी सहस्राब्दि बी.सी. के अंत तक भारत एक अत्यंत विकसित सभ्यता के क्षेत्र के रूप में उभर चुका था।

संस्कृति के शब्दिक अर्थ की बात की जाए तो संस्कृति किसी भी देश, जाति और समुदाय की आत्मा होती है। संस्कृति से ही देश, जाति या समुदाय के उन समस्त संस्कारों का बोध होता है जिनके सहारे वह अपने आदर्शों, जीवन मूल्यों आदि का निर्धारण करता है। अत: संस्कृति का साधारण अर्थ होता है- संस्कार, सुधार, परिवार, शुद्धि, सजावट आदि। वर्तमान समय में सभ्यता और संस्कृति को एक-दूसरे का पयार्य माना जाने लगा है लेकिन वास्तव में संस्कृति और सभ्यता अलग-अलग होती है। सभ्यता में मनुष्य के राजनीतिक, प्रशासनिक, आर्थिक, प्रौद्योगिकीय व दृश्य कला रूपों का प्रदर्शन होता है जो जीवन को सुखमय बनाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं जबकि संस्कृति में कला, विज्ञान, संगीत, नृत्य और मानव जीवन की उच्चतम उपलब्धियाँ सम्मिलित है।

भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है। यह माना जाता है कि भारतीय संस्कृति यूनान, रोम, मिस्र, सुमेर और चीन की संस्कृतियों के समान ही प्राचीन है। भारत विश्व की सबसे पुरानी सभ्यताओं में से एक है जिसमें बहुरंगी विविधता और समृद्ध सांस्कृतिक विरासत है। इसके साथ ही यह अपने-आप को बदलते समय के ढालती भी आई है।

अगर भारतीय संस्कृति के समन्वित रूप पर विचार करें तो इसमें विभिन्न विशेषताएँ देखने को मिलती हैं। भारतीय संस्कृति में अध्यात्म एवं भौतिकता' में समन्वय नजर आता है। भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल में मनुष्य के चार पुरूषार्थों धर्म, अर्ध, काम, मोटर्स एवं चार आश्रमों- ब्रह्मचर्य,

गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं संन्यास का उल्लेख है, जो आध्यात्मिकता एवं भौतिक पक्ष में समन्वय लाने का प्रयास है। उल्लेखनीय है कि भारतीय संस्कृति ने अनेक जातियों के श्रेष्ठ विचारों को अपने में समेट लिया है। भारतीय संस्कृति में यहां के मूल निवासियों के समन्वय की प्रक्रिया के साथ ही बाहर से आने वाले शक, हूण, यूनानी एवं कुषाण भी यहां की संस्कृति में घुल-मिल गए हैं। अरबों, तुर्कों और मुगलों के माध्यम से यहाँ इस्लामी संस्कृति का आगमन हुआ। इसके बावजूद भारतीय संस्कृति ने अपना पृथक अस्तित्व बनाए रखा और नवागत संस्कृतियों की अच्छी बातों को उदारतापूर्वक ग्रहण किया। आज हम भाषा, खानपान, पहनावे, कला, संगीत आदि हर तरह से गंगा-जमुनी तहजीब या यूँ कहें कि वैश्विक संस्कृति के नमूने हैं। कौन कहेगा कि सलवार-सूट ईरानी पहनावा है या हलवा, कबाब, पराठे, 'शुद्ध भारतीय व्यंजन नहीं हैं।

भारतीयों ने गणित व खगोल विज्ञान पर प्रामाणिक व आधारभूत खोज की। शून्य का आविष्कार, पाई का शुद्धतम मान, सौरमंडल पर सटीक विवरण आदि का आधार भारत में ही तैयार हुआ। तात्कालिक कुछ नकारात्मक घटनाओं व प्रभावों ने जो धुंध हमारी सांस्कृतिक जीवन-शैली पर आरोपित की है, उसे सावधानी पूर्वक हटाना होगा। आज आवश्यकता है कि हम अतीत की सांस्कृतिक धरोहर को सहेजें और सवारें तथा उसकी मजबूत आधारशिला पर खड़े होकर नए मूल्यों व नई संस्कृति को निर्मित एवं विकसित करें।

उचित मार्गदर्शन और प्रोत्साहन प्रतिभा को निखारता है

जब विद्यार्थी सफलता का मुकाम हासिल करना चाहता है, या अपने जीवन को सफल करने के लिए जो उड़ान भरना चाहता है। उससे पूर्व अभिभावक व शिक्षक उचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन उसके प्रतिभा को अवश्य ही निखारता है।

अभिभावक व शिक्षक छात्रों के सुनहरे भविष्य के लिए उचित मार्गदर्शन दे सकते हैं। जिससे छात्रों के शरीर के अंदर, ऊर्जा उत्साह, जोश, एवं जुनून का संचार उत्पन्न होता है। जिससे विद्यार्थी जीवन में सफलता प्राप्त होता है।

हमेशा से ही देखा गया है कि छात्रों को विषय का चुनाव सही ढंग से नहीं कर पाते। कई छात्र-छात्राओं को देखा गया है कि बिना सोचे समझे विषय का चुनाव कर लेते हैं। बहुत सारे विद्यार्थी अपने दोस्तों, रिश्तेदार, भाई बहन को देखकर विषयों का चुनाव करते हैं। फिर बाद में उनको समझ आता है कि विषय का चुनाव गलत हो गया। बहुत से छात्र अपने अभिभावक या माता-पिता के दबाव में आकर विषय का चुनाव करते हैं। जिसके फलस्वरूप छात्रों को आगे चलकर वह विषय बोझिल या उबाऊ लगने लगता है। कई छात्र-छात्राओं एक दूसरे के देखा देखी में विषयों का चुनाव करते हैं। जिस कारण उनको आगे समझ में नहीं आता या समझना मुश्किल हो जाता है।

जिस विद्यार्थी ने अपने विषय का चुनाव सोच समझ कर लिया है या उस विषय में वह ज्ञान या रूचि रखता है, तो वह विद्यार्थी हमेशा ही सफल होगा।

अभिभावक एवं शिक्षक को छात्रों एवं विद्यार्थियों को बीच-बीच में उचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन देते रहें, ताकि अभिभावक एवं शिक्षक को यह पता चलता रहे, कि विद्यार्थी लक्ष्य प्राप्त करने में सक्षम है या नहीं। अगर नहीं,

तो विद्यार्थी को उचित मार्गदर्शन करने की जरूरत होता है। ताकि उचित मार्गदर्शन से छात्र अपने जीवन में लक्ष्य की प्राप्ति कर सके।

हमारे समझ से उचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन अपने बच्चों को शुरुआती दिनों यानी 3 से 5 वर्ष के उम्र में ही शुरू करना चाहिए ताकि आगे अपने जीवन में हमेशा ही सफलता के मुकाम को हासिल कर सके।

लेकिन एक और बात यह है कि कोई जरूरी नहीं है कि 3 से 5 वर्ष के उम्र ही हो। आप जब चाहे तब से ही अपने बच्चों या छात्रों को उचित मार्गदर्शन कर सकते हैं। वहां मैं कम उम्र इसलिए कहा कि बच्चें को शुरुआत से ही उचित मार्गदर्शन देते रहे तो अपने जीवन में हर समय क्रियाशील रहेंगे।

अधिकांशतः विद्यार्थी 10वीं परीक्षा के बाद ही अपने लक्ष्य या सफलता को लेकर चिंतित रहते हैं। इस समय अभिभावक एवं शिक्षक को मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन नितांत ही आवश्यक है और समय उचित सलाह देना जरूरी होता है, क्योंकि बहुत सारे विद्यार्थी को उचित मार्गदर्शन प्राप्त न होने के बावजूद वह गलत रास्ते पर चल पड़ते हैं तथा विद्यार्थी अपने नैतिक पतन की ओर चल देते हैं। वे अपने जीवन जीने के लिए गलत तरीकों को अपनाते चले जाते हैं। इससे अपना जीवन बर्बाद कर लेते हैं। इसलिए ऐसे समय में हर अभिभावक एवं शिक्षक को बच्चों एवं छात्रों को उचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन देना अति आवश्यक है।

उचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन प्रतिभा को निखारता है। हमें अपने बच्चे एवं विद्यार्थी को बचपन से ही उचित मार्गदर्शन देना चाहिए। ताकि भविष्य में अपने जीवन को उस ऊंचाई पर ले जा सके। जहां से पीछे दिखने पर सभी छोटे या बौने रूपी दिखें। शिक्षक का कार्य केवल यह नहीं है कि शिक्षा देना, अपितु विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास हो। अगर विद्यार्थी का सर्वांगीण विकास होगा। तब विद्यार्थी का जीवन सफल होता है। उचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन प्रतिभा को निखारता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि उचित मार्गदर्शन एवं प्रोत्साहन प्रतिभा को निखारता है। यह निश्चित तौर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

अपेक्षा से उत्पन्न होता है दुःख

व्यक्ति की यह सामान्य प्रवृत्ति है कि वह जब किसी के लिए कोई कार्य या भलाई करता है तो उससे अपेक्षा करने लगता है कि बदले में वह भी उसके लिए कुछ करे और जब उसकी यह अपेक्षा पूरी नहीं होती है तो वह दुखी होने लगता है। किसी ने अपने पुत्र के लिए अपना जीवन दाव पर लगा दिया लेकिन बुढ़ापे में वह उसकी लाठी नहीं बना। पत्नी के लिए सुख-सुविधा के तमाम साधन जुटाए, लेकिन उसने साथ नहीं दिया। मित्रों के लिए बहुत कुछ किया लेकिन जब जरूरत पड़ी तो सबने दगा दे दिया। इस तरह की तमाम बातें व्यक्ति के साथ होती रहती हैं और वह दूसरे लोगों और नाते.रिश्तेदारों से अपनी अपेक्षाएं पूरी नहीं होने पर दुखी होता रहता है लेकिन वह पंचतंत्र की कहानियों. पौराणिक ग्रंथों और कहावतों के रूप में पूर्वजों की ज्ञान की थाती का अवलोकन करे तो उसे जीवन का मर्म समझाने और दिशा देने वाले ऐसे बहुत से अमूल्य नीति वचन और सूत्रवाक्य मिल सकते हैं जिनसे उसका मार्गदर्शन हो सकता है।

एक कहावत है ' नेकी कर दरिया में डाल यानी भलाई करो और इस बात की बिल्कुल अपेक्षा मत करो कि सामने वाला उसके बदले में तुम्हें भी कुछ देगा। इस बात को जिस भी व्यक्ति ने अपने जीवन में उतार लिया. तय मानिए कि वह संसार का सबसे सुखी व्यक्ति है। हालांकि यह आसान नहीं है कि किसी की मदद करो. सेवा करो और वह दगा दे जाए तो भी उसे विराट् मन से क्षमा कर दो लेकिन यह लाख टके की बात है कि मदद करने के बाद उसे भूलने की आदत जितनी विकसित होती जाएगी. मनुष्य उतना ही सुखी रहेगा।

कल्पना कीजिए कि यदि अनन्य रामभक्त हनुमान को यह शिकायत हो जाती कि उन्होंने भगवान् राम के लिए कितना कुछ किया लेकिन उन्हें क्या मिला । पर हनुमान किसी भी तरह की अपेक्षा से रहित होकर बस अपना कर्तव्य करते रहे और प्रभुभक्ति में लीन रहे।

व्यक्ति को कोशिश करनी चाहिए कि पुष्प की तरह सुगंध बांटना ही उसका धर्म बने और इसके बदले उसके मन में कोई अपेक्षा नहीं हो। इस जगत में यदि आपने'नेकी कर दरिया में डाल' का सही मर्म समझ लिया तो संसाररूपी भवसागर को पार करने में बहुत आसानी होगी।

आत्मा का अस्तित्व एवं रहस्य

हमारा शरीर पंच तत्वों यानी जल, आकाश, वायु, अग्नि और पृथ्वी से मिलकर बना है। जब किसी की मृत्यु होती है, तो शरीर इन्हीं पंचतत्वों में विलीन हो जाता है और आत्मा अदृश्य रूप में मौजूद रहती है। यदि मर चुके व्यक्ति ने जिंदगी भर अच्छे कर्म किए हैं, तो वैदिक ग्रंथों के अनुसार उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है। तब आत्मा जन्म मरण के चक्र से मुक्त होकर आत्मा परमात्मा में विलीन हो जाती है।

श्रीमद्भागवत् गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है कि 'आत्मा कभी नहीं मरती'। आत्मा अमर है, आत्मा ना जन्म लेती है ना मरती है। आत्मा एक ऐसी ऊर्जा है, जो एक शरीर से दूसरे शरीर में प्रवेश करती है और समय आने पर उस शरीर को छोड़कर चली जाती है और तब तक किसी नए शरीर में प्रवेश नहीं करती जब तक ईश्वरीय आदेश ना हो।

आत्मा का कोई धर्म नहीं, ना ही वह पुरुष है और न ही वह स्त्री, वह तो परमात्मा का अंश मात्र है। परमात्मा न हिंदू है, ना मुस्लिम है, ना सिख, ना ईसाई है ना ही यहुदी और ना ही बौद्ध, परमात्मा से सारा संसार जन्म लेता है। आत्मा एक ऐसी जीवन-शक्ति है, जिसके कारण हमारा शरीर जिंदा रहता है। यह एक दैवीय शक्ति है, यह कोई व्यक्ति नहीं है। इस जीवन-शक्ति के बिना हमारे प्राण छूट जाते हैं और हम मिट्टी में फिर मिल जाते हैं। जब शरीर से आत्मा या जीवन-शक्ति निकलती है, तो शरीर मर जाता है और वहीं लौट जाता है, जहां से वह निकला था यानी पृथ्वी के पंचतत्वों में। उसी तरह जीवन-शक्ति भी वहीं लौट जाती है, जहां से वह आई थी यानी परमात्मा के पास।

महाभारत युद्ध के पहले जब अर्जुन हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण से कहते हैं कि, 'मैं अपने सामने खड़े पितामह, गुरु, चाचा, ताऊ, भाई को नहीं मारूंगा। तब अर्जुन को यूं शोक करते देख कर श्रीकृष्ण ने समझाया कि इस संसार में

कोई शोक करने योग्य नहीं है, क्योंकि यहां कोई मरता ही नहीं है। सभी आत्माएं हैं और आत्मा कभी नहीं मरती।

जब अर्जुन ने श्रीकृष्ण से फिर पूछा, 'वह कौन है जो अमर आत्मा और नश्वर शरीर का बार-बार संयोग करवाता है?' तब श्रीकृष्ण बोले, 'एक और शरीर है, जो आत्मा के लिए भीतर का वस्त्र है। वह है सूक्ष्म शरीर। उसे अंत:वस्त्र भी कह सकते हैं। वह शरीर एक प्रकार के विद्युत कणों से ही निर्मित है। वह मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार से बना है। इसे 'कारण शरीर' या जीवात्माभी कहते हैं। यह शरीर पिछले जन्म से साथ आता है। स्थूल शरीर मिलता है माता-पिता से, सूक्ष्म शरीर मिलता है पूर्वजन्म से, लेकिन आत्मा तो सदा शाश्वत ही है। सूक्ष्म शरीर न हो, तो स्थूल शरीर ग्रहण नहीं किया जा सकता। सूक्ष्म शरीर छूटने का अर्थ है 'मोक्ष'। सारी साधनाएं इस सूक्ष्म शरीर को छोड़ने के लिए, इससे मुक्ति के लिए ही की जाती हैं।'

आधुनिक समय में ऐसे कई प्रयोग किए गए, जिनसे यह पुष्टि हो सके कि आत्मा का अस्तित्व सचमुच है। ऐसा ही एक प्रयोग किया था फ्रांस के डॉक्टर हेनरी बारादुक ने उन्होंने एक विशेष कैमरा बनवाया और मृत्यु के बाद निकलने वाली आत्मा की फोटो लेने की तैयारी की। संयोग से एक बार उनका लड़का बहुत बीमार हुआ। उसके बचने के कोई लक्षण दिखाई न दिए तो इस वैज्ञानिक ने परीक्षण करने का मन बनाया। वैज्ञानिक ने इससे पहले अपनी पत्नी पर यह प्रयोग आजमाया था। लेकिन उस समय सिर्फ प्रकाश किरणों की ही पुष्टि वह कर पाए थे।

कैलीफोर्निया के वैज्ञानिक ने तो इस तरह का एक सार्वजनिक प्रदर्शन भी किया, जिसमें उन्होंने अखबार के रिपोर्टर को बुलाया। उन्होंने वहां साधारण कैमरों से कुछ रहस्यमय किरणों के चित्र लिए थे। इस प्रयोग के बाद अमूमन वैज्ञानिकों ने यह माना कि मनुष्य शरीर में कोई चैतन्य तत्व, कुछ रहस्यमय किरणें, कोई विलक्षण तत्व और प्रकाश है अवश्य पर उसका रहस्य वे नहीं जान पाए।

आलस्य एक अभिशाप

किसी कार्य को करने की आवश्यकता होने पर तथा उस कार्य को करने में सक्षम होने के बावजूद भी यदि कोई इन्सान उस कार्य को करने के स्थान पर अलग अलग प्रकार के बहाने बना कर उस कार्य को टालना चाहता है। तो वह उसका आलस्य होता है।

आलस्य इंसान के जीवन का ऐसा विकार है। जिसे इंसान जानते हुए भी कि उसके सभी कार्यों के सर्वनाश का कारण उसका आलस्य है।फिर भी अपने आलस्य का त्याग नहीं करता। आलस्य करने से सबसे अधिक नुकसान इंसान का अपना खुद का होता है। क्योंकि समय किसी का इंतजार नहीं करता है। वही आलस्य से समय व्यतीत होने का ही नुकसान होता है।

कभी-कभी आलस्य इंसान के जीवन का कलंक बनकर रह जाता है। कोई ऐसा कार्य जिससे उसे जीवन में भरपूर सुख एंव वैभव प्राप्त हो सकता था। उसका सम्पूर्ण जीवन खुशियों से भर जाता है। वह उसके आलसीपन की वजह से होने वाली देरी के कारण सम्पन्न ना हो सका हो।वह दुःख आलसी इंसान को जीवन भर पछताने के लिए छोड़ देता है। इंसान के जीवन में आलस्य से होने वाले नुकसानों में सबसे पहला नुकसान उसके शिक्षा ग्रहण के समय किया गया आलस्य होता है। क्योंकि शिक्षा के माध्यम से ही सम्पूर्ण जीवन की प्रगति का आधार होता है। इंसान जितना अधिक शिक्षित होता है। वह जीवन में उतनी ही बुलंदियां प्राप्त कर सकता है। यदि वह अपने आलस्य के कारण शिक्षा का अनादर करता है, तो उसके जीवन में प्रगति के सभी रास्ते बंद होते जाते हैं। इससे उसका जीवन अभाव पूर्ण एंव कठनाइयों से व्यतीत होता है।

कार्य सेवा अथवा व्यापर करते समय आलस्य इन्सान को पतन की ओर ले जाता है। क्योंकि व्यापर में ग्राहक किसी व्यापारी का इंतजार नहीं करता व्यापारी को ग्राहक का इंतजार करना पड़ता है। आलस्य में व्यापर चौपट होना अथवा उसमे हानि होना तय होता है। आलसी को कार्य सेवा से कार्य

प्रबन्धक या मालिक निकाल बाहर करते हैं। क्योंकि पगार के बदले में उन्हें अपना कार्य सम्पन्न चाहिए किसी के आलस्य से उनका कोई लेना देना नहीं होता।आलस्य किसी भी प्रकार का हो वह सिर्फ हानिकारक ही होता है। परिवार के कार्यों एंव सदस्यों के प्रति आलस्य के कारण उदासीनता से परिवार के सदस्य धीरे धीरे साथ छोड़ने लगते हैं। इंसान के मित्र सम्बन्धी एंव रिश्तेदार भी मेल मिलाप तथा उनके कार्यों के प्रति जागरूक होने पर ही सम्बन्ध रखते हैं। रिश्तों में आलस्य खटास उत्पन्न करता है तथा रिश्ते टूटने की कगार पर पहुंच जाते हैं। पड़ोसी व समाज के प्रति उदासीनता से सम्बन्ध समाप्त होना स्वभाविक प्रकिर्या है क्योंकि किसी भी प्रकार के सम्बन्ध को बनाए रखने के लिए उसमे गर्मजोशी रखना आवश्यक है। स्वास्थ्य के प्रति आलस्य से बीमारियां स्वयं आकर शरीर को पकड़ लेती हैं। जो जीवन भर साथ निभाती हैं। वही मृत्यु होने तक पीछा नहीं छोडती,सिर्फ जागरूक इन्सान ही स्वास्थ्य पूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं। क्योंकि आलसी इंसानों का जीवन दवाइयों के सहारे व्यतीत होता है।

इंसान के आलस्य का सबसे बड़ा कारण उसके मन की कमजोरी है। जो अपने भविष्य को अनदेखा करके अपने आप से शत्रुता करता हो, वह संसार का सबसे बड़ा मूर्ख होता है। इंसान कार्य करने से नहीं थकता बल्कि मन से थकता है।मन का थका संसार का सबसे बड़ा आलसी होता है। जो इन्सान अपने मन पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता है। वह जीवन की मुश्किलों से कैसे लड सकता है। अपने मन पर अधिकार करके दृढ इच्छा शक्ति से संसार पर विजय प्राप्त की जा सकती है। जिसे संसार के अनेकों इंसानों ने प्रमाणित किया है। समय की गति बहुत तीव्र है। जो समय का सम्मान नहीं करता है। वह अभाव पूर्ण एंव संघर्ष पूर्ण जीवन व्यतीत करता है। समय का सम्मान करने से समय इंसान का सम्मान खंडित नहीं होने देने के साथ ही उसे प्रगति प्रदान करता है।

पतंग से सीखें अनुशासन

आकाश में तैरती रंग-बिरंगी पतंगें भला किसे अच्छी नहीं लगती? एक डोर से बँधी हवा में हिचकोले खाती हुई पतंग कई अर्थों में हमें अनुशासन सिखाती हैं, जरा उसकी हरकतों पर ध्यान तो दीजिए, फिर समझ जाएँगे कि मात्र एक डोर से वह किस तरह से हमें अनुशासन सिखाती है।

अनुशासन कई लोगों को एक बंधन लग सकता है। निश्चित ही एकबारगी यह सभी को बंधन ही लगता है, पर सच यह है कि यह अपने आप में एक मुक्त व्यवस्था है, जो जीवन को सुचारु रूप से चलाने के लिए अतिआवश्यक है। आप याद करें, बरसों बाद जब माँ पुत्र से मिलती है, तब उसे वह कसकर अपनी बाहों में भींच लेती है। क्या थोड़े ही पलों का वह बंधन सचमुच बंधन है? क्या आप बार-बार इस बंधन में नहीं बँधना चाहेंगे? यहाँ यह कहा जा सकता है कि बंधन में भी सुख है। यही है अनुशासन।

अनुशासन को यदि दूसरे ढंग से समझना हो, तो हमारे सामने पतंग का उदाहरण है। पतंग काफी ऊपर होती है, उसे डोर ही होती है, जो संभालती है। बच्चा यदि पिता से कहे कि यह पतंग तो डोर से बंधी हुई है, तब यह कैसे मुक्त आकाश में विचर सकती है? तब यदि पिता उस डोर को ही काट दें, तो बच्चा कुछ देर बाद पतंग को जमीन पर पाता है। बच्चा जिस डोर को पतंग के लिए बंधन समझ रहा था, वह बंधन ही था, जो पतंग को ऊपर उड़ा रहा था। वही बंधन ही है अनुशासन। अनुशासन ही होते हैं, जिससे मानव आधार प्राप्त करता है।

कभी पतंग को आपने आकाश में मुक्त रूप से उड़ान भरते देखा है! क्या कभी सोचा है कि इससे जीवन जीने की कला सीखी जा सकती है। गुजरात और राजस्थान में मकर संक्रांति के अवसर पर पतंग उड़ाने की परंपरा है। इस दिन लोग पूरे दिन अपनी छत पर रहकर पतंग उड़ाते हैं। क्या बच्चे, क्या बूढ़े, क्या महिलाएँ, क्या युवतियाँ सभी जोश में होते हैं, फिर युवाओं की बात ही क्या? पतंग का यह त्योहार अपनी संस्कृति की विशेषता ही नहीं, परंतु आदर्श

व्यक्तित्व का संदेश भी देता है। आइए जानें पतंग से जीवन जीने की कला किस तरह सीखी जा सकती है-

पतंग का आशय है अपार संतुलन, नियमबध्द नियंत्रण, सफल होने का आक्रामक जोश और परिस्थितियों के अनुकूल होने का अद्भुत समन्वय। वास्तव में देखा जाए तो तीव्र स्पर्धा के इस युग में पतंग जैसा व्यक्तित्व उपयोगी बन सकता है। पतंग का ही दूसरा नाम है, मुक्त आकाश में विचरने की मानव की सुसुप्त इच्छाओं का प्रतीक। परंतु पतंग आक्रामक एवं जोशीले व्यक्तित्व की भी प्रतीक है। पतंग का कन्ना संतुलन की कला सिखाते हैं। कन्ना बाँधने में थोड़ी-सी भी लापरवाही होने पर पतंग यहाँ-वहाँ डोलती है। याने सही संतुलन नहीं रह पाता। इसी तरह हमारे व्यक्तित्व में भी संतुलन न होने पर जीवन गोते खाने लगता है। हमारे व्यक्तित्व में भी संतुलन होना आवश्यक है। आज के इस तेजी से बदलते आधुनिक परिवेश में प्रगति करनी हो, तो काम के प्रति समर्पण भावना आवश्यक है। इसके साथ ही परिवार के प्रति अपनी जवाबदारी भी निभाना भी अनिवार्य है। इन परिस्थितियों में नौकरी-व्यवसाय और पारिवारिक जीवन के बीच संतुलन रखना अतिआवश्यक हो जाता है, इसमें हुई थोड़ी-सी लापरवाही जिंदगी की पतंग को असंतुलित कर देती है।

पतंग से सीखने लायक दूसरा गुण है नियंत्रण। खुले आकाश में उड़ने वाली पतंग को देखकर लगता है कि वह अपने-आप ही उड़ रही है। लेकिन उसका नियंत्रण डोर के माध्यम से उड़ाने वाले के हाथ में होता है। डोर का नियंत्रण ही पतंग को भटकने से रोकता है। हमारे व्यक्तित्व के लिए भी एक ऐसी ही लगाम की आवश्यकता है। निश्चित लक्ष्य से दूर ले जाने वाले अनेक प्रलोभनरूपी व्यवधान हमारे सामने आते हैं। इस समय स्वेच्छिक नियंत्रण और अनुशासन ही हमारी पतंग को निरंकुश बनने से रोक सकता है। पतंग की उड़ान भी तभी सफल होती है, जब प्रतिस्पर्धा में दूसरी पतंग के साथ उसके पेंच लड़ाए जाते हैं। पतंग के पेंच में हार-जीत की जो भावना देखने में आती है, वह शायद ही कहीं और देखने को मिले। पतंग किसी की भी कटे, खुशी दोनों को ही होती है। जिसकी पतंग कटती है, वह भी अपना ंगम भुलकर दूसरी पतंग का कन्ना बाँधने में लग जाता है। यही व्यावहारिकता जीवन में भी

होनी चाहिए। अपना गम भुलकर दूसरों की खुशियों में शामिल होना और एक नए संकल्प के साथ जीवन की राहों पर चल निकलना ही इंसानियत है।

पतंग का आकार भी उसे एक अलग ही महत्व देता है। हवा को तिरछा काटने वाली पतंग हवा के रुख के अनुसार अपने आपको संभालती है। आकाश में अपनी उड़ान को कायम रखने के लिए सतत प्रयत्नशील रहने वाली पतंग हवा की गति के साथ मुड़ने में जरा भी देर नहीं करती। हवा की दिशा बदलते ही वह भी अपनी दिशा तुरंत बदल देती है। इसी तरह मनुष्य को परिस्थितियों के अनुसार ढलना आना चाहिए। जो अपने आप को हालात के अनुसार नहीं ढाल पाते, वे 'आऊट डेटेड' बन जाते हैं और हमेशा गतिशील रहने वाले 'एवरग्रीन' होते हैं। यह सीख हमें पतंग से ही मिलती है।

पतंग उड़ाने में सिध्दहस्त व्यक्ति यदि जीवन को भी उसी अंदाज में ले, तो वह भी जीवन की राहों में सदैव अग्रसर होता जाएगा। बस थोड़ा-सा सँभलने की बात है, जीवन की डोर यदि थोड़ी कमजोर हुई, तो जीवन ही जोखिम में पड़ जाता है। इसीलिए पतंग उड़ाने वाले हमेशा खराब माँजे को अलग कर देते हैं, जिसका उपयोग कन्ना बाँधने में किया जाता है। उस धागे से पेंच नहीं लड़ाया जा सकता। ठीक उसी तरह जीवन में भी उसी पर विश्वास किया जा सकता है, जो सबल हो, जिस पर जीवन के अनुभवों का माँजा लगा हो, वही व्यक्ति हमारे काम आ सकता है।

धागों में कहीं भी अवरोध या गठान का होना भी पतंगबाजों को शोभा नहीं देता। क्योंकि यदि पेंच लड़ाते समय यदि प्रतिद्वंद्वी का धागा उस गठान के पास आकर अटक गया, तो समझो कट गई पतंग। क्योंकि पतंग का धागा वहीं रगड़ खाएगा और डोर का काट देगा। जीवन भी यही कहता है। जीवन में मोहरूपी अवरोध आते ही रहते हैं, परंतु सही इंसान इस मोह के पडाव पर नहीं ठहरता, वह सदैव मंजिल की ओर ही बढ़ता रहता है। 'चलना जीवन की कहानी, रुकना मौत की निशानी' यही मूलवाक्य होना चाहिए। पचीस या पचास पैसे से शुरू होकर पतंग हजारों रुपयों में भी मिलती है। इसी तरह जीवन के अनुभव भी हमें कहीं भी किसी भी रूप में मिल सकते हैं। छोटे से बच्चे भी प्रेरणा के स्रोत बन सकते हैं, तो झुर्रीदार चेहरा भी हमें अनुभवों के मोती

बाँटता मिलेगा। अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम किस तरह से अनुभवों की मोतियों को समेटते हैं।

एक अकेले में भी है दम

इस धरती पर साँस लेने वाले हर आदमी ने फुरसत के क्षणों में एक बार तो यह अवश्य सोचा होगा कि आखिर इस धरती पर उसका क्या महत्व है? क्या उसके होने न होने से इस संसार में कोई अंतर आएगा? आखिर इस धरती पर वह क्यों आया? किसलिए आया? किसके लिए आया? ये सभी क्या, क्यों, कैसे, किसलिए के प्रश्जाल में एक बार तो व्यक्ति अवश्य उलझा होगा। हो सकता है कभी ये प्रश् उसके मन में निराशा लाते हों और उसमें जीवन के प्रति हताशा के भाव भरते हों, किंतु ये भी हो सकता है कि ये ही प्रश् उसके मन में कभी आशा का संचार भी करते हों। यदि सचमुच आशा का स्रोत फूटता है, तो यह दार्शनिकता व्यक्ति के जीवित होने का संकेत है, उसके जीवन जीने का संकेत है और यदि इसके विपरित केवल निराशा ही घेरे रहती है, तो यह मात्र उसके जिंदा रहने का ही संकेत है, जो कि पूर्ण रूप से गलत है। इसलिए अपने आप से वादा करें कि आप अपने आपको कभी अकेला महसूस कर अपने महत्व को भूलाएँगे नहीं। यह सच है कि एक अकेले व्यक्ति का प्रत्यक्ष रूप से संसार में कोई महत्व नहीं होता, किंतु वह अप्रत्यक्ष रूप से संसार का एक हिस्सा है। संसार के लिए भले ही उसका महत्व न हो, किंतु जिन लोगों से वह जुड़ा हुआ है, उनके लिए तो उसका विशेष महत्व है।

एकांत में अपने भीतर सकारात्मक विचारों को पैदा करना ही एक बड़ी उपलब्धि है। याद रखें जो व्यक्ति ये समझता है कि मैं खूब महत्व का हूँ, वही व्यक्ति दूसरों के लिए महत्व का बन सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि आप अपने आपके लिए कितने महत्व के हैं? प्रत्येक व्यक्ति को यह सोचना चाहिए कि उसके भीतर ऐसा कुछ है, जिसके दम पर वह इस दुनिया में बहुत कुछ कर सकता है। यदि आप स्वयं ही अपने महत्व को नहीं समझेंगे, तो कोई दूसरा आपके महत्व को कैसे जानेगा और क्यों कर जानेगा?

इस दुनिया को महान व्यक्तियों की जरूरत होती है, लीडरों की जरूरत होती है। उसके पीछे चलने वालों की कमी नहीं है। इस दुनिया में ऐसे बहुत से

लोग मिल जाएँगे, जिन्होंने अपना काम अकेले ही शुरू किया था, तब उन्होंने ये नहीं सोचा था कि उन्हें महान व्यक्ति का दर्जा मिल जाएगा। बस उन्हें अपने आप पर विश्वास था कि वे कुछ ऐसा कर पाएँगे, जिसकी इस दुनिया को जरूरत है और उनका यह विश्वास जीत गया। इस जीते हुए विश्वास ने ही उन्हें महानता दिलवाई। इतिहास गवाह है कि विश्व के जितने भी महान पुरूष हुए हैं, वे सभी शुरूआत में बहुत ही साधारण थे। ये सभी अपने कार्यो से एवं महेनत से महान बने हैं।

कोई रातोंरात कुछ नहीं मिल जाता। भाग्य के पौधे को अपनी मेहनत के पसीने से सींचा जाता है, तभी उस पर सफलता का फूल खिलता है। आप अपने आपको बदल दें, फिर पूरी दुनिया अपने आप ही बदल जाएगी। प्राय: लोगों की मानसिकता यह होती है कि वे सोचते हैं कि कोई नई शुरूआत करे, तो हम उससे जुड़ जाए, किंतु वे ऐसा नहीं सोचते कि वे स्वयं शुरूआत करें और लोग उनसे जुड जाए। ऐसा विचार करने वाले बहुत कम लोग होते हैं। यह मनुष्य को खुद को तय करना होता है कि उसे क्या करना है, लोगों से जुड़ना है या लोगों को अपने साथ जोड़ना है। किसी का अनुसरण करते हुए आगे बढ़ना है या खुद ऐसी राहों पर आगे बढ़ना है, जहाँ लोग उसका अनुसरण करे। ऐसा फैसला जब व्यक्ति कर लेता है, तभी उसके महान और साधारण होने की शुरूआत हो जाती है।

याद रखो, जिस पेड़ पर लोग पत्थर मारते हैं, वे केवल कुछ फल ही प्राप्त कर पाते हैं, पूरा पेड़ उनका कभी नहीं हो सकता। पर जो दृढ़ निश्चयी औरर् कत्तव्यपरायण होते हैं, वे पूरे पेड़ के हकदार होते हैं, पर यह अधिकार उन्हें तभी मिलेगा, जब वे पेड़ की तरह सोचें। पेड़ कभी भी अपने लिए नहीं सोचता, वह महत्वपूर्ण है, जब तक वह अपने को महत्व देता रहेगा, तब तक वह अपने परिवार, समाज, राज्य, देश और विश्व के लिए महत्वपूर्ण होगा। एक दियासलाई से कई दीप जलाए जा सकते हैं। आप ऐसा ही एक दीप बनें, जिससे अज्ञानता का अंधकार दूर हो, परिश्रम की उजास सामने आए। इस संबंध में कविवर गुरुदेव रवींद्रनाथ ठाकुर ने कहा है 'जदि तोमार डाक सुने केऊ न आसबे, तो एकला चलो' याने यदि तुम्हारी पुकार सुनकर कोई तुम्हारे

पास न आए,तो अकेले ही चलने का संकल्प लो, अकेले ही चलते चलो। सही है भीड़ उन्हीं के पीछे होती है, जिनका सफर अकेले ही शुरू हुआ था।

सकारात्मक या नकारात्मक

हमारी जिंदगी में नजरिया (attitude) बहुत ज्यादा मायने रखता है। हमारा नजरिया बचपन में ही बन जाता है। हम कैसे विचार करते हैं ये हमारे नजरिए पर निर्भर करता है। अगर हमारी सोच अक्सर सकारात्मक होती है तो हमारा नजरिया सकारात्मक होता है। अन्यथा हमारा नजरिया नकारात्मक होता है। कुछ लोग जरा सी परेशानी आयी और घबराने लगते हैं। उन्हें हमेशा लगता है कि यह मुसीबत हमारा पीछा नहीं छोड़ेगी। एक के बाद दूसरी मुसीबत खड़ी हो जाएगी। इनका कोई अंत नहीं है। यह सोचकर वे ज्यादा परेशान हो जाते हैं। उनका नजरिया ही नकारात्मक बन जाता है। वे हर सफल व्यक्ति में केवल बुराइयाँ ही तलाशते हैं। उन्हें लोगों की अच्छाइयां कभी दिखाई नहीं देती हैं। वे लोगों में केवल नकारात्मक विचारों को फैलाते हैं। न कभी खुश रहते हैं और ना किसी को रहने देते हैं। हमेशा नकारात्मक बातों को करते रहते हैं। जीवनभर अपना नजरिया बदल नहीं पाते हैं।

इस वजह से जीवन में सदा असफल रहते हैं। अपनी असफलता का कारण दूसरों को मानते हैं। वे यह समझ नहीं पाते हैं कि उनकी असफलता की असली वजह उनका नकारात्मक नजरिया है। वे अपने आपमें कभी सुधार नहीं करते हैं। सदा दुखी और असन्तुष्ट रहते हैं। इन लोगों से मिलकर लोग अप्रसन्न हो जाते हैं। ये लोग दूसरों की परवाह नहीं करते हैं।

दूसरी तरफ सकारात्मक नजरिया वाले लोग आत्मविश्वास से भरे रहते हैं। वे जो काम करते हैं उसमें उन्हें सफलता मिलती है। अगर कभी असफल भी होते हैं तो उसका कारण तलाशते हैं और उस कमी को दूर करते हैं। वे दूसरों पर दोषारोपण नहीं करते हैं। ऐसे लोगों से मिलकर लोग खुश हो जाते हैं क्योंकि वे अच्छे विचार फैलाते हैं। ऐसे लोग बुराई में अच्छाई तलाशते हैं। उनका यह नजरिया ही उन्हें सफलता के करीब ले जाता है। वे दूसरों की अच्छाइयों की तारीफ करते हैं। ऐसे लोगों के बहुत मित्र बन जाते हैं। वे दूसरों

में आशा की किरण जगाते हैं तथा लोगों को सदा प्रोत्साहित करते रहते हैं। स्वयं भी सकारात्मक रहते हैं और सकारात्मक ऊर्जा लोगों में फैलाते हैं।

जीवन में सकारात्मक औऱ नकारात्मक विचारों का अपना ही महत्व है। सकारात्मक सोच आगे बढ़ने में सहायता करती है तो नकारात्मक सोच किसी काम में आनेवाली चुनोतियों का एहसास कराती है । हमें दोनों का उचित संतुलन बनाकर अपना काम करना चाहिए। जैसे–सकारात्मक सोच वालों ने हवाई जहाज बनाया लेकिन नकारात्मक सोच वालों ने पैराशूट बनाया। हवाई जहाज बनाने वाले ने सोचा लोग हवा में उड़ सकेंगे तो नकारात्मक विचारों वालों ने सोचा अगर हवाई जहाज गिर गया तो लोग कैसे बचेंगे इसलिए उन्होंने पैराशूट बनाया जिससे लोग बच सकें।

मन को समझो तो जाने

आखिर हमारा मन भीतर ही भीतर क्या क्या समेटे रहता है.. दो अक्षर के इस मन में दुनिया जहान की सारी बातें होती हैं। गागर में सागर समाने की बात मन के मामले में सौ प्रतिशत सच साबित होती है। मोर जब खुश होता है, तो पंख फैलाकर अपनी खुशी जाहिर करता है और दूसरे ही क्षण स्वयं के पैर देखकर दुखी हो जाता है। मानव मन भी एक पल में खुश हो नाचना चाहता है और दूसरे ही पल दुखी हो उठता है।

विचारों के समंदर में डुबकी लगाता है। प्रत्येक लहर के साथ जीवन के अनुभव लेने को तैयार हो जाता है। लेकिन कुछ मामलों में बड़े नखरे करता है। उसे मनाना हमारा काम है और वह मान भी जाता है, बिल्कुल उस कोमल पंखुड़ी की भांति, जिसने अभी-अभी बारिश की बूंदों का स्पर्श किया हो। प्रत्येक व्यक्ति की सोच का अपना दायरा होता है। मन, नकारात्मक तथा सकारात्मक दोनों ही तरह से विचार करता है। इसको समझ पाना बड़ा ही कठिन है।

हम जिंदगी भर इसके ताने-बाने में उलझे ही रहते है। ऋषि-महर्षि से लेकर वैज्ञानिक और दर्शनशास्त्रियों तक ने इस पर टीका-टिप्पणी की, फिर भी मन को समझ नहीं पाए हैं। रेत के ढेर की भांति मन काम करता है.... कभी तो रुकना चाहता है, कभी नदी के जल की भांति बहना चाहता है। रुकना मन की नियति नहीं है, वह तो हर क्षण चलना चाहता है, उथल-पुथल करता है। ठीक उस जिद्दी बच्चे की तरह, जिसे जोर से डांट लगाने पर वह थोड़ी देर तो चुप हो जाता है, लेकिन फिर अपनी बात मनवाने के लिए जिद करने लगता है।

हां, मन भी तो यही करता है। हम लाख समझाएं, फिर भी नहीं मानता...। आखिर हारकर हम वही करते हैं, जो हमारा मन चाहता है। कर्म करते हैं, क्योंकि हम मन से असीम प्रेम करते है। मन प्रेम के मामले में बड़े असमंजस में डालता है। कभी तो इसे एक पल में कोई अच्छा लगने लगता है.प्यारा लगने लगता है, लेकिन यह क्या उस प्रिय व्यक्ति ने समय पर फोन

नहीं किया तो मन बड़े -बड़े प्रश्न कई संदेह पैदा कर देता है। प्रेम के रास्ते में ब्रेक लगाता है, फिर बात की गहराई को खत्म होते देर नहीं लगती। मन बीते लम्हों को यादगार बनाना चाहता है, इसीलिए तो कल्पना से खुश हो हम दिन, महीने, और साल गुजार देते है।

इसी ऊहापोह में मन फिर चंचल हो जाता है..। वह अपना काम करने लगता है। मन यथार्थ को पहचानता है। इस कड़वे सच के साथ वह स्वप्नलोक की सैर करना नहीं भूलता। शायद यही मन की खुराक है, जिससे वह खुद तंदुरस्त रखता है। बुरे समय में मन ही तो आशा के बीज बोता है...। कहता है, हिम्मत न हार, अच्छा समय अभी आने वाला है। दिमाग कह उठता है - मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।

इंसान की वैल्यू

हम अक्सर सुनते हैं कि इंसान अमूल्य है, मतलब इंसान की वैल्यू को पैसों में नहीं मापा जा सकता है, मतलब इंसान अरबों-खरबों रुपयों से भी ज्यादा कीमती है। लेकिन सब झूठ बोलते हैं। इंसान कोई अमूल्य नहीं होता है। इंसान की कोई वैल्यू ही नहीं होती है, इसका मतलब है प्रत्येक इंसान की वैल्यू केवल जीरो होती है। अब आप मुझसे पूछेगे कि एक बेरोजगार युवक और एक सरकारी नौकरी करने वाले व्यक्ति, क्या दोनों की वैल्यू समान है? और मेरा उत्तर होगा– हाँ भाई दोनों की वैल्यू जीरो ही है। आप मेरा उत्तर सुनकर चिढ़ जायेगें और मुझे भला-बुरा कहने लगेगें बिना ये सोचे कि मैंने क्यों दुनिया के प्रत्येक इंसान की वैल्यू जीरो बतायी है।

“इंसान की वैल्यू केवल उसके द्वारा किये गए कार्य पर निर्भर करती है, मतलब एक इंसान राष्ट्रपति है तो उसकी वैल्यू सर्वाधिक होगी या एक इंसान इंजीनियर है तो उसकी वैल्यू अधिक होगी, मेरा कहने का मतलब यह है कि इंसान की वैल्यू काम पर निर्भर करती है। अगर काम नहीं तो इंसान की वैल्यू भी नहीं होती है। अगर देखा जाये तो ये जो वैल्यू होती है वो सिर्फ आपके द्वारा किए गए काम की है, मतलब पहले भी आपकी वैल्यू जीरो थी और आज भी आपकी वैल्यू जीरो है।”

“मान लो एक युवक की नौकरी लग जाती है तो सभी उसे पूछने लगते हैं पहले जो इंसान मजाक उड़ाते थे वे आज आपकी तारीफ करने लगते हैं, इससे इंसान को लगता है कि उसकी वैल्यू बढ़ गयी है, इसी से ये भ्रम उत्पन्न होता है कि हमारी वैल्यू बढ़ गई है जबकि ये वैल्यू सिर्फ आपके काम की है, आपकी नहीं। आपकी वैल्यू पहले भी जीरो थी अब भी जीरो ही है।”

प्रवचन से व्यक्तित्व का विकास

किसी भी काम की शुरुआत आपके प्रभाव से ही होती है, किसी भी काम की सफलता भी बहुत कुछ आपके प्रस्तुतीकरण पर ही निर्भर करती है. अतः जरूरी है की आप अपने व्यक्तित्त्व को संवारें जो की आपके साथ आपके द्वारा किये जाने वाले काम को भी प्रभावशाली बनाये।

कुछ लोग कहते हैं की हम उस जैसे नहीं बन सकते जो सफल है, यहाँ ये स्पष्ट कर देना जरूरी है की हमारा उद्देश्य आपको किसी के जैसा बनाना कतई नहीं है, प्रकृति ने हर व्यक्ति के अंदर कुछ विशेष गुण दिए हैं आवश्यकता उनकी पहचान करने और उनका बेहतर उपयोग करने की क्षमता की है. जब हम महिलाओं के बीच काम कर रहे हों और जन समुदाय को बेहतर सोच और समाज के निर्माण के लिए प्रेरित कर रहे हों तो हमारा अपना व्यक्तित्व इस कार्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है. जैसे की हम देखते हैं की कोई मूर्तिकार एक मूर्ती बनाते समय किसी बेडौल पत्थर को लेता है और उसके निरर्थक भाग को छील कर अलग कर देता है जिससे उस बेडौल पत्थर का आकार सुन्दर हो जाता है, बिलकुल ठीक इसी तरह हमारी कुछ बुराइयां अलग होते ही हमारे व्यक्तित्व की असली चमक सामने आती हैं।

प्रायः हम देखते है की कुछ लोग किसी को भी जल्दी ही प्रभावित कर लेते है और उनसे एक बेहतर तालमेल और सम्बन्ध कायम कर लेते है, ये सब संभव है अपनी कुछ आधार भूत आदतों को समझने की और उन्हें अपने जीवन में उतरने की. नीचे कुछ बातें दी जा रही हैं जिनकी सहायता से हम अपने व्यक्तित्व का विकास करके अपने व्यक्तित्त्व को प्रभावशाली कैसे बना सकते हैं।

सबसे जरूरी है दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार, हमारा व्यवहार हमारे आसपास के वातावरण को बनाता है या बिगता है, उचित होगा की हमारा व्यवहार संयमित हो जिससे माहौल भी संयमित रहे. अपने व्यवहार से हम कभी भी किसी को अपमानित न करें और न ही कभी दूसरों की शिकायत

करें। महिलाओं से संवाद स्थापित करते समय इस बात का अच्छा खासा ख्याल रखें।

दूसरों में जो भी अच्छे गुण हैं उनकी ईमानदारी के साथ दिल खोल कर प्रशंसा करें। यदि आप किसी की प्रशंसा नहीं कर सकते तो कम से कम दूसरों की निन्दा कभी भी न करें। किसी की निन्दा करके आपको कभी भी किसी प्रकार का लाभ नहीं मिल सकता। अगर किसी के काम की आलोचना करना हो तो प्रयास रहे की वह कहीं व्यक्तिगत न हो जाए, इस कार्य में लहजा और तथ्य आपकी मदद कर सकते है।

दूसरों को सुनने और समझने में रुचि लें। यदि आप दूसरों में रुचि लेंगे तो दूसरे भी अवश्य ही आप में रुचि लेंगे।

अच्छे श्रोता बनें और दूसरों को उनके विषय में बताने के लिये प्रोत्साहित करें। एक प्रेरक के तौर पर बात करते समय ध्यान रखें की आपके विचार यहाँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं, दूसरों की रुचि और आवश्यकता को ही महत्त्व दें, याद रखें अआपकी भूमिका सिर्फ एक मददगार की है अतः उनपर अपने विचार न थोपें. दूसरों के महत्व को स्वीकारें तथा उनकी भावनाओं का आदर करें।

बात करते समय अक्सर हमारे हमारे भाव भंगिमाए चर्चा के अनुकूल नहीं होती है जिससे प्रभाव पैदा नहीं हो पाटा है अतः कोशिश रहे की हमारी मुखाकृति, हाथ, आवाज का उतार चढाव और वेश भूषा हमेशा अनुकूल ही रहे. जो व्यक्तित्व के प्रभाव को बढ़ाने के साथ ही हमारे विचारों को भी वजन प्रदान करती है।

तर्क का अंत नहीं होता। निरर्थक बहस करने की अपेक्षा सार्थक बहस अधिक उपयुक्त है। दूसरों की राय को सम्मान दें। 'आप गलत हैं' कभी भी न कहें। यदि आप गलत हैं तो सबसे पहले अपनी गलती को स्वीकारें। दूसरों को अपनी बात रखने का पूर्ण अवसर दें इससे वे अनुभव करेंगे कि आपकी नजर में उनकी बातों का पूरा पूरा महत्व है।

किसी भी घटनाक्रम को दूसरों की दृष्टि से देखने का ईमानदारी से प्रयास करें। इससे ये साबित होगा की आपका दूसरों की इच्छाओं तथा विचारों के प्रति सहानुभूतिपूर्ण रवैया है । साधारण तया हम बातचीत के दौरान उत्तेजित

होकर दूसरों को चुनौती देने लगते है जो की सार्थक चर्चा के लिए उचित नहीं है. अपने तथ्य रखें और फिर चर्चा होने दें सभी को अपने तथ्यों से सहमत करने का प्रयास करें। हमारे ये प्रयास सहभागी चर्चा और निर्णय की नींव को मजबूत ही करेंगे।

खुद का ईमानदार मूल्यांकन अत्यंत आवश्यक है. अपने विचारों के बारे में और कार्य प्रणाली के बारे में हमेशा सोचें, और अपनी कमियों के बारे में अपने मित्रों से चर्चा करें इससे आपको अपने अंदर सुधार लाने के साथ साथ वह क्षमता भी हासिल होगी जिससे आप अपने बारे में भी विश्लेषण कर सकें।

साधारणतया हमारा व्यक्तित्व छोटी छोटी बातों से प्रभावित हो जाता है कई बार हम किसी मुसीबत में भी फंस जाते है. अगर हम इन छोटी बातों का ध्यान रखें तो कुछ फायदा तो हो ही सकता है. बाकी और भी प्रयासों की जरूरत है।

झूठ सिर्फ झूठ हो सकता है

झूठ ! झूठ एक ऐसी चीज़ है जिसके बारे में हमें बचपन से यही सिखाया जाता है की कभी भी झूठ नहीं बोलना चाहिए. मुझे याद है मेरी बचपन की किसी हिंदी या नैतिक शिक्षा की किताब में एक अलग पाठ था, जो ये शिक्षा देता था क इंसान को कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए. और तो और एक कविता भी थी, "गडरिये और भेड़" वाली, जिसमें वो गडरिया हमेशा झूठ बोलकर गांववालों को परेशान करता रहता है और एक दिन सच में भेड़िया आकर उसकी भेड़ ले जाता है और उसकी मदद को कोई नहीं आता क्यूकी सब सोचते हैं की वो फिर से झूठ बोल रहा है.....ये कविता तो मुझे आज भी याद है और बहुत अच्छी भी लगती है. हम इसे छोटे बच्चों को सिखाते भी हैं, जिससे की वो लोग कभी झूठ न बोलें..!!

पर मुद्दा यहाँ ये नहीं है की बचपन में हमने कितने पाठ और कवितायेँ पढ़ीं हैं झूठ न बोलने के बारे में. सोचना तो ये है की जो बात हम लोगों को बचपन से हमेशा सिखाई गयी उसका अनुसरण हम अपने जीवन में कितना करते हैं? अरे हाँ हम तो भूल ही गए थे जब थोड़े बड़े हुए, शायद क्लास 6th में, एक और बात सिखाई गयी की झूठ अगर किसी की भलाई के लिए बोला जाये तो वो सच से बढ़कर होता है. हाँ अब उस भलाई में किस किस तरह की भलाई शामिल है वो शायद नहीं बताया गया था।

शिक्षा का मुख्या उद्देश्य होता है की बच्चा जीवन में गलत सही का अर्थ समझ सके, सभ्य बने, और उसे ज्ञान दिया जाये, और वो उस ज्ञान का प्रयोग अपने जीवन में कर सके. हम लोग शायद अपनी डिग्री का प्रयोग करना तो सीख जाते हैं पर ज्ञान का प्रयोग करना ज़रूरी नहीं समझते. कम से कम उस ज्ञान का तो नहीं जिससे हमें जॉब में promotion नहीं मिलने वाला और जिससे हमारी salary नहीं बढ़ने वाली. मेरा मतलब यहाँ नैतिक शिक्षा की छोटी छोटी बातों से है – जिसमे झूठ न बोलना भी शामिल है।

लोग अक्सर ही अपने रोज़मर्रा के जीवन में झूठ का सहारा लेते हैं, कभी खुद की भलाई के लिए और कभी दूसरों की ! मेरा मतलब कभी खुद को बचाने के लिए झूठ बोलते हैं और कभी दूसरों को, कभी खुद को सही साबित करने के लिए झूठ बोलते हैं और कभी अपने दोस्तों को सही साबित करने के लिए, कुछ नहीं तो मज़ाक में तो झूठ चलता ही है, कुछ भी बोलो और फिर कह दो "अरे यार मैं तो मज़ाक कर रहा था..!

झूठ भी सिर्फ झूठ नहीं होता, इसके भी कई रूप होते हैं. झूठ किसी ने अपने फायदे के लिए बोला और आपने समझ लिया तो वो इंसान स्वार्थी नज़र आता है. किसी ने झूठ अपने किसी दोस्त को मुश्किल से बहार निकालने के लिए बोला तो वो परोपकारी नज़र आता है. और झूठ अगर मज़ाक में बोला गया हो तो उसका तो कोई अर्थ ही नहीं, अरे वो तो मज़ाक था, तो वो इंसान भी बड़ा मजाकिया किस्म का नज़र आता है! (हालांकि मुझे विश्वास नहीं की वो मज़ाक ही होता है या कुछ और?)

इस तरह झूठ हमारे जीवन का एक अहम् हिस्सा बनता जाता है और बिना इसके जीवन ही बड़ा मुश्किल नज़र आता है. और बचपन का सिखाया गया पथ वहीँ बचपन की किताबों में रहता है जिसे अब दुसरे बच्चे पढ़ रहे हैं. पर वो भी सीख नहीं रहे होंगे क्यूंकि जब हमने ही नहीं सीखा तो हमारे आने वाली पीढ़ी के बच्चे कैसे सीखेंगे. और याद रखिये की पाठ पढने और सीखने में बहुत अंतर होता है. और सीखे गए पाठ को अपने जीवन में उतारना तो बिलकुल ही अलग काम है और शायद कई गुना कठिन भी...!!

भावनात्मक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति

अभिव्यक्ति, विचारों की और आपकी भावनाओं की, हम अभिव्यक्ति के जरिए प्रेरणा, डर , निवारण, उकसाना, संतुष्टि, आघात, निराशा, साहस, शिक्षा, कलंक, विचारों का आदान-प्रदान, उदासी, सिद्धांत, साहस और क्षमायाचना को नया आयाम दे सकते हैं. याद कीजिये आपने अपने शब्दों के इस्तेमाल से पहले कितने बार उसे इस्तेमाल करने के बारे में विचार किया है , शायद कम ही निकलेगा, यह एक सामान्य मानव व्यव्हार है, घटिया और सुंदर शब्द के बीच कुछ इस तरह का अंतर होता है जैसा बिजली की कौंध और जुगनू के बीच होता है। शब्दों का चयन यहाँ महत्त्व पूर्ण नहीं है महत्त्व पूर्ण है उसकी अभिव्यक्ति, चूंकि अभिव्यक्ति का एक साधन शब्द भी हैं लेकिन प्रभाव पैदा करने के लिए अन्य कारक भी महत्त्वपूर्ण हैं. जैसे बोलते समय आपकी मनोदशा, आपकी भाव भंगिमाएं, आपकी आवाज का उतार चढाव, आदि..!!

आप जब कुछ कह रहे होते हैं तब आप इस बात को लेकर सतर्क रहते हैं कि मेरी अभिव्यक्ति का क्या प्रभाव हो रहा है या फिर आप उसका इस्तेमाल किस तरीके से कर सकेंगे? आप अपनी बात रखने से पूर्व यह जानने की कोशिश कर सकते हैं कि हमारे शब्द किस तरह घृणा, प्रेम, प्रेरणा, स्वीकृति, क्रोध, दयालुता, आदर, तल्खी और बुद्धि जैसे आयामों को अभिव्यक्ति दे सकते हैं।

सोचिये आपकी अभिव्यक्ति वरदान किस तरह साबित हो सकती है? क्या आप शब्दों के जरिए चुटकुले, कहकहे, आंसू, कविता पाठ और उम्मीद जैसे भावों को जगा सकते हैं? यदि मैं आपसे पूछूँ कि क्या आप कभी किसी की टिप्पणी से दुखी हुए हैं? सभी का एक ही जवाब होगा कि कई बार। इसी लिए तो कहा गया है कि शरीर के जख्म का दाग तो मिट भी जाता है लेकिन जबान से पैदा हुए जख्म को भर पाना मुश्किल होता है। शब्दों से किसी के मन के जख्म को भरा जा सकता है। शब्दों के बढ़िया इस्तेमाल से किसी को ऊपर

उठाया जा सकता है और किसी को समर्थन दिया जा सकता है।किसी के जीवन को संवारा जा सकता है या कि ख़त्म किया जा सकता है।

यह सोचना और भी जरूरी हो जाता है जब कि आप लोगों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने के मिशन मैं लगे हों, अभिव्यक्ति के प्रदर्शन से पहले उसके प्रभाव के बारे मैं अवश्य सोचें, लेकिन सबसे ऊपर अपने लक्ष्य को ही रखें। सबसे बड़ी सफलता है कि आपके साथ काम करने वाले लोग कितने उत्साहित है कभी आपने सोचा है कि उनका उत्साह कैसे बढे और उनमें काम के प्रति अपनत्व का भाव कैसे पैदा हो, लोगों को उत्साहित करना इसका एक ताकतवर माध्यम हो सकता है, कल्पना कीजिए कि आप हर रोज दो लोगों को उत्साहित करते हैं और यदि आप उन दोनों व्यक्तियों को इस बात के लिए भी तैयार कर पाते हैं कि वे दोनों कल दो और लोगों को प्रेरित कर सकें यह आपके लक्ष्यों कि पूर्ती मैं सबसे बड़ा सहारा बनेगा और स्थाई विकास कि नीव भी रखेगा। जब हम महिलाओं के सशक्तिकरण कि प्रक्रिया में भागीदार है तो हमारी जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है, क्योंकि जहाँ हमें महिलाओं को इसके लिए सशक्त करना है वहीँ दूसरी और समाज को भी इसमें सहयोग के लिए तैयार करना है। तो पहचानिए अपनी अभिव्यक्ति कि ताकत और कोशिश कीजिये लोगों का प्रेरणा स्त्रोत होने का। बस इतना कीजिये।